



सम्पादक—

शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी०ए०, बी०एल०

नवम्बर, १९३९

वर्ष ८, खण्ड १५

अङ्क २, पूर्ण संख्या ८६

कार्तिक, १९९६

आधी रात

काश तनिक दम लेता मेरा दर्द बदल करवट मैं पाता !

मध्य निशा छाया सन्नाटा चीख विजनमें पञ्छी बोला
किन्तु न मैं क्रन्दन कर पाता मुक्त कहाँ मानवका चोला
प्रति निशि घुट-घुटकर रह जाती मेरे सङ्घर्षोंकी वाणी
किन्तु सजग ये बन्धन मेरे मैं विवेकमय पशु, मैं ज्ञानी
जान वही पाता यह दुखड़ा जिस तनमें लगती यह ज्वाला
पङ्क कफज दोनों फुंक जाते राख उड़ाता मन मतवाला
मूक धुआँ देनेसे तो अच्छा था मैं धू-धू जल जाता
काश तनिक दम लेता मेरा दर्द बदल करवट मैं पाता

जो कट जाये वह भी कैसी बेचैनीकी रात घनेरी
अकुला आधी रैन बितायी किन्तु न बुझती तृष्णा मेरी
शायद सों भी जाता तो मोहताज बना दर-दर फिर आता
टूट गया अब तो भूले सपनोंकी रङ्गीनीका तांता
एक निदारुण-सी रजनीमें अमर हुई यह मर्त्य पिपासा
पूर्ण हुआ जब मानव मेरा नम्र हुई मेरी अभिलाषा
सत्य न होता क्या मेरा निर्माण न यदि मैं प्राण जलाता
काश तनिक दम लेता मेरा दर्द बदल करवट मैं पाता

—अञ्जल

नाजी शासनके सात खूनी वर्ष !

डा० ए० पी० अग्रिहोत्री, पी० एच-डी०

एडोल्फ हिटलरकी अधिनायक शाहीके आगमनके बाद-से जर्मनीमें विरोधियाँ और विशेष रूपसे यहूदियोंका जो भीषण दमन हुआ है तथा उन्हें जिन नाजी वर्चस्वताओंका

अन्य देशोंमें मारे-मारे भटक रहे हैं, इसका अनुमान लगाना सहज नहीं है। नृशंसतापूर्व इन्हीं अत्याचारों तथा वर्चस्वताओंके फलस्वरूप जर्मनीसे यहूदियोंकी भागदड़-सी मची हुई



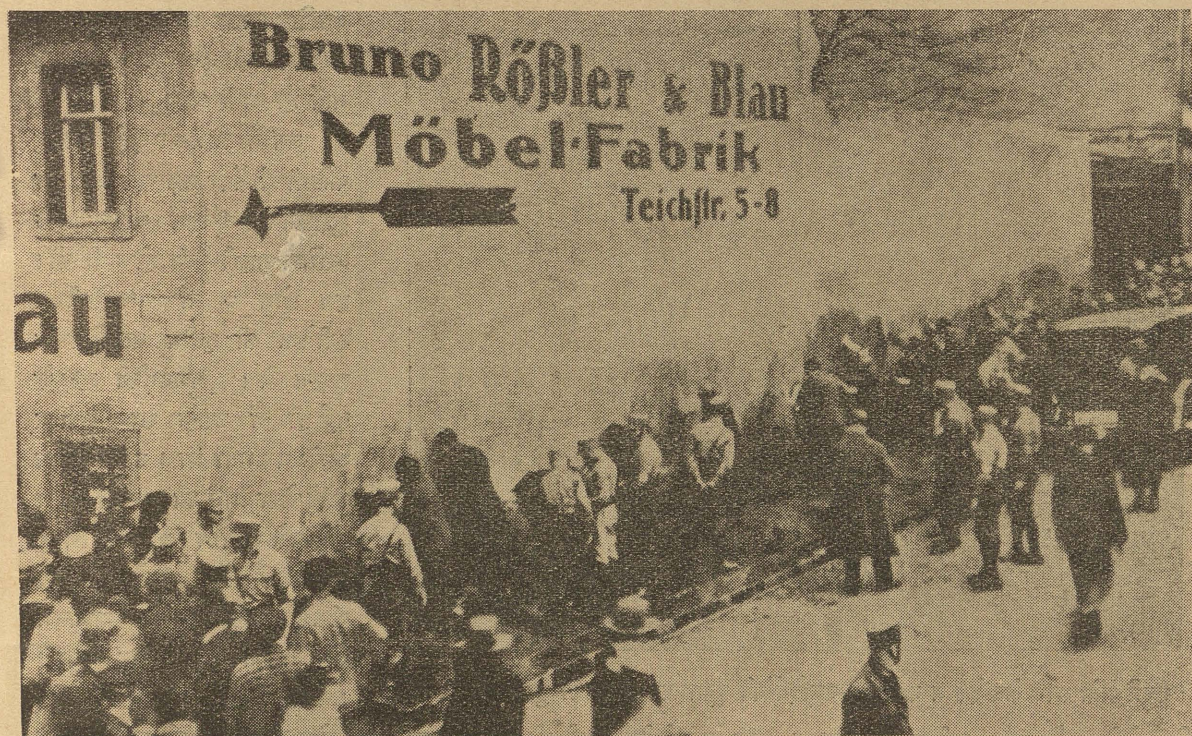
कितने ही सार्वजनिक स्थानोंपर इस प्रकारके तख्ते “यहूदियोंका प्रवेश-निषेध” लिखकर लटकाये गये हैं।

सामना करना पड़ा है, वह मानव-समाजके इतिहासके लिए एक महान् कलङ्ककी बात है। उसके राष्ट्रीय समाजवाद, नाजीवादकी इस भयानक विभीषिकाने कितना भीषण नर-संहार किया है, कितने विचारशील तथा बेगुनाह आदमी ‘कन्सेण्ट्रेशन कैम्पों’ में जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं, कितने परिवार गृह-हीन होकर जीविकाके अभावमें संसारके

है। नाजी-शासनकी इस पाशविकता-का अन्त कहां और कब होगा, यह तो नहीं कहा जा सकता। लेकिन विरोधियोंका गला घोटने तथा उन्हें नेस्त-नाबूद कर देनेकी जो प्रतिक्रिया आज जर्मनीमें चल रही है, उसका शीघ्रातिशीघ्र विनाश जितना ही मानवताके कल्याणार्थ आवश्यक है, उतना ही अवश्यम्भावी भी। जब हम यह छनते हैं कि सापेक्षवादके जन्मदाता मनीषी आइन्सटाइन-जैसे मनुष्य केवल इसी कारण जर्मनीसे निकाल बाहर किये गये कि वे यहूदी थे और सुप्रसिद्ध मनस्त्ववेत्ता सियामण्ड फ्रायडको इसीलिए स्वदेश छोड़ना पड़ा कि वे यहूदी थे, तो हमें इस नाजीवादके शीघ्र पतनकी एक धुंधली तथा स्पष्ट झलक मिल जाती है। यह तो एक ऐतिहासिक सत्य है कि इस प्रकारका कुशासन तथा कुव्यवस्था अधिक दिन तक टिक नहीं सकती। नाजी-शासन कितना कठोर है, इसका रोमाञ्चकारी

वर्णन एक भुक्तभोगी यहूदीकी जबानी इस प्रकार है :—

आज जर्मनीमें मेरी ही तरह न मालूम कितने यहूदी भाई भयानक विपत्ति तथा कठिनाइयोंके बीच जीवन-यापन कर रहे हैं, क्योंकि इससे छुटकारा पानेका कोई मार्ग ही नहीं है। आज जब मैं अमेरिकामें बैठकर, जर्मनीसे काफ़ी फासलेपर, उस खूंरज तथा सनकी हिटलरका स्मरण करता



नाजियोंकी देख-रेखमें यहूदी दीवाल धो रहे हैं और तबतक धोना पड़ेगा जबतक वे बेहोश होकर गिर न पड़ें।

हूँ, तो मुझे रोमाञ्च हो आता है। यद्यपि यहाँपर मैं अपने बच्चे तथा स्त्रीके साथ सकुशल हूँ, फिर भी नाजी-शासनके अत्याचार रह-रहकर मेरे दिलमें घावकी तरह कसक पैदा कर देते हैं।

नाजीवादकी वेदीपर आज हजारों यहूदियोंका बलिदान हो चुका है, हजारोंके कलेजोंसे नाजी सैनिकोंकी सझीनें पार हो चुकी हैं, कितने ही गोलियोंसे उड़ाये जा चुके हैं और कितनोंको फांसीके तख्तेपर चढ़ाकर मृत्युके घाट उतारा जा चुका है।

आज जो यहूदी जीवित शेष हैं, वे 'कन्सेण्ट्रेशन कैम्पों' में वर्णनातीत अपमान तथा कष्टका जीवन व्यतीत कर रहे हैं तथा उनके साथ बर्बरतापूर्ण दुर्व्यवहार किया जा रहा है। इसी प्रकारकी परिस्थितियोंके बीच मैं अपनी स्त्री तथा बच्चेके साथ जर्मनीसे भाग खड़ा हुआ था। जो यहूदी जर्मनीसे भाग नहीं सके तथा वहाँपर जुल्मोंको सहन कर रहे हैं,

उनकी संख्या प्रायः ७ लाखके होगी। उनपर जैसा अत्याचार आज हो रहा है, वैसा शायद रूसी जारशाहीके सैनिकोंने भी न किया होगा। भला उनके कष्टोंका अनुभव मुझ-जैसे भुक्तभोगीसे अच्छा और किसे होगा, जिसकी पीठपर नाजियोंके कोड़ोंके दाग हैं, जिसके मस्तकपर नाजी सैनिकोंके पैर ठोकरें मार चुके हैं और जिसे गन्दा यहूदी कहकर बहनेवाली गन्दी नालियोंमें ढकेला जा चुका है। मुझसे अच्छा उस बर्बरताका अनुभव और किसे होगा, जिसके गलेमें 'गन्दे यहूदी' का लेबिल चिपकाकर अपने विनोदार्थ बर्लिनके आर्य इधरसे उधर घुमा चुके हैं, जिसको आर्यनीनवर्गके कन्सेण्ट्रेशन कैम्पमें ठीक उसी प्रकारके कष्ट तथा अपमान सहने पड़े हैं। यह सब तो जो कुछ हुआ है, सो तो हुआ ही है, अब मेरी दुःखद कहानीका प्रथम अध्याय आरम्भ होता है।

मैं आजसे ४१ वर्ष पूर्व हेमवर्गमें पैदा हुआ था। मेरे माता-पिता दोनों यहूदी थे। ऐसी खबर मिली है कि मेरे



“यहूदियों के साथ लेन-देन न करो”—यहूदियों की दूकान पर लटकाया हुआ एक तख्ता।

पिताको हेमबर्ग के बाहर नदी पर मार डाला गया तथा मेरी वृद्धा मां, जो अब करीब ७० वर्ष से कुछ अधिक उम्र की होगी, गायब है। गत महायुद्ध में मैं भी मित्र-राष्ट्रों के खिलाफ जर्मनी के आर्यों के साथ-साथ लड़ा था—सैनिक की हैसियत से। मुझे भी एक फ्रान्सीसी या ब्रिटिश सैनिक को गोली से मारने या सज्जीन से आहत करने में एक आर्य जर्मन की ही भांति किसी प्रकार की हिचकिचाहट का अनुभव नहीं होता था।

महायुद्ध के कुछ दिनों बाद मुझे बर्लिन के एक बैङ्क में नौकरी मिल गयी। लेकिन आरम्भ से ही मेरे खिलाफ दफ्तर के चारों आर्यों ने साजिश करनी शुरू कर दी और उनकी हमेशा यह मन्शा रही कि मैं किसी अपराध में फाँस दिया जाऊँ। लेकिन इसके बाद मुझ पर जो बीती, उसके मुकाबले में वह कुछ नहीं था। १९२६ ई० में मेरी तरफ़ी हुई और दो वर्ष बाद मुझे और भी अच्छे पद पर नियुक्त किया गया। यह वह समय था, जब लोगों में हिटलर का नाम भय तथा आतङ्क के साथ लिया जाने लगा था। रात को मैं बैङ्किंग तथा व्यापार सम्बन्धी अन्य बातों का अध्ययन करता था और दिन को

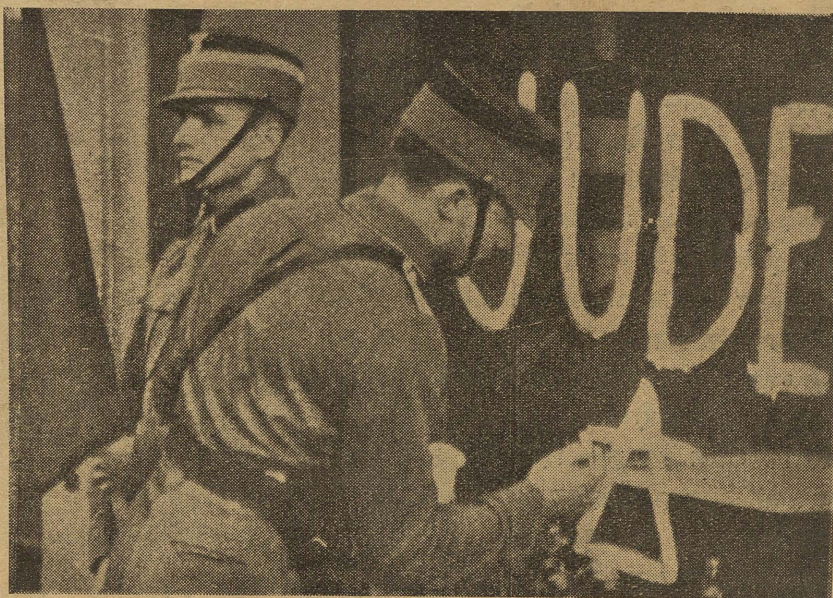
आफिस जाता था। १९२९ तक मेरी किस्मत कोई उतनी खोटी नहीं हो पायी थी।

जब मैं मित्र-राष्ट्रों के विरुद्ध पश्चिमी मोर्चे पर लड़ रहा था, तो मुझ से फ्रिज ग्रुनवर्ग नामक एक व्यक्ति से गहरी मैत्री हो गयी थी। हम लोग ७ वीं ‘थरिज़ीयन रेजीमेण्ट’ की तृतीय बटालियन के सदस्य थे। ग्रुनवर्ग की मृत्यु के पूर्व ही मैं उसके साथ छुट्टी पर उसके घर गया था। उसी समय उसने मेरा परिचय अपनी बहन एरिका से कराया था। मोर्चे पर वापस लौटने पर मुझ से कुछ ही फीट के फास पर मेरा अन्यतम मित्र आहत होकर मर गया। तभी से एरिका मेरी प्रेयसी बन

गयी थी। उसी समय उसकी गोल-गोल तथा बड़ी-बड़ी चमकती हुई काली आँखों और उसके सुनहले बालों में मैं उलझ गया था। अब तो उसकी आँखें भूरी पड़ गयी हैं और उनका रङ्ग बालों के ही समान हो गया है। लेकिन इस असें में जो दुर्भाग्यपूर्ण वर्ष बीते हैं, वे न तो उस मिलन-वड़ी के समय थे और न अब ही हैं।

युद्ध के बाद मैं अपनी प्रेयसी एरिका के साथ कैण्टस्त्रेसी में एक छोटे-से मकान में रहने लगा। हम लोगों का जीवन सुखमय बीतता था और महीने में काफी बचत भी हो जाती थी। जितने मार्क (जर्मनी का सिक्का) हम बचाते थे, वह उसी बैङ्क में, जिसमें नौकर था, जमा कर दिया करते थे। इसकी भी एक खास वजह थी। हमें यह मालूम होने लगा था कि आफत के दिन आने वाले हैं। इसके लक्षण भी उसी समय प्रकट होने लगे थे। अतः हम लोगों ने कुछ इकट्ठा करना बहुत जरूरी समझा, भले ही वह छोटी ही रकम क्यों न हो; क्योंकि यह खतरा बढ़ता ही जा रहा था कि किसी भी समय केवल यहूदी होने के कारण मैं नौकरी से हटा दिया जाऊँगा।

१९३२ के पतझड़की अक्टूबर मासकी शनिवारकी रात थी। मैं और मेरी प्रेयसी एरिका दोनों साथ घूमनेके लिए बाहर गये हुए थे। हम पोद्सडममें छोटी-छोटी नहरों-के किनारोंपर विचरण कर रहे थे। मेरी स्त्रीके बच्चा पैदा होनेके पहलेका यह हम लोगोंका अन्तिम सैर-सपाटा था। करीब ९ बजे तक घूमकर थक जानेके बाद हम लोग एक बेछपर बैठ गये और जैसा किएक दम्पति बातचीत करते हैं, हम लोग भी अपने बच्चे तथा उसके जीवनको अधिकसे अधिक सुविधाप्रद बनानेके विषयमें बातचीत करने लगे।



यहूदियोंकी दूकानोंपर 'यहूदी' लिख दिया जाता था। इसके बाद उनसे कुछ भी खरीदना दण्डनीय था।

इतनेमें एकाएक चार आदमी टहलते हुए हमारे निकट आये। वे आपसमें जोर-जोरसे चिलाकर बातें कर रहे थे। उनमेंसे दो आकर धूमसे हमारे निकट बेछपर बैठ गये। चारोंने मिलकर मुझे घेर लिया और मेरी स्त्री अकेली पड़ गयी। एक तीसरेने बैठनेका बहाना करते हुए मुझे धक्का दिया और मेरी स्त्री जाकर जमीनपर गिर पड़ी। मुझे भी गुस्सा हो आया। बगैर देखे-छने मैंने उनमेंसे एकके मुंहको अपने दातोंसे धर दबोचा। बस क्या कहना था? चारोंने मिलकर मुझे पीटना शुरू कर दिया। लगातार एकके बाद एक मुझपर ठोकरों तथा घूंसोंकी चोट पड़ने लगी।

मुझे यहां तक तो स्मरण है कि एक बार मैंने अपनी एरिकाको भाग जानेके लिए जोरसे पुकारा, लेकिन इसकेबाद मेरी छातीमें एक ऐसे जोरकी बूटकी ठोकर लगी कि मेरे मुखसे आवाज तक न निकल सकी और मैं बेहोश हो गया।

थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे मैं उठा। मैंने चाहा कि अपनी एरिकाको देखूं, लेकिन मेरे नेत्र खूनसे इतने तर-वतर थे कि मुझे कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता था। हां, मेरे पीठ-पीछे जो नहर पड़ती, उसी तरफसे मैंने उसकी रोती-विलपती आवाज

सुनी। जाकर देखा, तो वह पानीमें डूबती हुई हिचकी ले रही थी। खैर, मैं उसे पानीसे निकालकर सूखी घासपर लाया। उसके कांपते हुए तथा बेहोश शरीरको मैंने अपने कोटसे ढंका और गाड़ीपर बैठाकर अस्पताल ले गया। अस्पतालके कर्मचारियोंकी लापरवाहीके कारण एरिका ६ सप्ताह तक घर न लौट सकी। जब मैंने अस्पतालके उच्चाधिकारीसे इसकी शिकायत की, तो उसने हंसकर मखौल उड़ाते हुए योंही टाल दिया।

जिस दिन विल्हेम स्ट्रेसीसे रीशस्टागमें मकानकी रंगाई करनेवाले एक आस्ट्रिया-निवासीने आग लगा दी, उस दिनसे तो हम यहूदियोंकी जानपर और भी आफत आ पड़ी। प्रथम आतङ्कके रूपमें यही चीज हमारे सामने आयी। लेकिन इधर जर्मनीमें यहूदियोंपर जो भीषण अत्याचार हो रहे हैं, उनकी तुलनामें यह घटना एक प्रकारसे नगण्य थी। मैं रोज बैटूमें नौकरीपर डरते-डरते ही जाता था तथा मुझे सर्वदा यह भय लगा रहता था कि कहीं मेरी एरिकाके साथ कोई उद्घण्ड नाजी बलात्कार न कर दे, अथवा उसे मार ही डाले।

हालके वर्षोंमें जर्मनीमें जो हत्याएं हुई हैं, उनका आभास मुझे आजके ६ वर्ष पूर्व, सन् ३३ में उन तीन

घटनाओंसे मिल चुका था, जो मेरे जीवनमें घटित हुई। पहली घटना १९३३ के अप्रैलमें घटी। इसी मासमें बिना पूर्व सूचना दिये ही मुझे दफ्तरसे हटा दिया गया। मेरा लड़का उस समय केवल पांच मासका था। इसपर मैं बैङ्कके व्यवस्थापकसे मिलने गया तथा उनसे अपनी नौकरी छूटनेका कारण पूछा।

व्यवस्थापकने उत्तरमें कहा— 'तुम थोड़े गुस्ताख हो। यह युवा-वस्थाके कारण है। कुछ दिनोंमें धीरे-धीरे अवश्य ही बुद्धिमान बन जाओगे। देखो, हम अपने यहां कुछ आदमी घटा रहे हैं। अतः

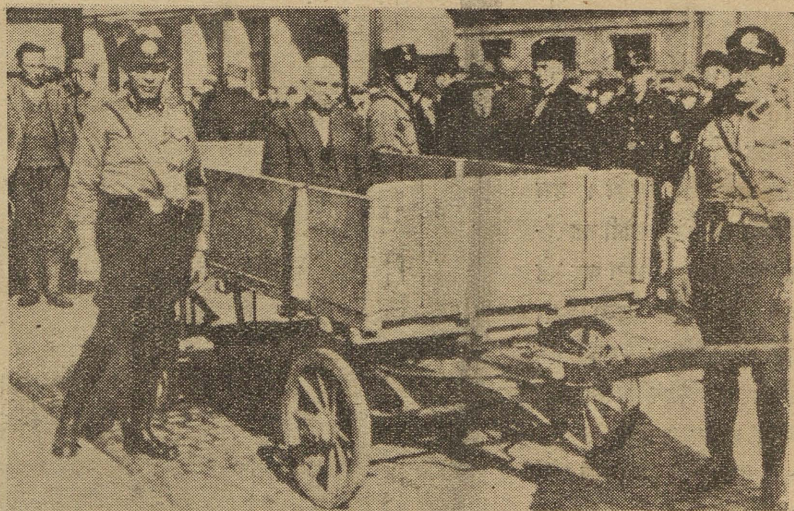
तुम्हारी तथा कुछ और कर्मचारियोंकी सेवाओंसे वञ्चित रहनेपर भी हमारा कारबार चल सकता है, अतः हमें तुम्हारी आवश्यकता नहीं रही।'

मैंने कहा— 'यह तो आप असत्य कह रहे हैं, क्योंकि मेरे सिवा आप और किसी व्यक्तिको अपने यहांसे नहीं हटा रहे हैं। भला इसका कारण क्या है?'

इतना सुनते ही व्यवस्थापककी तयारी चढ़ गयी। वह गुस्सेमें भरकर बोला— 'तुम यहूदी हो, हम तुम्हें नहीं रखेंगे। जाओ, यहांसे अभी बाहर निकल जाओ।'

इसके बाद जर्मनोंकी यहूदी-विरोधी भावनाएं, जो अब तक किसी कदर दबी हुई थीं, मौका पाकर भीषण रूपमें प्रकट होने लगीं। जर्मनीमें यहूदी घृणाकी नजरसे देखा जाने लगा और पग-पगपर उसका अपमान हो रहा था।

इस तरह मेरा नाम काली सूचियोंमें दर्ज हो गया। मेरे ऊपर एक छोटे-से बालक तथा अपनी स्त्रीके खर्चका भार था और आमदनीका कोई साधन नहीं। बैङ्कमें जमा किये गये मेरे मार्क भी (जर्मनीके सिक्के) नहीं दिये गये। जब मेरी सम्पत्ति न मिली, तो अदालतमें मुकदमा दायर करनेके लिए मैं एक वकीलके पास गया। जब मैंने उनसे अपना सारा किस्सा कह सुनाया, तो वे आश्चर्यचकित हो उठे। लेकिन थोड़ी देर बाद मेरे कन्धेपर हाथ रखते हुए उन्होंने कहा—



एक यहूदीको अपमानित करनेके लिये सड़कोंपर घुमाया जा रहा है।

'तुम मेरी सलाह मानो। भूल जाओ कि तुमने बैङ्कमें कुछ पैसे जमा किये थे। देशक में उनके खिलाफ मुकदमा चला सकता हूं, लेकिन प्रतिवादियोंकी ओरसे बार-बार मुकदमा मुलतबी कराया जायगा। और, लगातार वर्षों तक लड़नेके लिए तुम्हारे पास पैसे भी तो नहीं हैं।'

आर्थिकी पवित्र नस्लके इन बैङ्क-सञ्चालकोंने मेरी जमा रकम हजम कर ली। निरुपनन्देह उनकी निगाहमें यह एक छोटी रकम थी, लेकिन मेरी तो यह ६ वर्षोंकी 'सेविंग'-बचत थी। पैसेके अभावमें हमें दिनमें केवल एक ही बार बमुश्किल भोजन मिल जाता था। और वह भोजन भी निहायत खूबा-सूखा!

दूसरी जो घटना घटी, वह पहलीसे अधिक भयङ्कर थी और मुझे उससे जो दुःख हुआ, वह बैङ्कमें जमा किये गये रुपये हाथ धोनेसे भी नहीं हुआ था। नौकरीकी तलाशमें इधर-उधर भटकनेके बाद एक दिन जब शास्त्रको मैं अपने घर आया, तो देखा कि मेरे दरवाजेपर 'पीला निशान' लगाया हुआ है। उन दिनों उस प्रदेशमें इस किस्मके निशान यहूदियोंके घरोंके दरवाजोंपर खूब तेजीसे लगाये जा रहे थे। आप जानना चाहेंगे कि यह 'पीला निशान' कौन-सी बला है? वस्तुतः इसका तात्पर्य भीषण अपमान है। मध्ययुगमें ऐसे ही निशान लगाकर ईसाई लोग यहूदियोंपर आतङ्क



यहूदियोंपर १९१४ में होनेवाले ऐसे अत्याचार नाजी शासनके अन्तर्गत साधारण घटनायें हैं।

जमाया करते थे। फ्रान्सीसी राज्यक्रान्तिके दिनोंमें प्रजातन्त्र दलके लोग धनिकों एवं रईसोंके घरोंपर इसी प्रकारका सफेद रङ्गका निशान लगाया करते थे।

१४ वीं सदीके मध्य भागमें रूसी पोलैण्डके लोग यहूदियोंको महामारी तथा अकालका कारण बताकर उनके घरोंपर असमानसूचक इसी किस्मके पीले निशान लगाया करते थे। आज जर्मनीमें हर किस्मके भयानक रोगोंके लिए यहूदी ही जिम्मेदार ठहराये जाते हैं।

यह निशान केवल मेरे ही घरपर नहीं, वरन् उस हिस्सेमें जितने भी यहूदी रहते थे, सभीके दरवाजेपर लगाये गये। इसका तात्पर्य यह था कि आजसे इन लोगोंका बहिष्कार किया जाता है। निश्चय ही इससे हम लोगोंको घोर अपमानका अनुभव हुआ। पीछे चलकर यह मालूम हुआ कि अब यहांकी आर्य जनता हमसे न तो किसी प्रकारका सरोकार रखेगी और न लेन-देन ही करेगी। भोजन प्राप्त करना तो दूरकी बात है, केवल बच्चेके लिए दूध लेनेके लिए एरिकाको एक मील रोज जाना-आना पड़ता था। तीन मास बाद एक यहूदीने पास ही में एक डेरी—दूधकी दूकान खोली। लेकिन नाजी-शासकोंके उस देशमें वह अपनेको कब तक सहफूज

समझता। एक दिन करीब १०० नाजी पार्टीके भूरे कमीजी उसकी दूकानमें घुस आये, उसकी तश्त-रियां आदि तोड़ डालीं तथा तमाम रुपये-पैसे लेकर चम्पत हो गये। रोकनेका प्रयत्न करनेपर उन लोगोंने उसकी मुश्कें इस प्रकार चढ़ा दीं कि बेचारेके हाथ टूट गये। इतना ही अलम नहीं था, इतनी यातना भोगनेके बाद वह 'कन्से-प्टेशन कैम्प' में भेज दिया गया और तीन मासके बाद छुटकारा मिला। किन्तु इलाजके लिए 'ट्रक' पर ले जाते समय, आबादीसे दूर खुले स्थानमें डाइवरने गाड़ी रोक दी और बन्दूकसे तीन मसीज यहूदियोंका काम तमाम कर

दिया। शेष जो एक बचा, वह वही दूधकी दूकानका मालिक था, जिसने यह घटना हमें सुनायी।

तीसरी दुःखद घटना १९३४ की है। मेरे तथा मेरे सहवासी यहूदियोंके दरवाजोंपर पोस्टर चिपकाये गये। मेरे दरवाजेपर जो पोस्टर लगाया गया था, उसमें मुझपर तथा एरिकापर अभियोग लगाये गये थे। मुझपर यह अभियोग था कि मैं हेमबर्गमें अपनी चाचीके साथ व्यभिचार करते समय पकड़ा गया था, और तारीफ तो यह कि मेरे चाची थी ही नहीं। मुझपर पश्चिमी मोर्चेपर युद्धकालमें कायरता दिखानेका भी दोषारोपण किया गया था, जहांपर कि बहादुरीके साथ लड़कर मैंने अपनी एक आंख तथा दाहिने पैरका एक हिस्सा खो दिया था। उस पोस्टरमें यह भी लिखा था कि मैंने आर्य शिशुओंकी हत्यायें की हैं तथा दूसरे यहूदियोंके साथ साथ उनका रक्तपान किया है। एरिकापर मेडबर्गमें खानगी पेशा अपना करके हजारों पवित्र आर्योंको चरित्रहीन बनानेका अभियोग लगाया गया था, जब कि वह मासूम और न तो कभी मेडबर्ग गयी थी और न यही जानती थी कि आखिर ये खानगी औरतोंके अङ्ग क्या बला हैं? यह सब बहाने बनाकर नाजी गुण्डे हमपर तरह-तरहके

जोर-जुलम ढाया करते थे। हम लोगोंका राह चलना कठिन हो गया था, घरोंमें चैनसे नहीं सोने-बैठने पाते थे; क्योंकि नाजियोंके दल खिड़कियोंसे कड़ड़ तथा ईंटके टुकड़े फेंक-फेंककर तथा गाली-गलौज सुनाकर रात-दिन हमें तड़किया करते थे। भला नाजी बर्बरताके सिवा ऐसे अत्याचारका नमूना दुनियाके पर्देपर कहाँ मिल सकता है? क्या ये सब बातें, इस किस्मके मिथ्या आरोप, केवल यहूदियोंका दमन करने तथा उन्हें मसल डालनेके ही एकमात्र ध्येयको समक्ष रखकर नहीं किये जाते थे?

मैं एक प्रकारसे बेकार था। अपने पिताके पास खत लिखा, तो उन्होंने २००० मार्क भेज दिये और कहला भेजा कि एक किताबोंकी दूकान खोल लो। एक दिन अपने ही काम-धामके सिलसिलेमें मैं बाहरके एक जिलेमें अपने एक साथी पालके साथ गया, जो कि हमारी ही दूकानके पास कपड़ा सीनेकी दूकान खोले हुए था। हम दोनों होटलमें बैठकर चाय पी ही रहे थे कि एकाएक वहाँपर नाजी दलके आदमी आ धमके। उन लोगोंने चायके प्यालोंको तोड़ डाला और हम लोगोंको पीटने लगे। बादमें पकड़कर हम दोनों आदमी भूरे कमीजियोंके दफ्तरमें लाये गये, जहाँपर हमसे कहा गया कि यहूदी देवताओंको गाली दो। ऐसा न करनेपर हमपर फिर मार पड़ने लगी और हमें अपने देवताओंको गाली देनेके लिए बाध्य किया गया। हमसे जबर्दस्ती हिटलरकी पुस्तक 'मीन कैम्फ' के कुछ अंशोंको पढ़ाया गया, जिनमें यहूदियोंको पानी पी-पीकर कोसा गया है। मार पड़नेके कारण मेरे मस्तकमें भारी घाव हो गया था, जिससे खूनकी धारा बह रही थी। पुस्तक पढ़ते समय खूनकी कुछ बूंदें पृष्ठोंपर गिर पड़ीं, इसके ही कारण मुझपर फिर इतनी मार पड़ी कि मैं बेहोश हो गया। संक्षेपमें, हमपर इतना अत्याचार किया गया, जितना कि एक मनुष्य कठिनातासे सहन कर सकता है। और इसी प्रकारके अपमान वहाँ नित्यप्रति यहूदियोंको सहने पड़ रहे हैं।

१९३७ की रातकी घटना है। करीब ११ बजे मेरी दूकानपर तूफानी दस्तेका एक दल आ पहुँचा। एक लड़केसे उसके आनेका समाचार पा मारे डरके पहले ही मैं अपनी स्त्री तथा बच्चेको अरक्षित दशामें वहाँ छोड़कर भाग खड़ा हुआ। उन लोगोंने मेरी अनुपस्थितिमें मेरी सारी सम्पत्ति

लूट ली और मेरी स्त्रीको बुरी तरह पीटा। और मैं बादमें कम्युनिस्ट साहित्य बेचनेके अभियोगमें गिरफ्तार करके 'कन्सेण्डेशन कैम्प' में भेज दिया गया। आनेपर मालूम हुआ कि मेरा छोटा बच्चा रिचर्ड इस संसारमें नहीं है। स्त्रीने बतलाया कि उसी रातको उससे आर्योंके रहनेके लिए वह कमरा खाली करा लिया गया और वह सड़ककी पटरीपर खदेड़ दी गयी। उसने यह भी बताया कि इसी दुर्घटनाकी रातको भयानक सर्दी पड़नेके कारण रिचर्ड उसकी गोदमें ठण्ठा हो गया। यहाँ तक बर्बरता दिखायी गयी कि मकानसे बाहर निकलते समय उन्हें पहननेके कपड़े तथा कुछ रुपये-पैसे तक नहीं लेने दिये गये। आप इस कष्टाजनक तथा हृदयद्रावक घटनाका वर्णन सुनकर कम्पित हो उठेंगे। लेकिन नाजी शासनके भीतर यहूदियोंके लिए तो यह रोजमर्राकी बात हो गयी है।

मेरा बहुत बुरा हाल था। एक तरहसे मैं पथका भिखारी बन गया था। हालत इस कदर बिगड़ चुकी थी कि टेलीफोनपर बातचीत करते हुए मेरे पिता तक मेरी आवाज न पहचान सके। उन्होंने मुझसे जर्मनी छोड़कर विदेश भाग जानेके लिए कहा। क्या उनके ये कष्टा-भरे शब्द भूल सकते हैं कि 'देते, मैं तुम्हें सबेरे ५००० मार्क भेज दूंगा। हमारी तथा तुम्हारी मांकी लम्बी उम्र अब कट चुकी है। हमें अब थोड़े दिन संसारमें रहना है, वे जैसे भी बीतें। तुम मेरी बात मानकर इस मुल्कसे भाग जाओ।' सब्रह मुझे पैसे मिल गये तथा मैं अपनी स्त्री और बड़े लड़केके साथ भाग खड़ा हुआ—छोटा बच्चा मर ही चुका था। तीन सप्ताह बाद राटर्डम पहुँचनेपर मुझसे वहाँके अमेरिकन दूतावासमें वाइस-कौन्सलसे मुलाकात हुई और मेरे अमेरिका जानेका प्रबन्ध हो गया।

आज मैं अमेरिकामें हूँ, लेकिन नाजी आतङ्कने मेरे दिल-पर ऐसे घाव किये हैं, जो रह-रहकर ताजे हो जाते हैं। मेरा हृदय विश्वास है कि जब तक मैं जीवित रहूँगा, ये घाव बने रहेंगे।

आज जब मैं जर्मनीमें यहूदियोंपर होनेवाले भीषण जुल्मोंका स्मरण करता हूँ, तो मेरे मुखसे निकल पड़ता है, 'हे मानवताके इस महाप्राण! तुम जागरित क्यों नहीं होते?'

बर्नार्ड शाके चरित्रकी कुछ विलक्षणतायें

श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम० ए० बी० एल०

विश्वविश्रुत साहित्यिक जार्ज बर्नार्ड शाके जीवन-चरित्रका यदि हम विश्लेषण करें, तो उसमें ऐसी अनेक बातें पायी जायेंगी, जिन्हें हम विलक्षण ही नहीं, बल्कि उद्भट भी कह सकते हैं। ऐसा मालूम होता है कि बर्नार्ड शाको वर्तमान जगत् अच्छी तरह जान नहीं सका है। उनकी चाल-चलन और वचन-भङ्गीमें कुछ ऐसी विशेषता पायी जाती है कि सचमुच बर्नार्ड शा लोगोंको एक पहेली-सी प्रतीत होते हैं और कभी-कभी तो उनका व्यवहार उनके प्रशंसकोंके लिए भी परेशानीमें डाल देनेवाला होता है। उनके चरित्रकी यह विशिष्टता उनके जीवनकी तरुण वयससे ही देखी जाती है।

बर्नार्ड शाने जब साहित्यको अपनी जीविकाका साधन बनाया, अन्य साहित्य-सेवियोंकी तरह उन्हें भी प्रारम्भमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था। नाना प्रकारके बाधा-विघ्नोंका अतिक्रमण करके उन्होंने ख्याति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त की। कठिनाइयों और बाधा-विघ्नोंके साथ संग्राम करनेमें भी हम शाके चरित्रमें एक विलक्षणता पाते हैं। अपनेको प्रसिद्ध करनेके लिए वह अद्भुत उपायोंका अवलम्बन किया करते थे।

आरम्भमें बर्नार्ड शाको बहुत थोड़े लोग जानते थे। उस समय तक उनके जो नाटक प्रकाशित हुए थे, उनकी चर्चा तत्कालीन साहित्य-समाजमें विशेष रूपसे नहीं हुई थी। केवल इने-गिने साहित्यिक उस समय उनकी रचनाओंकी कद्र करने-वाले थे। किन्तु इससे बर्नार्ड शा निराश नहीं हुए। उस समय वह लन्दन और उसके आस-पासकी पुस्तकोंकी दूकानोंका चक्कर लगाया करते थे। सहसा किसी दूकानमें प्रवेश करके दूकानदारसे पूछ बैठते—“महाशय, आपके पास बर्नार्ड शाकी पुस्तकें तो अवश्य होंगी?”

दूकानका कर्मचारी कुछ अप्रतिभ-सा होकर उत्तर देता—
“नहीं, महाशय।”

“हैं, यह क्या? शाके समान प्रसिद्ध लेखककी पुस्तकें आप नहीं रखते?”

“नहीं, शा किस देशके लेखक हैं, महाशय?”

“वाह, आप तो अच्छे व्यवसायी हैं। बर्नार्ड शाका नाम तक नहीं जानते? उनकी पुस्तकें अवश्य रखिये। इस समयके तरुण लेखकोंमें वही सबसे बड़े लेखक हैं और सबसे अधिक लोकप्रिय भी हैं।” इतना कहकर वह दूकानसे बाहर निकल जाते।

बर्नार्ड शा गत तीस वर्षोंसे निरामिष-भोजी हैं। किन्तु यदि उनके सामने कोई यह युक्ति उपस्थित करता है कि निरामिष-भोजी दीर्घजीवी होते हैं, तो इससे उन्हें चिढ़ होती है। एक बार एक मादक-द्रव्य-निवारिणी सभाके सञ्चालक बर्नार्ड शाको सभाके वार्षिक अधिवेशनमें निमन्त्रित करके ले गये। उन्होंने खयाल किया था कि शा मद्य-मांसका स्पर्श तक नहीं करते, इसलिए मादक-द्रव्यकी बुराइयोंके सम्बन्धमें उनके उपदेश विशेष प्रभावोत्पादक हो सकते हैं। किन्तु शाने जब भाषण देना आरम्भ किया, तो मादक-द्रव्यके निवारणके विरुद्ध तीव्र प्रतिवाद करते हुए उन्होंने ऐसी-ऐसी युक्तियां उपस्थित कीं, जिन्हें सुनकर सभाके संयोजक अत्यन्त क्षुब्ध एवं विस्मित हो उठे।

साहित्य-सेवाकी बदौलत शा आज लखपती बन चुके हैं। उनकी पुस्तकोंकी खपत संसारके सब देशोंमें होती है। इस समय वह एक पूंजीपति हैं और अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक “Intelligent Woman's Guide to Socialism” में उन्होंने अपनेको एक पूंजीपतिके रूपमें स्वीकार भी किया है। किन्तु इसके साथ ही वह पूंजीवादके कट्टर शत्रु और Equality of income आयकी समानताके प्रबल समर्थक भी हैं। दारिद्र्यको दुनियासे निर्मूल कर देना चाहते हैं, किन्तु दरिद्रोंसे शृणा करते हैं। उन्हें एक पैसा भी दान देना उचित नहीं समझते।

लोगोंको विस्मित एवं हताश करनेमें भी शा एक ही हैं। बहुत अनुनय-विनय करनेके बाद अमेरिकावालोंने उन्हें अमेरिका आनेका निमन्त्रण स्वीकार करनेके लिए राजी किया। शाको अपने बीच पाकर अमेरिकाने अपनेको धन्य समझा। किन्तु शाने अमेरिकामें रहते हुए ही अमेरिकनोंको

“मूर्ख” एवं “असंस्कृत” कह डाला। अपने भाषणोंमें उन्होंने बताया कि अमेरिकाके पास धन है, किन्तु बुद्धि नहीं है; शिक्षा है, किन्तु संस्कृतिका अभाव है। और मजा तो यह कि इसपर भी अमेरिकामें शाकी पुस्तकोंका काफी प्रचार एवं प्रभाव है। अमेरिकियोंके हृदयमें उनके प्रति श्रद्धा भी है और लोग बड़े चावसे उनके नाटकोंका अभिनय देखने जाते हैं।

शाके चरितकी इन विलक्षणताओंके साथ अब उनके उस विस्मयी रूपकी कल्पना कीजिये, जिसमें वह हमारे सामने विद्रोहकी रणभेरी लेकर उपस्थित होते हैं। साहित्य-क्षेत्रमें अवशीर्ण होनेके साथ-साथ उन्होंने समाजकी प्रचलित विधि-व्यवस्थाओं एवं धारणाओंके ऊपर निष्ठुर रूपमें आघात करना अपने जीवनका ब्रत-सा ही बना लिया। तभी तो मि० ए० जी० गार्डनरने उनके सम्बन्धमें लिखा है :—
“He is the tonic of his time, very fitted to the taste but stimulating. He clears the mind of cant. He clears the atmosphere of fog.”
अर्थात् “वह अपने समयके लिए उस पौष्टिक दवाके समान हैं, जिसका स्वाद तो बहुत कड़वा होता है, किन्तु साथ ही वह उद्दीपक भी होती है। वह हमारे मनको दाम्भिकतासे मुक्त कर देते हैं। वह वातावरणको कुहासाच्छन्न नहीं रहने देते।”

असल बात तो यह है कि जब तक मनुष्यके मनपर किसी विराट् आदर्शका आधिपत्य नहीं होता, तभी तक वह अपनी प्रवृत्तियोंके अनुसार झोंकमें आकर काम करता है। कल्पना-लोकमें विचरण करते हुए अपनी प्रवृत्तियोंके अनुसार सत्यं, शिवं, सुन्दरंकी उपासना करता है। किन्तु जब मनुष्यको यह सहस्र होने लगता है कि मानव-समाजको कल्याणका उद्बोधन नहीं हुआ है और अकल्याणके गर्तसे उसे कल्याणके स्वर्गमें जागरित करना सम्भव है, उसी समय वह अपनी व्यक्तिगत प्रवृत्तियों एवं कामनाओंसे ऊपर उठकर मनुष्य-समाजके मङ्गलको अपने जीवनका लक्ष्य बना लेता है। मानव-समाजके कल्याणकी यह भावना उसके हृदयमें उन्मादनाका रूप धारण कर लेती है। शाने अपने विश्वविल्यात नाटक Man and Superman में डान जुयानके मुंहसे अपने सम्बन्धमें कहलवाया है—एक दिन ऐसा था, जब वह भी और सब मनुष्योंके समान अपने शौक

और अपनी कामनाओंको लेकर ही व्यस्त रहा करते थे। जब तक उनके अन्तरमें मनुष्यत्वका उद्बोधन नहीं हुआ था, तब तक वह अपने व्यक्तित्वकी क्षुद्र परिधिमें ही चकर लगाया करते थे। किन्तु इस प्रकार अपने व्यक्तित्व एवं क्षुद्र स्वार्थको लेकर जब तक मनुष्य निमग्न रहता है, तब तक क्या उसे वास्तविक सुखकी प्राप्ति हो सकती है। डान जुयानके द्वारा शाने कहा है :—“I tell you that in the pursuit of my own pleasure, my own health, my own fortune I have never known happiness.” अर्थात् “जब तक मैं अपने सुख, अपने स्वास्थ्य और अपने सौभाग्यके पीछे पड़ा रहा, मुझे कुछ भी आनन्द नहीं मिला।” जीवनमें परिवर्तन हुआ। और यह परिवर्तन ही मनमें एक नूतन आदर्शके जन्म लेनेका कारण हुआ। नाटकके नायक टैनरके मुंहसे शा कहते हैं :—“No; the change that came to me was the birth in me of moral passion; and I declare that according to my experience moral passion is the only real passion.” शाकी दृष्टिमें यह Moral passion अर्थात् सात्विक क्रोध ही human perfection मानवीय परिपूर्णता है, जो मनुष्यको समस्त दुर्बलताओंसे मुक्त करके उसके व्यक्तित्वकी असीम शक्ति एवं ज्ञानके बीच सम्पूर्णता प्रदान करता है। मनुष्य-मात्रके आत्म-प्रकाशके पथको प्रशस्त करनेके लिए शाके मनमें उन्मादना जाग्रत हुई। इस उन्मादनाके जाग्रत हो उठनेपर फिर मनुष्य स्थिर नहीं रह सकता। संसारको कल्याण-मार्गपर ले चलनेके लिए वह पागल हो उठता है।

शाका कहना है कि मनुष्यका जो रूप आज हम अपने समक्ष देख रहे हैं, वह उसके आदिम जीवनका बर्बर रूप है। जहां तक जीवनका सम्बन्ध है, मनुष्य जरा भी अप्रसर नहीं हो सका है। दो सौ वर्ष पहले मनुष्य जिस प्रकारके घरोंमें रहता था, जैसा भोजन करता था, वैसा ही अभी भी कर रहा है। किन्तु मृत्युका जहां सम्बन्ध है, वहां उसने नये-नये मारणास्त्रोंका आविष्कार करके हिंसातामें जङ्गली खूंखार पशुओंको भी मात कर दिया है। मशीनगन, सबमेरिन, टार्पिडो और हवाई जहाज द्वारा उसने सारे संसारमें जन-संहारका उत्सव आरम्भ कर दिया है। धर्मको उसने ग्रहण

किया है दूसरोंसे घृणा करनेके लिए ; बिना न्याय-विचारके निर्दोष व्यक्तियोंको निर्वासित करनेके लिए उसने कानूनको अपना हथियार बनाया है। स्वयं परिश्रम न करके दूसरोंके परिश्रमकी कमाईका वह उपभोग करता है, और जो लोग इस प्रकारके निर्लज्ज परस्वापहारी हैं, वे सज्जन समझे जाते हैं। शा कहते हैं—इस निकृष्ट श्रेणीके मनुष्योंको लेकर संसारका मङ्गलसाधन असम्भव है।

यह हम पहले ही कह आये हैं कि शा Equality of income आयकी समानताके प्रबल समर्थक हैं। इसी मन्त्रका जयगान उन्होंने अपनी पुस्तक *Intelligent woman's Guide to Socialism*. में किया है। शा जिस आदर्श समाजकी सृष्टिकी कामना कर रहे हैं, उसमें ऐश्वर्यका औद्धत्य एवं दारिद्र्यका अभिशाप दोनोंमेंसे किसीका अस्तित्व सम्भव नहीं होगा। आज सभ्यताके वरदान-स्वरूप सम्पत्तिका प्राचुर्य होनेपर भी जो लक्ष-लक्ष, कोटि-कोटि मनुष्य बुभुक्ष एवं नग्न अवस्थामें रहकर जीवनके दुःखमय दिन व्यतीत करते हैं और मुट्ठी-भर मनुष्य जमीन, खान और कल-कारखानोंके मालिक बनकर सब प्रकारके सुखोंका उपभोग करते हैं, इस वैषम्यका कारण क्या है ? कारण है, मुट्ठी-भर धन-कुबेरोंकी निर्लज्ज स्वार्थपरता। लोभकी इस प्रवृत्तिका हमें सबसे उत्कट रूप दीख पड़ता है व्यक्तिगत सम्पत्तिमें। बर्नार्ड शाने अपने नाटक "On the Rocks" में लिखा है :—"Now the central fact of all these facts is that the private proprietors have irresponsible powers of life and death in the state." अर्थात् "जो लोग व्यक्तिगत सम्पत्तिके अधिकारी हैं, राष्ट्रके बहुसंख्यक मनुष्योंके जीवन-मरणके ऊपर उनका उत्तरदायित्वविहीन अधिकार है।" आगे चलकर शाने लिखा है :—"For when a tract of land becomes the private property of an individual who has to depend on it for his subsistence, the relation between his and the inhabitants of the tract become an economic one ; and if they become economically superfluous or wasteful, he must exterminate them. This is continually happening wherever private pro-

perty in land exists." अर्थात् "जिसे जमीनके ऊपर निर्भर करना पड़ता है, जीविका-निर्वाहके लिए वह मनुष्य जब किसी जमीनका मालिक बन जाता है, तो उस जमीनमें जो लोग वास करते हैं, उनके साथ जमीनके मालिकका सम्बन्ध हानि-लाभका सम्बन्ध होता है। और जमीनमें उनका वास आर्थिक दृष्टिसे जब फालतू या क्षतिजनक हो उठता है, तो जमीनका मालिक उनका उच्छेद कर डालता है। जहाँ कहीं जमीन मनुष्यकी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझी गयी है, वहाँ जमींदार इसी तरह बराबर प्रजाका उच्छेद करता आ रहा है।"

इस तरह जो लोग जमीनसे विताड़ित कर दिये जाते हैं, वे देहातसे शहरोंमें चले जाते हैं और वहाँ कल-कारखानोंमें कुली-मजदूर बनकर काम करते हैं। गन्दी गलियोंमें तङ्ग कोठरियोंमें उनका वास होता है। उनमें अधिकांश नैतिक दृष्टिसे भ्रष्ट एवं पतित बन जाते हैं। आखिर कल-कारखानोंसे भी उन्हें विताड़ित कर दिया जाता है। नये-नये यन्त्रोंका आविष्कार होता है, जिससे कारखानेके मालिकको मजदूरोंकी पहले-जैसी जरूरत नहीं रह जाती। मनुष्यका काम यन्त्र द्वारा होने लगता है। उस समय अभागे मजदूरोंको हुकम दिया जाता है कि कारखानेमें उनकी जरूरत नहीं है, इसलिए उन्हें कामसे बर्खास्त किया जाता है। अब उनके लिए दिशायें शून्य-सी प्रतीत होने लगती हैं; कहां जाय, क्या करें ! अपने तथा परिवारके अनाहारकी विकराल छाया मूर्ति सामने आकर खड़ी हो जाती है। इससे बचनेके लिए कितने ही तो देश छोड़कर विदेश चले जाते हैं और अधिकांश देशमें ही रहकर सिपाही, नौकर या मेहतरका काम करने लगते हैं। लड़कियोंको पतिताका जीवन यापन करनेके लिए बाध्य होना पड़ता है। इस प्रकार जमीन और कल-कारखानोंसे विताड़ित होकर लाखों मनुष्य अकालमें ही काल-कवलित हो जाते हैं। किन्तु उनकी इस मृत्युको लेकर कहीं भी उत्तेजना नहीं फैलती। इस तरह कितने ही बच्चे पौष्टिक खाद्यके अभावमें, रोगी उत्तम चिकित्सा एवं दवायके अभावमें संसार छोड़कर बिदा होते जा रहे हैं। उनके लिए कोई चिन्ता तक नहीं करता। इसके लिए उत्तरदायी कौन है ? इसके उत्तरमें बर्नार्ड शा कहते हैं, वर्तमान सभ्यता, जिसने व्यक्तिगत सम्पत्ति-को स्वीकार कर लिया है। "Either way and all

ways the extermination is a real and permanent feature of private property civilisation” व्यक्तिगत सम्पत्तिको हमारी सम्प्रतिष्ठा जो स्वीकार कर लिया है, इसका परिणाम हुआ है बहुसंख्यक मनुष्योंका उच्छेद-साधन।

इसलिए सबसे पहले इस व्यक्तिगत सम्पत्तिका उच्छेद-साधन करना होगा। शाके मतसे जब तक समाजमें व्यक्तिगत सम्पत्तिका अस्तित्व बना रहेगा और एक दलके मनुष्य अपनी व्यक्तिगत सम्पत्तिके बलपर बहुसंख्यक मनुष्योंका शोषण करते रहेंगे, तब तक सर्वसाधारणका कल्याण असम्भव है। उन्होंने लिखा है:—“We know that private property distributes wealth, work, and leisure so unevenly that a wretchedly poor and miserably overworked majority are forced to maintain a minority inordinately rich and passionately convinced that labour is so disgraceful to them that they dare not be seen carrying a parcel down Bond street.” अर्थात् “हम लोग यह जानते कि व्यक्तिगत सम्पत्तिके कारण सम्पत्ति, काम और अवकाशका वितरण इस प्रकार असमान रूपमें होता है, जिससे बहुसंख्यक मनुष्योंको दुःसह दारिद्र्यके बीच खूबसे लेकर शाम तक खटते हुए मुट्ठी-भर धनिकोंका भरण-पोषण करना पड़ता है, जिनके पास विपुल ऐश्वर्य तो है ही, साथ ही परिश्रम करना भी उनके लिए अत्यन्त कलङ्कजनक है। शारीरिक परिश्रमके प्रति उनकी घृणा इतनी बड़ी-चढ़ी होती है कि रास्तेसे होकर एक पार्सल हाथमें लिये हुए जानेमें भी उन्हें सझोच मालूम पड़ता है।”

इसलिए शाके मतसे मानव-समाजके मङ्गलका एक प्रधान उपाय है व्यक्तिगत सम्पत्तिके अस्तित्वका विलोप-साधन। “It still takes some conviction to repudiate an institution so well spoken of as private property; but the facts must be faced; our clandestine methods of violating it by income-tax and surtax, which mean only “What a thief stole, steal thou from the thief.” will no longer serve.....” अर्थात्

व्यक्तिगत सम्पत्तिकी प्रशंसा हम लोग बहुत दिनोंसे सुनते आ रहे हैं—इसलिए इस प्रकारकी एक संस्थाको अस्वीकार करनेमें दृढ़ विश्वासकी जरूरत है। किन्तु जो वास्तविक तथ्य है, उसका सामना हमें करना ही होगा। इस समय भी तो हम व्यक्तिगत सम्पत्तिके ऊपर इन्कमटैक्स और सर टैक्स लगाकर आघात कर रहे हैं, जिसका अर्थ यह होता है कि ‘चोरने जिस धनको चुराया है, उस चुराये हुए धनमेंसे तुम भी चोरी कर लो।’ यह कब तक चल सकता है।”

किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि बर्नार्ड शाके मतसे समाजमें आर्थिकी समानता स्थापित हो जानेसे ही वर्तमान समाज-व्यवस्थामें आमूल परिवर्तन हो जायगा और सब लोग सुखी-समन्न बन जायेंगे। इसके लिए शा बताते हैं कि नूतन मनुष्योंकी सृष्टि करनी होगी। यह नूतन मनुष्य शाकी भावामें Superman अथवा अतिमानव होंगे। We must replace the man by the superman. जबतक इस प्रकारके अतिमानवोंका आविर्भाव नहीं होता, संसारमें हिंस्र प्रकृतिके मनुष्योंकी निष्ठुर स्वार्थपरता बनी ही रहेगी और इससे समाजका अकल्याण होता ही रहेगा। और दो-चार या दो-चार दर्जनकी संख्यामें इस प्रकारके अतिमानवों द्वारा यह काम पूरा नहीं हो सकता। किसानों और मजदूरोंके हाथमें राष्ट्रीय क्षमता आनेसे ही वर्तमान समाजका रूप सम्पूर्ण बदल जायेगा, ऐसी आशा करना दुराशा-मात्र है। हां, इससे इतना अवश्य होगा कि इस समय-जैसा धन-वैषम्य नहीं रह जायगा और बहुत-से सामाजिक दोषों एवं अन्यायोंका अन्त हो जायगा। किन्तु जब तक जनसाधारणके हृदय और स्वभावमें परिवर्तन नहीं होता, तब तक एक लेनिन और गांधीके आविर्भावसे अथवा राष्ट्रीय क्षमता सर्वसाधारणके हाथमें आनेसे कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हो सकता। शाका कहना है—जब तक इंगलैंडका प्रत्येक व्यक्ति क्रामवेल, फ्रान्सका प्रत्येक व्यक्ति नेपोलियन, रोमका प्रत्येक व्यक्ति सीजर और जर्मनीका प्रत्येक व्यक्ति गेंडे और लूथरके समान नहीं होगा, तब तक संसारकी जो वर्तमान गतिविधि है, वही बहुत कुछ कायम रहेगी।

किन्तु इस अतिमानव या सुपरमैनकी सृष्टिका उपाय क्या है? शा कहते हैं, मनुष्यका इस समय जैसा स्वभाव है,

वह नीतिनिष्ठोंके उपदेश, व्यवस्थापिका परिषद्के कानून, शिक्षकोंके शिक्षा-प्रदान अथवा साम्यवादियोंके समाज-विप्लव द्वारा परिवर्तित होना कठिन है। इसका उपाय है—समाजमें हिंस्र पशु-प्रकृतिके जो मनुष्य हैं, उन्हें समाजसे पृथक् कर देना होगा। जब तक ये वंशवृद्धि करते रहेंगे, समाजमें इस प्रकारके निकृष्ट मनुष्य भरते रहेंगे, जो स्वयं शासन-कार्यमें तो अक्षम होंगे ही—सुयोग्य मनुष्योंके शासनको भी माननेके लिए तैयार नहीं होंगे। इसलिए शाके मतसे नये रूपमें मनुष्यका इतिहास आरम्भ होना चाहिए। और इस नूतन इतिहासका आधार होगा मनुष्यका नूतन रक्त—जिसमें रोगके बीज, चरित्रहीनताकी कलुषता एवं निर्बुद्धिताकी जड़ता नहीं होगी। वह रक्त होगा निर्मल, सतेज, बुद्धि द्वारा उज्ज्वल और मनुष्यत्वकी महिमासे महीयान।

बर्नार्ड शा जब किसीके घरपर अतिथिके रूपमें पहुंचते हैं, तो घरका मालिक अपनेको परम सौभाग्यशाली समझता है। राजाकी तरह उनकी अभ्यर्थना की जाती है। किन्तु शा क्षण-भरमें ही उस घरके सब लोगोंके साथ इस तरह हिलमिल जाते हैं, मानो वह अपने ही घरमें हों। मान लीजिये कि शा कहींसे घूमते-घामते आपके सकानपर पहुंचे। कुशल-प्रश्नके बाद क्षण-भरमें ही वह आपके साथ आत्मीय जन-जैसा व्यवहार करने लग जायेंगे। आप उत्कण्ठित होकर उनकी सरस आलोचनाको सुन रहे हैं। उनके अगाध पाण्डित्य, विविध विषयक अद्भुत ज्ञान और सबसे बड़कर उनकी वचन-भङ्गी आपको चकित, विस्मित एवं मुग्ध कर देगी। एक प्रसङ्गसे दूसरे प्रसङ्ग और दूसरेसे तीसरे प्रसङ्गपर दौड़ जाना

तो उनके लिए बायें हाथका खेल-सा है। आपके बच्चोंकी शिक्षा कैसी होनी चाहिए, किस प्रकारके स्कूलोंमें उन्हें भर्ती कराना चाहिए, कौन-सी पुस्तकें उन्हें पढ़नी चाहिए और कौन-सी पुस्तकें नहीं पढ़नी चाहिए, आपको क्या भोजन करना चाहिए और क्या भोजन नहीं करना चाहिए, स्वास्थ्यके नियमोंका किस प्रकार पालन करना चाहिए—सारांश यह कि बर्नार्ड शा एक साथ ही आपके चिकित्सक, कानूनी सलाहकार, शिक्षक, धर्मोपदेशक, दर्जी, मोची, नापित सब कुछ बन जायेंगे। और आप ही के साथ नहीं, घरके बच्चोंके साथ भी वह इस तरह धुल-धुलकर बातें करने लोंगे, जिससे बच्चे उन्हें एक नवागन्तुक व्यक्ति नहीं समझेंगे। छोटे-छोटे लड़कोंको वह समाज-विद्रोहकी बातें सुनाकर उन्हें उदबुद्ध करनेकी चेष्टा करेंगे। इसके बाद जब वह आपके घरसे बिदा होने लोंगे, तो आप साश्चर्य इस बातपर विचार करने लोंगे कि इस व्यक्तिका आपके साथ कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है और वह आपकी भलाई-बुराईके प्रति कितनी सहानुभूति रखता है। किन्तु आपके घरके दरवाजेसे बाहर होते ही बर्नार्ड शा Out of sight, out of mind बन जाते हैं। अब तक उन्होंने आपके साथ जो कुछ बातचीत या विचार किया है, सब भूल चुके हैं। इस प्रकार निर्लस एवं उदासीन, इस प्रकारके महानुभाव एवं विद्रोही बर्नार्ड शा हैं। अपने इन परस्पर-विरोधी गुणोंके कारण ही जार्ज बर्नार्ड शा संसारकी दृष्टिमें एक विलक्षण पुरुष प्रतीत हो रहे हैं और इन परस्पर विपरीत गुणोंका समन्वय ही शाके उद्भट चरित्रकी विशिष्टतायें हैं।



वह कौन ?

श्री 'पहाड़ी'

दार्शनिक बन, जीवनकी विवेचना करना भी, आसान काम नहीं। शरीर नष्ट हो जाता है। कारण-शरीर और स्थूल-शरीर फिर भी इसी दुनियामें डोलता रहेगा। यह विश्वास न जाने कबसे चला आ रहा है। वह कारण-शरीर या आत्मा, स्थूल-शरीर आदि—अर्थात् शारीरिक पांच तत्त्वोंके बाद, सूक्ष्म पांच तत्त्व, शरीरके मिट जानेके बाद भी बाकी बचे रहते हैं। वह कभी खतम नहीं होते। ईर्ष्या, क्रोध तक उनके साथ-साथ जीवित रहते हैं। सबसे आश्चर्य तो यह है, जिस रूपको चाहे, स्थूल-शरीर धारण कर लेता है। उसमें स्पर्श करनेकी भी ताकत होती है। हम उसे महसूस कर सकते हैं। सिर्फ देखना हमारी शक्तिके भीतर है। यह सब बात किसी-न-किसी रूपमें हम मानते चले आये हैं। वेदान्त यही सिखलाता है। कई-कई आत्मायें अतृप्त तृष्णाकी वजह भूत-प्रेत-योनिमें डोला करती हैं। उनकी कुछ चाहना भी होती है। उस सबको जान लेना साधारण बात नहीं है। वे तो सहज ही भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेते हैं। जो चाहेंगे, बनेंगे। आश्चर्यमें आदमी, उस सबपर, दृढ़ रह जाता है। यह निरा पागलपन होता, हम इसे बिसार देते। वास्तवमें जो सच है, उससे इनकार नहीं कर सकते हैं। अपने ज्ञानपर अविश्वास करें, यह भी नहीं होगा। कुछ ऐसी धारणायें पुरातन कालसे चली आ रही हैं कि हम उनको मानते चले आते हैं। कारण कि इस तरहकी बातें, सचके साथ-साथ, कुछ हम गढ़ भी लेते हैं। वह आदत पड़ गयी है। अब सब सही मालूम पड़ता है। हम खुद उसको भय बनाकर डरते हैं। वैसे, वह आत्मा इन्सानको दुःख नहीं पहुंचाती है। उसका ध्येय हमको परेशान करना नहीं होता। गिनतीकी ही कुछ दुष्ट आत्मायें होती हैं, और सब तो शरीर। कर्तव्य कोई उनका अधूरा रह जाता है, जिसे कि कारण-शरीर पूरा करना चाहता है। इसीलिए वे दुनियाके चारों ओर वायुमण्डलमें चकराटा करती हैं। ये अवसरकी ताकतमें रहती हैं कि मौका मिलते ही, अपने सिद्धान्तको निर्या, कहीं और जगह जीवन ले लें। उनको भी भटकना पसन्द नहीं है। बड़ा कष्ट इस सबसे

होता है। उनके भी जज्बात होते हैं। वे हरएक बातको समझ, दुःख मोल लेनेके आदी भी बन जाते हैं। किसी भी तरह हो, हम उन सबको झूठा व्यापार कह भुला नहीं सकते हैं। नियति, कर्ता और उससे सम्बन्धित घटनाओंको आदमी कितना ही समझ लेना चाहे, थाह नहीं मिलती है। यहीं आदमी अपनेको बेबस और मजबूर पाता है।

तो, वह लड़की क्या मैंने एक असेंसे नहीं देखी थी। नाम उसका नहीं जानता। नाम रख लेना न जाने समाजमें क्यों जारी है। वह लड़की थी, कहकर ही क्या समूची वह आगे नहीं आ जाती है। लड़की ! क्यों, उसकी सूरत भी लड़कियोंकी तरह लुभावनी थी और उसी तरह आकर्षक कपड़े पहनना भी उसने अनजाने सीख लिया था। वह भी नारीकी तरह चञ्चल थी। नारीके गुण-अवगुण तो गिने जा सकते हैं। वही कमी-बेशीमें हरएक लड़कीमें पाये जावेंगे। तब लड़की सिर्फ लड़की है। उसका नाम रख, अपना निज-सा एकको साबित करना व्यर्थका ही ढकोसला है। यह लड़कियां, लड़कियोंकी तरह रहती भी हैं। बचपनमें छोटे-छोटे फ्राक पहनेंगी—चौड़े-चौड़े गरारे पहननेका रिवाज आज चालू नहीं है। वैसे सलवार भी पहनती हैं। यह तो मुल्ककी चालपर निर्भर रहता है। आगे एक दिन जम्पर, कुरता, चितकबरी धोतियां व रङ्गीन कपड़े पहननेकी इनको रुचि हो जाती है। यह जवानीका तकाजा है। फिर शादी हो जावेगी। मां बन जाना, गृहस्थीका भार निभाना, सब कुछ खूबीसे यह जानती हैं। यही संभालना कुदरती सीख है। इनकी जिन्दगी उन कीड़ोंकी तरह रङ्ग बदलती है—जो बरसातमें हरा रङ्ग, जाड़ोंमें कुछ पीला-पीला, बसन्तमें एकदम पीला और गर्मियोंमें सूखी जमीनवाला रङ्ग पा जाते हैं। इन कीड़ोंकी हिफाजत करनेको नियतिने यह नियामत सौंपी है। अन्यथा एक मौसमके बाद, वे जीवित नहीं रह सकते थे। यह लड़कियां भी उसी तरह, एक सीमित, नियमित जीवनमें प्रवेश करती हैं। जहां चारों ओरसे पुष्प-समाजने कायदे-कानूनोंका बाड़ा लगा दिया है। अब उनको भी वह जीवन खूब पसन्द है। वे

उसके प्रति कोई भी विद्रोही भावनायें नहीं रखती हैं। उनका हाल यही हमेशा रहेगा। और पुरुष तो है उच्छृङ्खल प्रकृतिका, वह अपने दिलका बादशाह है। कुछ नहीं होगा, आखिर आवारा बन सकता है। उसके लिए कोई खास रुकावट नहीं। वह सुभीता और सहूलियत बरतना जानता है। इस तरह, यह लड़कियोंका अपमान नहीं है। उच्छृङ्खल जीवन, अनुमान और अनुसन्धानका जीवन है। नारी कोमल अधिक है। उसका वह गुण न होता, यह पुरुष ठीक-ठीक नहीं चलते। वह कितना ही कठोर और फौलादका कलेजा रख लें, नारी-अनुभूतिके आगे पिघल जाते हैं। तब, वह नारी भी हुकूमत करती है। मार्ग-प्रदर्शिकाका काम अपने हाथमें ले, आदमीको ठीक-ठीक रास्ता छद्ताती है। इसी तरह समझौता रोज गृहस्थीमें चलता है, और दुनियाके भीतर स्थापित गृहस्थीमें ज्यादा झगड़ा नहीं उठता।

लेकिन उस लड़कीसे जान-पहचान नहीं थी। दूरसे कभी, टकटकी लगा, उसे देखता था। वह भी न जाने क्यों मेरे आगे परदा बरतना भूल जाती थी। लापरवाहीमें, अपनी सूनी आंखोंसे, अपने बंगलेके हातेके चारों ओर देखती, अनमनी-अनमनी घूमती रहेगी। कभी तो अपना आंचल सिर हिला फेंक देती थी, ताकि मैं उसे खूब देख लूं। फिर वह घूमती रहेगी, घूमती रहेगी या गायके आगे जाकर खड़ी होगी। ग्वाला गाय दुहता रहता था। वह खड़ी-खड़ी देखा करेगी। गायकी काली पूंछवाली सफेद बाछी थी। वह उसे प्यार करेगी। बाछी छूटकर उछल-कूद मचाया करती है। वह खुश होगी। बाछीको देखेगी। फिर कभी-कभी मेरी ओर भी। वह क्या बात थी। पहले-पहल मैंने परवाह नहीं की। सोचा, होगी कोई। हजारोंकी तादादमें लड़कियां दुनियामें फैली हैं। यदि राह चलते, हर एकसे उलझनेकी कोशिश की जावे, तब आदमी निभ लिया। ऐसा हाल ठीक नहीं होता। व्यर्थका झगड़ा खरीद, उसकी दूकानदारीका भार उठानेमें टोटा ही रहता है। कुतूहल तब भी मनमें कभी-कभी उठता है। असाधारण कुछ लड़कियां इसी दुनियामें हैं। अकारण उनपर निगाह न जाने क्यों पड़ जाती है। उनकी पहली दृष्टिका असर भी अज्ञेय एक गुदगुदी दिलमें पैदा कर देता है। उसके भीतर कोई कलुषित भावना नहीं होती। हां, उस लड़कीके प्रभावसे हम अपनेको अलग नहीं हटा सकते

हैं। जानकर कि उससे आगे कोई मतलब नहीं रहेगा, फिर-हाल उसके जीवनकी छान-बीन करनेकी फिक्र हो जाती है। यह कैसी भावना है। यह भावुकता नहीं। भावुकता निश्चित नहीं होती। भावना तो उस रङ्गीन चिड़ियाकी तरह होती है, जो कभी जरा कन्वेपर बैठ, खुद ही फिर उड़ जाती है। वह क्यों बैठी और कैसे उड़ गयी, इसपर आदमी सोचता-सोचता कितना ही उलझ जावे, किसी भी नतीजेको नहीं पहुंचता है। इस सब धन्धेको बेकार समझकर भी, आदमी भूलना नहीं जानता। भावना न हो, दुःख और पीड़ा उदित नहीं होगी। बिना इसके आदमी क्या विद्रोह नहीं जगाता है। तभी उसमें सहर्ष करनेका सवाल उठता है। वह अपनेको सबल गिन, खड़ा हो, जिन्दगीमें हारना नहीं चाहता है। वह लड़ेगा—लड़ेगा। हर तरह अपनेको दैयार पाता है। इस सबको तथ्यहीन कहकर ठुकराया भी नहीं जा सकता है।

उस शहरके अस्तित्वमें चन्द महीने, अपने एक रिश्तेदार-के यहां पड़ा-पड़ा, काट रहा था। दिन-भर मस्तीके साथ पड़ा रहना। सांझको घूमने दूर-दूर खेतोंकी ओर बढ़ जाना। साधारण दर्जेका शहर, आमोद-प्रमोदका कोई साधन नहीं। न सिनेमा था, न अपना कोई यार-दोस्त। ऐसी अवस्थामें आदमी, अकेला-अकेला उब जाता है। लेकिन मजबूरीके आगे अपना कौन-सा साधन हथियार बनाया जावे। चुपचाप रह, इसीलिए अपनेपर दलील करनी ठीक नहीं लगती है। आदमी अपनेको बहुत कमजोर साबित करे, वह अपनी आत्माको मिटा देना होगा। तब आदमी बेकार-बेकार अपनेको पाता है। बरगदके पेड़के उस मोटे तनेकी तरह, जिसपर एक ओरसे दीमक अपनी बांधी बना लेते हैं, उसकी कुछ टहनियां सूख रही हैं। तनेकी छालमें सिर्फ प्राण हैं। बाकीमें, मिट्टीका एक ऊंचा स्तूप-सा, खड़ा होता जाता है। आदमी कुड़-कुड़कर, इसी तरह अपनेको मिटा डालता है। मैं तो इतना डरपोक नहीं। अपनेको जिन्दा रखनेका शौक है। इसीलिए हर तरह अपना दिल बहला लिया करता हूं। बिना किसी स्वार्थके अपनेको, अपनी आंखोंमें कम करना नहीं चाहता। कुछ नहीं होगा, बढ़िया सूट पहना करता हूं। टाई लगेगी। फेल्ट हैट सिरपर डाला जाता है। चेहरेको हमेशा दाढ़ी-मोछोंसे सफाचट रखता हूं। चिकने गालोंपर क्रीम मला जाता है। सांझको हाथपर

छोटा-पतला, चमड़ा मढ़ा हुआ रूख घुमाता-घुमाता, घूमने दूर निकल जाता हूँ। कभी दिलमें खयाल उठता है, कौन इस शहरमें मुझे देखेगा। तब क्या इसीलिए यह सब ठाट-बाट है कि 'कोई' मुझे देख ले। बड़ा स्वार्थी हूँ तब। वैसे आस-पास कई बंगले हैं। उनसे अपना भला क्या मतलब है। मेरी किसी भी परिवारसे जान-पहचान नहीं। न मैंने कभी जोड़ लेनेकी कोशिश की। उधरसे गुजरते समय लड़कियोंको बैड मिण्टन खेलते देखता, किसी बंगलेसे हार्मोनियमकी सुरीली आवाज कानोंमें पड़ती। कहीं रेडियोके प्रोग्रामकी घर-घर-घर भारी आवाज भी पाता था। वहाँसे युवतियोंकी मीठी हंसीकी आवाज भी दृष्टांतकी तरह दिलपर चोट करती थी। मैं उधर देखना पसन्द नहीं करता। देखता सच ही नहीं हूँ। आगे-आगे बढ़ जाता हूँ। मुझे घूमना है, न कि कदम-कदमपर जरा-जरा बातोंसे रुक जाना। यह व्यर्थका परहेज ही हो, बरतना बखूबी मैं जानता हूँ। अपना-अपना खयाल है। मैं उसके लिए, दुनिया-भरके लोगोंकी ओर नहीं ताका करता हूँ। मेरी अपनी बात, अपनी ही है। दुनियासे अधिक सरोकार मुझे नहीं।

अनायास उस लड़कीको एक दिन देखा था। बहुत बड़ा बंगला। उसपर चारों ओर लोहेके तारोंसे घिरा, चौड़ा हाता था। बंगलेसे कुछ हटे, नौकरोंके क्वार्टर हैं। वहीं एक जगह सफेद गाय बंधी रहती है। हातेके एक ओर मक्का खड़ी है, जिसपर भुट्टे नजर पड़ जाते हैं। बाकी आगे हातेमें चरी बोयी गयी है, जो कि काफी उग आयी है। वहीं मैंने देखा, वह लड़की ऊपर छतपर खड़ी थी। और मैंने एक ही दृष्टिमें भांपा कि वह चुपचाप न जाने क्यों, दूर-दूर आंखें फाड़-फाड़ देख रही है। उसकी निगाह उधर थी; जहां अमी-अमी सूर्य डूब चुका है। अस्त-व्यस्त खड़ी, वह उधर खाली आंखोंसे अनिमेष देख रही थी। एक बार उसकी निगाह मुझपर पड़ी, उसने एक नजर मुझे देखा। फिर वही, टकटकी लगाकर, देखती रही। मैं रुका नहीं। आगे-आगे बढ़ गया। घूमनेसे लौटकर देखा, वह लड़की छतकी मुंडेरीपर बैठी हुई थी। उधर ही उसकी दृष्टि थी। रात पड़ गयी थी। उस छायाको मैं पहचान गया। तब वह, वहां क्यों बैठी है। यह सवाल मेरे मनमें बार-बार उठा। क्या वह बहुत दुःखी है। वहां कोई सम्पन्न गृहस्थ रहता था। उनकी मोटर थी। वहांकी

औरतोंको कई बार मैंने सज-धजकर मोटरमें घूमने जाते देखा है। उनका बहुत वैभव था। तब वह लड़की कौन है? वह उन्नीस-बीस सालकी लगती थी। क्या उसकी शादी हो गयी है। या वह विधवा है। उस डूबते सूर्यसे क्या पाना चाहती है। यदि उसके दिलमें उचाट है, इस तरह वह मिटेगा नहीं। यह तो दिलकी बेकलीकी और बढ़ा देता है। वह दुःखी है। उसे एकान्तमें और दुःख इस तरह बटोरना नहीं चाहिए। खाली मन अक्सर जरा-सी आंचसे पिघल जाता है। वह क्यों नहीं अपने साथकी औरतोंके साथ रेडियोके पास बैठ जाती है। वह दिल बहलानेका बुरा साधन नहीं। अपनेको शून्य साबित करना हितकर नहीं होता। वह तब क्रिधर बढ़ रही थी। वह सूर्य रोजाना डूबता है। वह उससे अपनी तुलना नहीं कर सकती है। उस शक्तिके साथ-साथ, अपना जीवन किसी अज्ञातको सौंप देना भी, बेकार साबित होता है। उसे हर हालतमें इस बातको विवेकके साथ हटा देना चाहिए। इस तरह छतपर खड़े होकर, डूबते सूर्यसे रात पड़ने तक, वहीं उस बिन्दुपर देखते रहना—यह व्यवस्था शुभ नहीं लगी।

और फिर मैंने देखा, रोजाना वही-वही हाल। मैं अचरजमें रह गया। यह जरूर गलत था कि उस लड़कीके लिए, मेरे दिलमें मोह पैदा हो गया; खुद मैंने भी उसे मिटानेकी कोशिश नहीं की। उस रोगका इलाज मैं जानता था। आधी-आधी रात, उस लड़कीके बारेमें अपनेमें छानबीन करते-करते मैंने काटी। कोई नतीजा नहीं हुआ। कुछ भी पा सका नहीं। इधर-उधर पूछ-ताछकर लोगोंका सन्देश बढ़ाना भी जंचा नहीं। यहां दुनियामें राय हरएक जाहिर करता है। विवेचनावाला व्यापार सीख, आदमी जरा-जरा बातोंको तुफेल बना, खड़ा कर देता है। आदमीसे इसीलिए मुझे बहुत डर लगता है। हरएक सभ्य आदमीका यही हाल है। उसके आगे खड़े होकर, ऐसे सवालोंका जवाब सुन, सह लेनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है। अपने ही से तब भी किसी बातका निश्चय नहीं हो सकता है। एक आदमी तो दूसरेपर निर्भर रहता है। मैं अकेले-अकेले कितनी बातें सोचा करूं। अपनेमें उस बेचैन, पगली लड़कीका भार, अनजाने ले लेनेके बाद, दिलमें तसल्ली न जाने क्यों नहीं होती है। खुद उससे मिल, बातें पूछ लेना साध्य नहीं था। दुनियामें

हर एक लड़कीकी अपनी-अपनी पीड़ा है। इस व्यास संसारमें कितने-कितने लोगोंसे वास्ता जोड़, सम्बन्ध स्थापित किया जाय। रोज वह कई-कई बार क्षितिजसे आंखें हटा, मुझे भी देख लेती थी। उन फैलायी आंखोंके भीतर पैरनेवाली तीक्ष्ण रेखा, मेरी आंखोंसे कभी नहीं छूटी। मैं तो हमेशा अपनी आंखोंको बुरी रखता हूँ। उनमें बाहरी ज्योतिका लगाव कभी मैंने रखना नहीं चाहा। वही एक सफेद बुन्दोंवाली साड़ी। एक रङ्गीन-सा जम्पर। हमेशा एक-सा कपड़ा वह पहना करती थी। कहीं बनावटी बनाव-शृङ्गार नहीं था। चेहरेपर वही एक रूखापन मिला। जिसमें कोई रद्दोबद्द कभी दीख नहीं पड़ता था। वह उसकी दिनचर्या ही थी। मेरे घूमने जाते-जाते, सारे वक्त एक जगह वह भी उसी तरह, मेरे दिलमें खड़ी रहती थी। जैसे कि एक 'गूंगी स्टैचू' मैंने पायी हो। उसे कीमती वस्तुकी तरह दिलमें छुपाये, जैसे कि मैं रखना चाहता हूँ। उस मूक खाकेसे मैंने अधिक जानकारी हासिल करनी भी नहीं चाही। मैं उसके लिए एक नयी पीड़ा दिलमें पैदा करना नहीं चाहता था। न उसकी उन फीकी दृष्टियोंके लिए मैंने घूमने जाते अपनी चाल कम की। हां, बार-बार जब तक वह दीख पड़ती थी, मैं पीछे मुड़-मुड़कर असमझसके साथ, उसे बहुत बार देख लिया करता था। वह उसी तरह जाते भी खड़ी मिलती थी। और लौटनेपर मैं उसे बैठी पाता। कुछ भी फर्क नहीं मिला। अब वह खास उत्साह व नयी प्रेरणा पैदा करनेवाली चीज भी नहीं रह गयी थी।

एक दिनकी बात है। देखा मैंने, छत खाली थी। आश्चर्य-में मैं रह गया। तब ही देखा, वह बंगलेके नीचेवाले दरवाजे-से आयी। कुछ देर दरवाजेकी आड़में खड़ी रही। जैसे कि मेरी आंखोंकी पकड़में आनेसे सङ्कोच बरत रही हो। आगे बढ़ अब गायकंका दुहना देखने लगी। बाछीको भी पुचकारा। भरे उत्साहसे फिर मेरी ओर देखा। उन आंखोंके भीतर मैंने पाया कि कोई चीज तैर रही है। मैं उस चीजको भले ही न पहचानूँ, वह लड़की अच्छी तरह जानती है। तब क्या वह उसीको ढूँढ़ रही थी। उसीकी चाहमें, उस तरह छतपर टहलती थी। वह क्या तैर रहा था। यह कैसी विचित्र लड़की है। एक बार भारी अंगड़ाई लेकर, उसने अपने दोनों हाथों-की हथेलियां, उंगलियोंके साथ जोड़, अपने कन्धेपर टिकार्यो।

क्षण-भर उसी अवस्थामें खड़ी रह, फिर उसी तरह टहलने लगी। मैं अवाक रह गया। यह कैसा प्रदर्शन था। वह धीरे-धीरे चरीके खेतके पास तक पहुंची। मैंने मुड़कर देखा, उसकी आंखें पीछा करती लगीं। वह अज्ञात तैरती चीज न जाने क्यों भारी भय पैदा कर देती है। मेरा हृदय बहुत उद्देलित हो उठा। लौटकर मैंने देखा, अधियारेमें वही, जहां मैं खड़ी छोड़ गया था, चरीके खेतों बीच, सड़ककी ओर देख रही थी। इस कर्तव्यपर मैंने बहुत सोचा। कुछ भी निर्धारित न कर सका। आगे और दिनों भी वह, उसी तरह दरवाजेकी आड़में खड़ी रहती थी। वही-वही प्रदर्शन होता। कभी तो मैं भौचक्का रह जाता था। नारी-जीवन समझना दुरूह बात है। वहां पैरना असम्भव लगता है। कोई मेरे भीतर बोलने लगा, यह कुछ नहीं, अतुल्य कामकी वजहसे है। यह निर्लज्जा, वह रूखापन, यह सब उसके अलावा और कुछ नहीं। वही बहम पैदा होता चला गया। वह आंखोंके भीतर तैरती वस्तु फिर भी समझमें नहीं आयी। हर तरह अपनेमें समाधान बातका किया, किसी भी निर्णयपर मैं पहुंच सका नहीं। वह सब जैसे कि असाधारण बात थी। वहां तक हमारी भीतरी बुद्धिकी पहुंच कब है। उस लड़कीके लिए सद्भावनायें भी थीं। उसके लिए दिलमें आदर भी पैदा होता चला गया। उस सबके बाद, बार-बार, उसको समझ लेनेका अपना स्वार्थ भी मैं भुला नहीं सकता था। उसी तरह, मैं घूमने जाता। वह चरीके खेतके बीच, खड़ी हो, मुझे ताका करती थी। कई बार मैंने सोचा, वह कुछ मुझसे कहना चाहती है। तभी अपने मनमें ग्लानि उठती, यह सब मैं बातको गढ़ रहा हूँ। उसका मुझसे क्या मतलब है। एक बार तो वह उस चरीकी खड़ी फसलको चीरकर, जैसे कि अब मुझ तक पहुंचनेवाली थी। फिर न जाने क्या सोच ठिठुरकर खड़ी हो गयी। उसके सारे चेहरेपर खुद ही लज्जा फैल गयी थी। वह नीचे जमीनपर कुछ ढूँढ़ने, आंखें वहीं पसारने लगी। वहां क्या देख पड़ा होगा। घने डण्डल थे। नीचे तक दृष्टि पहुंच जाना, मुमकिन बात नहीं थी। जब मैं लौटकर आया, देखा, वह उसी जगह, वैसी ही खड़ी थी। मुझे देख जरा हिली, और बंगलेकी ओर बढ़ी चली गयी। जल्दी-जल्दी चलनेमें, चरीके डण्डल भी टूट टूट रहे थे। आगे एक दिन वह लोहेके तारोंके पास तक, सड़ककी ओर आयी। घूमनेसे जब मैं लौटा, तब तक वह वैसी ही खड़ी

थी। मुझे देखकर चौंकी और मन्थर गतिसे उन चरीके डण्डलोंको चीरती आगे बढ़ गयी।

तब इस दुनियाके धन्धे क्या हैं। वह लड़की क्या चाहती होगी। इस तरह एक लड़कीके बारेमें क्या सोचा-विचारा जाय। उसको देखकर, क्या अनुमान लगाया जा सकता था। मैं जानता था कि वह मुझपर बहुत प्रभाव डालती जा रही है। कभी-कभी मैं सोचता, अब कल न जाने क्या होगा। आखिर वह चाहती क्या है। उसका पहनावा बहुत साधारण था। कानके बुन्दे और गलेका लाकेट बहुत कीमती लगा। हाथोंपर भी डाइमण्ड-कटकी चूड़ियां थीं। सारा चेहरा गम्भीर—अथाह। उसे देखकर कुछ भी निर्णय देना कठिन था। उसकी इस सारी हरकतमें कहीं अदलीलता नहीं मिली। तो भी, इस तरह पीछा करना। यह सब! उस लड़कीके बारेमें बार-बार जाला बुनता-बुनता, उसीमें फँस जाता था। अपनेमें कहता, मैं हूँ मूर्ख! यह सब धोखा है—धोखा है। इस लड़कीसे मुझे मतलब क्या है? जल्दी ही न जाने कब इस शहरको छोड़कर चला जाऊंगा। यह घटना जीवनमें कभी चमकनेवाली भी नहीं है। तब इधर घूमना ही क्या जरूरी होगा। अब नहीं जाऊंगा, उधर। यही फंसला दे दिया। उधर तब, कुछ दिन नहीं गया। लेकिन दिलको उदासी घेरने लगती थी। मन न जाने क्यों भारी हो जाता। मैं तड़पने लगता था। जैसे कि अपने ऊपर यह बन्धन डालनेका हक मुझे नहीं। मुझे जाना चाहिए। जाना चाहिए। यह मेरे अपने अधिकारोंका प्रश्न नहीं। मेरी इच्छा है। अपने मनको खराब करनेका मुझे कुछ भी अधिकार नहीं। इस तरहके झगड़त आगे भी कितने ही जिन्दगीमें खड़े होंगे। कब तक मैं भागता-भागता रहूंगा। मैं अपनेको लाचार व्यर्थ साबित करनेका आदी हो गया हूँ। तो भी उलझन कब हटती थी।

एक पूरा हफ्ता अपने भीतर, डाँवाडोल हालतमें कट गया। कितनी ही दलील करता था। लाचार फिर बैठ जाता। और सड़कें थीं, वहाँ चारों ओर उदासी फैली मिलती। अधिक मैं अपनेको रोके रखनेमें असमर्थ रहा। और आठवें रोज उधर ही निकल पड़ा। वह लड़की तो नहीं दीख पड़ी। बार-बार उधर देखा। कुछ भी नहीं। वह बंगला, चरीका खेत, सब कुछ उसी तरह था। गाय, ग्वाला, बाछी—वहीं

थे। मैं कुछ भी सोच नहीं सका। बात वह क्या थी। किससे पूछताछ करता। अपने पिछले व्यवहारपर खिन्न हो, चुपचाप लौट आया। अपनी शक्तिका घमण्ड चूर-चूर हो गया। जैसे कि यह मैंने अपने जीवनकी अवहेलना कर डाली थी। और जीवन है ही क्या। रोज फिर भी जाता ही रहा। वह नहीं दीख पड़ती थी। मैं भी धीरे-धीरे, उस सब बातको भूलता चला गया। सच ही यह याद धुंधली पड़ती चली गयी। जिसको कभी उठाकर, मैंने संसार लेनेकी कोशिश नहीं की। कई बार मैंने अपनेको धिक्कारा कि क्यों पहले ढील देकर, अपनेको मैंने इस तरह खींच लिया था। उस लड़कीने न जाने क्या सोचा होगा। भले ही वह मेरा कोई 'रोमान्स' नहीं था। इस तरहकी बातोंको जमा कर-करके, अपने दिलको कमजोर बनानेका आदी भी मैं नहीं हूँ।

पूरा महीना गुजर गया। कुछ और दिन भी। अंधियारी बरसाती रात थी। मैं चुपचाप अपने बंगलेके बरामदेमें सो रहा था। न जाने कितनी रात कट चुकी थी। हठात् लगा कि किसीने मुझे स्पर्श किया है। फिर कोई हिलाने, जगाने लगा। मैं जाग पड़ा। अभी नींद आँखोंमें भरी ही थी। तभी एक खिलखिलाहट सुनी। किसी नारीका स्वर था। अचरजमें मैंने देखा कि वही लड़की मेरे पायताने खड़ी थी। मैं भौचक्का रह गया। आँखें फाड़-फाड़कर उसे देखा। वही थी—वही थी। उसी बुन्देदार सफेद धोतीमें, मैं अच्छी तरह उन बुन्दों और लाकेटको पहचानता था। वह क्या खेल था। मैं क्या अब कहूँ। संभलकर उठ बैठा। चारों ओर अन्धकार—घना अंधियारा। बरसातकी झड़ी लगी थी। कभी-कभी बरसाती हवा भी चलने लगती। वह उसी तरह मूक खड़ी थी। मैं कुछ समझ नहीं सका। उसके कपड़े कहीं भीगे हुए नहीं थे। शायद वह पानी बरसनेसे पहले पहुँच गयी थी, और तबसे वहीं खड़ी है। उसका वह मृदुल स्पर्श एक गुद-गुदी अभी तक दिलमें पैदा कर रहा था। मैं कुछ पूछूँ कि उसने ओठोंपर उंगली रखकर मना किया। एकाएक फिर उसने जम्पर उठाया। नम्र नारीका पेट दीखने लगा। कुछ झिझक भी उठी। समझ गया कि यह पागल है—जरूर पागल है। बेकार मैं मनको दौड़ाया करता था। अन्यथा वह इतनी रातमें क्यों चली आती। दुनिया यदि देख ले, बड़ा अपवाद फैल जायेगा। इस तरह क्या यह

हो रहा है। इसे घर पहुँचाना ही ठीक होगा। बड़े लापरवाह इसके घरवाले हैं। इतनी देख-भाल भी नहीं करते। हिकाजत मरीजकी ठीक-ठीक होनी चाहिए। वह कितनी सुस्त लगती है। कुछ फिर भी मैं नहीं कह सका। मेरी आवाज बन्द-सी हो गयी थी। तभी मैंने देखा, उसने अपना पेट चीर लिया है। आँतें और खून निकलता मैंने देखा। मैं खड़ा हो गया। बुतकी तरह। वह तो बच्चेदानीको हाथोंमें तोल रही थी। मैं सच ही सब कुछ देख रहा था। और बच्चेदानीको चीरकर, उसने एक मुलायम-सा बच्चा निकालकर मेरे हाथोंमें दे दिया। मैं थर-थर भयसे काँपने लगा। बच्चा मेरे हाथोंमें था। मैंने देखा—देखा—वह, वहीं ढेर होकर गिर पड़ी। मैं कुछ भी नहीं सोच सका। आँखें बन्द हो गयी थीं। वह बच्चा अब तक मेरे हाथोंपर था। मेरा गला छुटने लगा। मैं धड़ामते फर्शपर गिर पड़ा।

कुछ देर बाद, कोठीका चक्र लगाते, चौकीदारने मुझे जगाया था। मेरे माथेसे खून बह रहा था। मैंने होशमें आते ही चारों ओर देखा। घरके लोग मुझे आश्चर्यसे घूर रहे थे। मैं उनसे कुछ नहीं कह सका। जो कुछ मैंने देखा,

वह सब अब पहेली लगा। उसका कोई भी निशान वहाँ नहीं था। वह सब बात क्या सच थी! खुद मैं अविश्वास करनेकी कोशिश करता। बड़ी देर तक मुझे नींद नहीं आयी। भारी भय दिलको ढक चुका था। सबह बड़ी देरसे मेरी नींद टूटी। वैसी ही बरसात लगी थी। मैं बहुत अस्वस्थ था।

दिनको बैठा चुपचाप अखबार पढ़ रहा था। बूढ़ा चौकीदार आकर बोला—“बाबूजी, अनर्थ हो गया।”

“क्या रे?”

“.....की लड़की कल रात कुएंमें कूदकर मर गयी।”

“हैं!”

“बड़े घरोंकी बात ठहरी। शादी हुई नहीं थी। जवान लड़की, पेटमें.....”

अधिक मैं वह सब बात नहीं सुन सका। विचार किया कि वह गर्भवती लड़की मर गयी। कारण-शरीर क्या, मोहमें इसी दुनियामें डोलता रहा है। उसकी दिव्य दृष्टि हाती है। वह आत्मा क्यों भटकती रही होगी। इस तरह मेरे आगे बच्चा..... मैं उसको ठीक-ठीक तो पहचान गया था कि वह कौन थी!

गद्य-गीत

अवरुद्ध कण्ठसे मैं तुम्हारा नाम लेना चाहता हूँ, यह मेरा दुस्साहस तो देखो! पर विवशता है, मैं क्या करूँ? पुकार लगानेकी सुध आते ही मेरा गला भर आता है।

मैं तुम्हांगी प्रेम-वीणाका वादन करना चाहता हूँ, पर संसारकी उलझनोंमें उलझकर मेरे हाथ कम्पित हो रहे हैं, जवान लड़खड़ा रही है और वीणा-प्राप्त गर्वीला मानस पर्वताकार ज्ञानसे टकराकर चूर-चूर हो रहा है।

योग और साहसके अभावमें तथा तुम्हारे प्रेमके प्रभावमें मैं पद-चाप सुनते ही बुद्धिहीन और विभोर हो उठता हूँ; मैं तुम्हारा दर्शन पाऊँ तो कैसे, नाम लूँ तो कैसे और तुम्हारी वीणाका वादन करूँ तो कैसे?

जर्मनीका साम्राज्यवाद : कब और कैसे फैला !

श्री भूषणसिंह “आधार”

“साम्राज्यवाद”का अर्थ भिन्न-भिन्न विचारोंके रखने-वाले दार्शनिकों, इतिहास-वेत्ताओं और साम्प्रदायिकोंने भिन्न-भिन्न प्रकारसे किया है। वह आर्थिक पूंजीवादकी चरम उन्नतिका अवश्यम्भावी परिणाम तथा उसका परमावश्यक और अनिवार्य भाग है। उसका उद्देश्य होता है दूसरे देशोंके आर्थिक जीवनपर नियन्त्रण करना। इस प्रकारके आर्थिक जीवनका नियन्त्रण करनेके लिए उसका कार्यक्रम होता है कृषिप्रधान देशोंपर कब्जा जमाकर उनपर गुलामीका जुआ लादना, उनमें उपनिवेश स्थापित करना, और साथ ही निकटवर्ती राज्योंके औद्योगिक भूभागोंपर प्रभुत्व स्थापित करना। इस आर्थिक नियन्त्रणको वह समय-समयपर कई भागोंमें विभक्त करता रहता है। (१) अपने प्रभाव या अधिकारमें आये हुए देशके उत्पन्न कच्चे मालको अपने ही हाथ सस्ते मूल्यमें बिकने देना, (२) उस देशमें अपने ही देशके तैयार मालको बिकने देना (३) उस देशके उद्योग-व्यवसायमें अपनी पूंजी लगाकर व्याजके रूपमें वहांसे मोटी रकम वसूल करना, (४) अपने देशकी बड़ी हुई आबादीको उस देशमें बसा देना और (५) उस देशकी उपजाऊ भूमिको अपने ही देशवासियोंके अधिकारमें देकर मूल निवासियोंको मजदूरोंकी परिस्थितिमें ला देना। यह कार्य वह चार कारणोंके नामपर करता है। (१) आत्मरक्षाके नामपर, (२) राष्ट्रके आर्थिक हित या राष्ट्रीय प्रतिष्ठाके नामपर, (३) जनसंख्याकी वृद्धिके नामपर और (४) परोपकारिताके नामपर। इन्हीं बातोंको ध्यानमें रखते हुए जर्मन साम्राज्यवादके जन्म और प्रचारपर हम एक दृष्टि डालना चाहते हैं।

१८४७ ई० के पूर्व तक जर्मनी कई छोटे-छोटे राज्योंमें विभक्त था। उसमें सङ्गठनका अभाव था और साथ ही अव्यवस्था भी थी। १८७१ ई० में राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे उसका नव सङ्गठन हुआ। इस कार्यमें बिस्मार्कका बहुत बड़ा हाथ था। बिस्मार्क लगभग २९ वर्ष तक प्रधान मन्त्रीकी हैसियतसे जर्मनीका भाग्य-विधाता रहा। इतिहासमें १९ वीं शताब्दीके जर्मनीकी “लुटेरी” नीतिका वह सबसे बड़ा

विचक्षण प्रतिनिधि समझा जाता है। बिस्मार्क “लुहू और लोहे”की नीतिकी वकालत करता था। किन्तु फिर भी उसके उत्तराधिकारियोंकी अपेक्षा उसकी नीति बहुत नरम थी। “समस्त संसारपर आक्रमण करनेकी नीति”के सम्बन्धमें उसके मुंहसे शायद ही कोई शब्द निकले हों। जर्मनीकी औपनिवेशिक नीतिका वह कट्टर विरोधी था। समस्त संसारपर अधिकार करनेका विचार उस समय तक उसके मनमें उठा ही नहीं था। उसका उद्देश्य यह था कि जर्मनीके भिन्न-भिन्न भाग सङ्गठित होकर एक हो जायें। वह यद्यपि एक जबर्दस्त, हठी और राजनीतिक “डाकू” समझा जाता था, तथापि वह केवल इतना ही चाहता था कि जर्मनी यूरोपमें एक सङ्गठित और शक्तिशाली राष्ट्र बन जाय। उस समय जितने युद्ध हुए, वे राष्ट्रीय ही थे, साम्राज्यवादी नहीं। उनके मूलमें हिंसा और भूमि हड़पनेका भाव अधिकसे अधिक था, परन्तु उनमें साम्राज्यवादकी गन्ध नहीं थी। इसका मुख्य कारण यह मालूम होता है कि बिस्मार्कके समय जर्मनीमें पूंजीवादका जन्म ही हुआ था, उसका विकास नहीं। ऊपर कहा गया है कि आर्थिक पूंजीवादके चरम विकासके फलस्वरूप “साम्राज्यवाद”की उत्पत्ति होती है। उस समय जर्मनीमें आर्थिक पूंजीवादकी यह अवस्था थी ही नहीं। औद्योगिक क्षेत्रोंमें तो अभी उसने प्रवेश ही किया था। इसीलिए बिस्मार्क उस समय केवल इतना चाहता था कि यूरोपमें जर्मनी एक प्रबल राष्ट्र बन जाय, वह वहां एक प्रमुख और महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर ले और किसी शत्रुका आक्रमण होनेपर अपनी राष्ट्रीय सीमाकी रक्षा कर सके। १८७१ ई० में निर्धारित जर्मन-सीमासे वह एक इञ्च भी आगे नहीं बढ़ना चाहता था। यद्यपि बिस्मार्ककी सहायतासे उपनिवेश-स्थापनका काम जर्मनीमें आरम्भ हुआ, तथापि उसकी कई बातोंसे मालूम होता है कि उसके मनमें स्वतः इस कार्यमें अधिक श्रद्धा न थी। उपनिवेश-स्थापनके कार्यारम्भ होनेके १७ वर्ष बाद १८९९ ई० में उसने कहा था—“उपनिवेश हमें नहीं चाहिए।

अब तक हमारा कहना यही है।" वह इस कार्यको सदा ही अविश्वासकी दृष्टिसे देखता था। जब उसने इस कार्यमें सहायता देना आरम्भ भी किया, तब भी वह वहां सत्ता कायम नहीं करना चाहता था। १८८५ ई० में उसने एक अवसरपर कहा था—“उपनिवेशोंकी सत्ता व्यापारियोंके हाथमें रहनी चाहिए। सरकारको वहांपर अपना अधिकारी नियत करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। प्रिवी-कौन्सिलर और छोटे-छोटे सैनिक अधिकारी देशमें बहुत ही मजेमें हैं। मेरा ऐसा अनुमान है कि उपनिवेशोंका कार्य व्यापारी-मण्डल द्वारा ही भली भांति हो सकेगा।” चाहे जिस भी कारणसे हो, बिस्मार्कके उक्त वाक्योंसे यही पता चलता है कि उपनिवेश-स्थापनमें वह स्वयं कोई दिलचस्पी नहीं लेता था।

किन्तु १८७१ ई० के कुछ ही वर्षोंके पश्चात् जर्मनीके उद्योग-व्यवसाय उन्नत होने लगे। कोयले और लोहेके उत्पादनमें अधिकाधिक वृद्धि होने लगी। वह शीघ्र ही प्रथम श्रेणीके औद्योगिक राष्ट्रके रूपमें परिणत हो गया। इस दिशामें वह यहां तक बढ़ गया कि उसकी टकर अमेरिका और ब्रिटेनसे होने लगी। जर्मन कारखानोंमें तैयार होनेवाले मालकी मात्रा इतनी बढ़ गयी कि अब जर्मन माल जर्मनीके बाहर रूस, आस्ट्रिया, बालकन राज्य, फ्रान्स, बेलजियम इटली आदिमें अधिकतासे खपने लगा। इतनेपर भी जर्मनीको अपना माल खपानेके लिए यूरोपीय देश बहुत संकुचित प्रतीत होने लगे। अब उसका प्रलोभन लघु एशिया, मध्य अफ्रीका और पूर्वी अफ्रीकाकी ओर हाथ बढ़ानेकी चेष्टामें बढ़ने लगा। अब जर्मनीमें पहले-जैसी बात नहीं रही। उसके राजनीतिक मञ्चपर साम्राज्यवादी रङ्गमें रंगे हुए नये-नये राजनीतिज्ञ आने लगे। जर्मन कारखानोंमें तैयार मालकी खपतके लिए वे समस्त संसारपर जर्मन आधिपत्य स्थापित करनेकी आवश्यकतापर जोर देने लगे। उन्होंने यह वकालत करनी शुरू की कि यदि जर्मनी अपने उद्योग-व्यवसायोंकी उन्नति करना चाहता हो, तो उसे न केवल यूरोपपर, वरन् एशिया और अफ्रीकाके भी अनेक स्थानोंपर अपना प्रभुत्व स्थापित करना पड़ेगा।

जैसा ऊपर कहा गया है, १८७६ ई० तक बिस्मार्क उपनिवेश-स्थापनाकी नीतिका विरोध करता रहा। प्रशान्त सागरके “सुलू” द्वीपपर जर्मनीका संरक्षण स्थापित करनेके

लिए उससे प्रार्थना की गयी; परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। पुर्तगालने जर्मनीके हाथ “मोजाम्बिक” बेचनेकी इच्छा की। परन्तु बिस्मार्कने उसको खरीदनेसे भी इनकार कर दिया। विभिन्न भूखण्डोंपर जर्मन आधिपत्य स्थापित करनेके लिए कई बड़े-बड़े व्यापारी तथा पर्यटक बिस्मार्कसे बार-बार प्रार्थना करते रहे। परन्तु वह इस प्रार्थनाको इनकार ही करता जाता था। जर्मन राईखस्टागके अधिकांश सदस्य भी उस समय बिस्मार्कके ख्यालका समर्थन कर रहे थे।

परन्तु तीन बातें ऐसी थीं, जिनसे बिस्मार्क और राईख-स्टागके सदस्य उपनिवेश-स्थापनकी ओर झुकनेके लिए प्रभावित होते जाते थे। पहली बात तो यह थी कि १८७० ई० में नेपोलियन और जर्मनीमें जो युद्ध हुआ, उसमें विजय जर्मनीके साथ रही। इससे विश्व-साम्राज्य-स्थापनकी ओर उसका मन बहुत बढ़ गया था। दूसरी बात यह थी कि जर्मन जनसंख्याकी वृद्धि तीव्रगतिसे हो रही थी। अपना कोई उपनिवेश जर्मनीके पास नहीं था। अतएव उसके प्रवासी अमेरिका, स्पेन तथा इंग्लैण्ड आदिके उपनिवेशोंमें जा-जाकर बसते थे। फिर भी ये दोनों बातें गौण ही थीं। ध्यान रखना चाहिए कि उपनिवेश-स्थापनके कार्यमें जनसंख्याकी वृद्धि और अन्नकी कमीके कारण पैदा करना “साम्राज्यवाद”की आजमायी हुई बहानेबाजी है। खैर, तीसरी बात, जो मुख्य थी, यह थी कि अब जर्मनीने उद्योग-व्यवसायके क्षेत्रमें अपने-को प्रथम श्रेणीमें लाकर खड़ा कर दिया था। इसी बीचमें साम्राज्यवादकी ओर जर्मन जनताका ध्यान आकर्षित करनेके लिए जर्मनीके समाचार-पत्रोंमें बहुत-से लेख लिखे जाने लगे। इस विषयपर बहुत-सी पुस्तकें भी प्रकाशित होने लगीं। इसी समय फ्रेडरिक फेब्राईकी “क्या जर्मनीको उपनिवेशोंकी आवश्यकता है?” नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तकमें बलके साथ कहा गया था कि जर्मनीको औपनिवेशिक बाजार हस्तगत करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए; यदि वह जीवित रहना चाहता है, तो उसे अपनी बढ़ती हुई जनसंख्याके लिए अन्यान्य स्थान प्राप्त करने और अपनी फाजिल पूंजीके लिए अन्य क्षेत्र खोजनेकी चेष्टा भी करनी चाहिए। इतना ही नहीं, इसमें इस बातपर भी जोर दिया गया था कि पिछड़ी हुई जातियोंमें जर्मन सभ्यताका प्रचार करना जर्मन निवासियोंका परम कर्तव्य है।

अब बिस्मार्कके विचारोंमें काफी परिवर्तन आने लगा था। जर्मन जनता उक्त प्रचारोंसे प्रभावित होकर साम्राज्यवादी रङ्गमें रंग गयी। प्रशान्त-सागरस्थ समोआ द्वीपमें एक बड़ा जर्मन व्यापारी व्यापार कर रहा था। १८७८ ई० में समोआके देशी राजाके साथ एक अमेरिकन अफसरने सन्धि की। इस सन्धिके अनुसार यह तय हुआ कि समोआमें आनेवाले अमेरिकन मालपर कोई कर नहीं लगाया जायगा। साथ ही यह भी तय हुआ कि पैंगोपैंगो नामी बन्दरगाहमें अमेरिकन जहाजोंको ठहरनेकी स्वतन्त्रता रहेगी। जब जर्मनीको इस सन्धिकी खबर लगी, तब उसने इसका विरोध किया और कहा कि इस द्वीपमें जर्मनीका भी स्वार्थ है। उसने वहाँके दो बन्दरगाहोंपर अधिकार कर लिया। उसने वहाँके राजापर इस प्रकार दबाव डाला कि राजाने वाध्य होकर उसे भी वे ही सुविधायें दे दीं, जो उसने अमेरिकाको दी थी। १८७९ ई० में समोआ द्वीपके उक्त जर्मन व्यापारीका जब दिवाला निकलने लगा, तब उसकी कम्पनीकी सहायता करनेके लिए बिस्मार्कने राईखस्टागमें एक बिल पेश किया। यद्यपि बिल पास नहीं हो सका, तथापि इससे स्पष्ट हो गया कि अब बिस्मार्कके विचार काफी बदल चुके थे। कमसे कम उस समय इतना तो उसने किया ही कि १८७९ ई० में समोआमें उसे विशेष सुविधायें प्राप्त हो गयीं।

१८८२ ई० में “कोलोलियन बैरीन” नामी एक संस्था फ्रैङ्कफर्टमें स्थापित की गयी। इस संस्थामें बड़े-बड़े जर्मन व्यापारी, जहाजी कम्पनियोंके मालिक, पत्रकार, देश-पर्यटक आदि सभी तरहके लोग सम्मिलित थे। यह संस्था जर्मनीमें साम्राज्यवादका प्रचार करने लगी। १८८४ ई० में दक्षिण-पश्चिम अफ्रीकामें ब्रीमेनके एक व्यापारीने कोठी खोली। उसी वर्ष वह जर्मन सरकारके संरक्षणमें ले ली गयी। साथ ही टोगो और कैमरून नामी भू-खण्ड भी जर्मन साम्राज्यमें मिला लिये गये। इस प्रकार और यहाँसे जर्मन साम्राज्यवादका आरम्भ हुआ।

ब्रीमेनका लूडरिज नामी एक व्यापारी बहुत दिनोंसे बिस्मार्कसे यह प्रार्थना कर रहा था कि जर्मन सरकार किसी अन्य देशीय बन्दरगाह और भू-भागपर अपना प्रभुत्व स्थापित करे। पहले तो बिस्मार्क उसकी प्रार्थनापर उससे मस नहीं हुआ; परन्तु बादमें साम्राज्यवादी रङ्गमें आकर उक्त व्यापारी-

को उसने आश्वासन दे दिया कि यदि कोई ऐसा बन्दरगाह मिल सके, जिसपर किसी अन्य राष्ट्रने अधिकार न किया हो, तो उसे हस्तगत करनेमें जर्मन सरकार उसका समर्थन करेगी। अब क्या था, इस व्यापारीने उपयुक्त स्थानकी खोजमें अपना एक प्रतिनिधि भेजा। इस प्रतिनिधिने “एंघ्रा येक्केना” नामी स्थान पसन्द किया। अप्रैल, १८८३ ई० में वह वहाँ जा पहुँचा और वहाँकी सरकारसे २ हजार मार्क और २ सौ बन्दूकें देकर ९ मील लम्बी-चौड़ी भूमि खरीद ली। इसके बाद वहाँ थोड़ी-सी जमीन और भी खरीदी गयी। बिस्मार्कने ऐसी चालाकी की कि ब्रिटेनको इस बातका पता पहले नहीं लग सका। उधर ये बातें हुई, इधर बिस्मार्कने गस्टव नकिटगल नामी एक देशान्वेषकको पश्चिमी अफ्रीकाके किनारे भेजा। २ जुलाई, १८८४ ई० को वह गिनीकी खाड़ीमें पहुँचा। ९ जुलाईको उसने “लिटिल पोपो” नामक स्थानमें जर्मनीका झण्डा गाड़ दिया। और समीपवर्ती स्थानोंपर जब जर्मनीका अधिकार हो गया, तब इस उपनिवेशका नाम पड़ा टोगोलैण्ड। इसके बाद शीघ्र ही ११ जुलाईको नकिटगल कैमरून नदीके मुहानेपर जा पहुँचा। वहाँ जर्मन व्यापारियोंने पहले ही से निग्रो सरदारोंके साथ सन्धिकी बातचीत आरम्भ कर दी थी। नकिटगलने जो सन्धि-पत्र तैयार किया था, उसपर वहाँके राजा वेल और अन्य सरदारोंने १९ जुलाई, १८८४ ई० की मध्य-रात्रिमें हस्ताक्षर कर दिये। वहाँकी कुछ जातियोंने जर्मन आधिपत्यका विरोध किया। इसपर जर्मनीने उनपर गोलाबारी की और शीघ्र ही उनका दमन कर दिया।

१८८४ ई० में डाक्टर कार्ल पीटर्सने जर्मन उपनिवेश-स्थापनका उद्देश्य लेकर एक कम्पनी बनायी। उसने गुप्त रूपसे अफ्रीकाकी यात्राका प्रबन्ध किया। नवम्बरमें वह जङ्गीबारके समीपवर्ती तटपर जा पहुँचा। उसके दो साथी थे। उनको साथ लेकर उसने आस-पासके कई देशी सरदारोंसे भेंट की। उसने उन सरदारोंको भांति-भांतिकी वस्तुयें भेंटमें दीं और उनसे मीठी-मीठी बातें कीं। इस प्रकार उसने सन्धि-पत्रपर स्वीकृति-सूचक चिह्न बना देनेके लिए उन्हें फुसला लिया। दस दिनोंके बाद वह लौटकर जङ्गीबार आ गया। वहाँ उसने देखा कि उसके पास यूसेगुहा, यूसागारा, यूकामी तथा अन्य देशी राज्योंसे किये गये एक दर्जन सन्धि-पत्र आये हुए थे। उनके अनुसार लगभग ६० हजार वर्गमील जमीनपर उसकी कम्पनी-

को संरक्षणधिकार प्राप्त हो गया। अब वह शीघ्र ही बर्लिन गया। उसने बिस्मार्कसे जर्मन सरकारके संरक्षण स्थापित करनेकी प्रार्थना की। बिस्मार्क पहले तो कुछ इधर-उधर करता रहा। परन्तु बादमें कुछ सोचकर संरक्षण स्वीकार करनेकी घोषणा कर दी। १८९० ई० में ब्रिटेन और जर्मनीमें जो सन्धि हुई, उससे कार्ल पीटर्सका सारा परिश्रम बेकार तो हो गया; परन्तु अफ्रीकाकी कुछ भूमिके बदले जर्मनीको हेलीगोलैंड मिल गया। साथ ही जर्मन ईस्ट अफ्रीकाकी सीमा टंगानिका और न्याजा झील तक बढ़ा दी गयी और पश्चिम अफ्रीकामें जर्मन कैमरूनकी सीमा चैड झील तक मान ली गयी। इस प्रकार १८८४ ई० में उसने आरेञ्ज नदीके दक्षिण-पश्चिमी किनारेके मैदानपर अपना अधिकार घोषित कर दिया और भूमध्यके समीपवर्ती और देशोंको दबा लिया। पूर्वी किनारेके भू-भागपर उसने कब्जा कर लिया। यह भू-भाग क्षेत्रफलमें जर्मनीसे दुगुना था। यहां बड़ी-बड़ी झीलें हैं। १८८४ से १८९० ई० के बीच जर्मनोंने चार विस्तृत भू-भागों-पर अधिकार कर लिया, जो टोगोलैंड, कैमरून, जर्मन दक्षिण-पश्चिमी तथा जर्मन पूर्वी अफ्रीकाके नामसे प्रसिद्ध हुए। इस समय जर्मन साम्राज्यवाद अपनी करामात दिखाने लगा था।

१८८९ ई० का समय आया। जर्मन दूतने समोआ जाकर वहां जर्मन झण्डा गाड़ दिया। अमेरिका और ब्रिटेनको बहुत बुरा मालूम हुआ। आगे चलकर अमेरिका और जर्मनोंने समोआको आपसमें बांट लिया। पश्चिमके दोनों द्वीप जर्मनीको मिले। समोआ द्वीपपर जर्मन प्रभुत्व स्थापित कर लेनेके बाद वह और आगे बढ़नेकी तैयारी करने लगा। कैरोलाइन, मार्शल द्वीप-पुञ्ज, न्यू ब्रिटेन तथा न्यू आयर्लैंड आदिमें जर्मन व्यापारी अपनी कोठियां स्थापित कर रहे थे। व्यापारी लोग बिस्मार्कपर यह दबाव डाल रहे थे कि जर्मन सरकार वहां अधिकार करे। उस समय जर्मनीकी आबादी बड़े जोरोंसे बढ़ रही थी। औद्योगिक विकास भी तीव्रगतिसे हो रहा था। अतएव १८८६ ई० में उसने उस भूभागको अपने संरक्षणमें ले लेनेकी घोषणा कर दी, जिसको जर्मन न्यूगिनी कम्पनीने अधिकृत किया था। न्यूगिनी द्वीपके दक्षिण भूभागपर ब्रिटेनका पहलेसे ही दखल-कब्जा था। अतः उसने जर्मनीका विरोध किया। अन्तमें

दोनोंमें समझौता हो गया। इस समझौतेके अनुसार जर्मनीको न्यूगिनीका उत्तर-पूर्ववाला भाग मिला। साथ ही सोलोमन द्वीपपुञ्ज, न्यू आयर्लैंड, न्यू ब्रिटेन तथा न्यूगिनीके उत्तरमें स्थित छोटे-छोटे द्वीपोंपर जर्मन अधिकार मान लिया गया। जर्मनीने इन द्वीपोंका नाम रखा “बिस्मार्क द्वीपपुञ्ज।” इस प्रकार लगभग ७० हजार वर्गमील भूमि जर्मनीके हाथ लग गयी। इसके अतिरिक्त जर्मनीकी इच्छा फिलिपाइन द्वीपोंपर अधिकार कर लेनेकी थी। परन्तु वहां अमेरिकाका दखल हो जानेसे १८९९ ई० में उसे पूर्वके बहुत-से छोटे-छोटे द्वीपोंको खरीदकर ही सन्तोष कर लेना पड़ा। इनमें पैल्यू द्वीप, कैरोलाइन द्वीप और मार्शल द्वीपपुञ्ज सम्मिलित थे।

अब जर्मनीके राज्यासिंहासनपर द्वितीय विलियम (कैसर) का आरोहण हुआ। कैसरके राज्यारोहणके कुछ ही दिनोंके पश्चात् मन्त्री-पदसे बिस्मार्ककी पदच्युत हुई। अब वहां साम्राज्यवाद खुलकर खेलने लगा। अब जर्मनी चीनपर भी दांत गड़ानेका अवसर ढूँढ़ने लगा। जर्मनीका एशियाई बेड़ा इस खोजमें निकला कि चीनके समुद्र-तटपर कौन-सा ऐसा अच्छा बन्दर है, जहां जहाजी बेड़ा भली भांति रह सके। इस कार्यके लिए जर्मन सरकारकी ओरसे एक कमीशन नियुक्त हुआ था। उसने जांच-पड़ताल कर यह सिफारिश की थी कि शान्तुंग प्रायद्वीपकी किआओचाऊवाली खाड़ी इस कार्यके लिए बहुत ही उपयुक्त है। दैवयोगसे इसी बीचमें एक ऐसी दुर्घटना हो गयी, जिससे जर्मनीको अपना काम निकालनेका बहुत जोरदार बहाना मिल गया। नवम्बर, १८९७ ई० में शान्तुंग प्रान्तमें दो जर्मन पादरियोंकी हत्या हो गयी। बस फिर क्या था, जर्मनीने अब अपने राष्ट्रीय सम्मानकी रक्षा करने और चीनको उसके औद्योगिक दण्ड देनेकी बहानेबाजी करके झट चार जर्मन जङ्गी जहाज किआओ-चाऊकी खाड़ीमें भेज दिये। उन जहाजोंने पहुंचते ही किआओचाऊपर कब्जा जमाकर वहां जर्मन झण्डा गाड़ दिया। कई महीने तक दोनों देशोंमें बातचीत होती रही। परन्तु जर्मनीने चीनको दबाकर ९९ वर्षोंके लिए एक पट्टा लिखा लिया। इस पट्टेके अनुसार किआओचाऊ खाड़ीके आसपासका भूभाग जर्मनीको ठेकेपर मिल गया। इस पट्टेसे जर्मनीको तीन चीजें मिलीं। (१) वहां किलेबन्दी करने तथा युद्धपोत रखनेका अधिकार, (२) शान्तुंग प्रान्तमें दो रेलवे सड़कें

बनाने तथा कुछ खानोंसे लाभ उठानेका अधिकार और (३) शान्तुंग प्रान्तमें विदेशी पूंजीकी आवश्यकता होनेपर सर्वप्रथम जर्मन व्यापारियोंसे ही उसे लेनेके लिए अनुरोध करनेका अधिकार। इस प्रकार जर्मन साम्राज्यवादने आर्थिक दृष्टिसे महत्वपूर्ण स्थान रखनेवाले चीनके शान्तुंग प्रान्तपर कब्जा कर लिया।

अब जर्मनी साम्राज्यवादके गहरे रङ्गमें रंगकर समुद्रपर आधिपत्य स्थापित करनेकी प्राणपणसे चेष्टा करने लगा। इसके दो उद्देश्य थे। (१) व्यापारिक और (२) राजनीतिक। पहलेके सम्बन्धमें डाक्टर पालसनने लिखा था—“यूरोपके बाहर यूरोपीय राष्ट्रोंका विस्तार करनेके कार्यमें जर्मनी बहुत प्रयत्नशील हो रहा है। वहाँके कारखानोंमें देहिसाब माल तैयार होने लगा है और विदेशोंमें उसका व्यापार बढ़ रहा है। समुद्रपर प्रभुत्व स्थापित करने और उस प्रभुत्वको अन्य राष्ट्रों द्वारा नष्ट होनेसे बचानेका प्रयत्न करनेकी ओर जर्मनीका चित्त आकर्षित हुआ है। व्यापार और व्यवसायमें जर्मनीने अपनेको दूसरे नम्बरपर लाकर खड़ा कर दिया है। इंग्लैण्डका नम्बर ही उसके ऊपर है। परन्तु पहले और दूसरे नम्बरमें बहुत अन्तर नहीं है और जो कुछ थोड़ा-बहुत अन्तर रह गया है, वह भी धीरे-धीरे कम हो रहा है। अपनी इस स्थितिको बनाये रखनेके लिए सामुद्रिक सैनिक शक्तिको बढ़ानेके उद्योगमें ही समस्त राष्ट्रोंका ध्यान आजकल आकर्षित रहता है।” राजनीतिक उद्देश्यके सम्बन्धमें एक ग्रन्थकारने कहा था—“जो राष्ट्र हमसे आगे हैं, उनके मुकाबिलेमें पहुंचना अथवा जो स्थान हमने खो दिया है, उसे प्राप्त करनेका कार्य सब राष्ट्रोंको मिलकर करना चाहिए या नहीं? इसी प्रकार जो राष्ट्र बीसवीं शताब्दी और उसके बादका इतिहास संसारके सामने उपस्थित करेंगे, उसमें योग्य स्थान प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिए अथवा दूसरे नम्बरपर ही चुपचाप बैठे रहना चाहिए? यह प्रश्न वर्तमान समयमें हमारे सामने है।” समुद्र तथा संसारपर जर्मन आधिपत्य स्थापित करनेकी साम्राज्यवादी मनोवृत्तिका पता स्पष्ट रूपसे कैसरके भाषणोंमें मिलता है। जर्मन साम्राज्यकी स्थापनाके २९ वर्ष पूरे होनेपर १८९७ ई० में जो आनन्दोत्सव जर्मनीमें मनाया गया था, उसमें कैसरने कहा था—“जर्मन साम्राज्यकी व्यापकता संसार-भरमें हो रही है।

भूमण्डलके प्रत्येक भागमें हमारे हजारों देश-बान्धव जाकर निवास कर रहे हैं। जर्मनीका माल, जर्मनीका ज्ञान, जर्मनीका साहस समुद्रको पार करके बहुत दूर तक पहुंच गया है। लाखों-करोड़ों रुपयोंका माल जर्मनी समुद्रसे बाहर ले जाता है। इस बड़े जर्मनीको मूलके छोटे जर्मनीसे मिलाकर एक कर देना लोगोंका पवित्र कर्तव्य है।” १८९७ ई० में ही फिर कैसरने कहा—“सार्वभौम अधिकार और समुद्रपर अधिकार—ये दोनों परस्परालम्बी हैं। एकके आश्रय बिना दूसरा ठहर नहीं सकता।” जुलाई, १९०० ई० में कैसरने इस प्रकार कहा था—“अपने राष्ट्रके द्वारपर समुद्रकी लहरें जोरसे आकर टकरा रही हैं। संसारके अन्य राष्ट्रोंमें अपनेको जो उच्च स्थान प्राप्त हुआ है, उसे त्याग करनेकी आवश्यकता नहीं है और इस बातको और भी सरल भाषामें यों कह सकते हैं कि समस्त संसारपर आक्रमण करनेकी नीतिको स्वीकार करना चाहिए। समुद्रकी ये लहरें मानो हमें इस बातकी सूचना दे रही हैं।.....”

१९०४ ई० में जर्मन पश्चिम अफ्रीकाके मूल निवासियोंने अपनी जातीय भूमिसे वञ्चित होकर और तरह-तरहसे सताये जानेपर कई बार विद्रोह किया। उसी वर्ष वहाँकी हेटेरो जातिका जर्मनी द्वारा इतनी क्रूरतासे दमन किया गया कि उसके आधेसे अधिक आदमी या तो मर गये या देश छोड़कर किसी दूसरे स्थानमें चले जानेके लिए बाध्य हो गये। अब कैसरको वहाँका भय नहीं रहा। फिर उसी वर्ष, अर्थात् १९०४ ई० में रूस-जापान युद्ध हुआ। इस युद्धमें एक छोटे-से एशियाई राष्ट्रको दबानेमें रूस असमर्थ रहा, यह देखकर कैसरका भय रूससे भी जाता रहा। अब उसने “विश्व-साम्राज्य-स्थापन” की नीतिका अवलम्बन किया। अब तक जर्मनीके पास दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका, टोगोलैण्ड, न्यूगिनी आदि थे। परन्तु औद्योगिक तथा आर्थिक वृद्धिके कारण बढ़ी हुई जन-संख्याके लिए उतने ही स्थान उसको पर्याप्त नहीं प्रतीत होते थे। १८७१ ई० से १८८० ई० तक जर्मनीसे लगभग सवा छः लाख आदमी बाहर भेजे गये थे। इसी समयके भीतर वहाँकी आबादी ४ करोड़ ४१ लाखसे बढ़कर ४ करोड़ ७० लाख हो गयी थी। इसके बाद केवल चार वर्षोंमें बाहर जानेवालोंकी संख्या साढ़े सात लाख तक जा पहुंची। १९०४ ई० के आस-पास जर्मन संख्या बढ़कर साढ़े छः करोड़

हो गयी थी। उसके व्यापार और उद्योग पहलेसे तिगुने बढ़ गये थे। अतः अब कैसरने पश्चिमी एशियामें पाँव पसारनेकी चेष्टा आरम्भ की। अब उसके लिए “निकट पूर्व” अर्थात् तुर्की आदिका प्रश्न विशेष महत्त्वपूर्ण हो गया। अफ्रीकाके बंटवारेमें जर्मनीको पर्याप्त भाग नहीं मिल सका। अतः इसके बदले उसने पूर्वमें अपना प्रभाव जमानेका निश्चय किया। तुर्कीपर ज्यों-ज्यों इंग्लैण्डका प्रभाव घटता गया, त्यों-त्यों जर्मनी अपना प्रभाव बढ़ाता गया। इस कार्यमें कैसरने पहले इस्लामी शक्तिसे सहायता लेनेके लिए अपनेको इस्लामी मजहबका संरक्षक बताया। कैसरने तुर्कीके सुलतानसे दो बार भेंट की। अब जर्मनीने धीरे-धीरे डान्यूब, एशिया माइनर तथा मेसोपोटामियामें अपना व्यापार बढ़ाना आरम्भ किया। कैसर और तुर्की सुलतानकी भेंटके फलस्वरूप तुर्कीमें जर्मन पूंजीसे रेलोंकी सड़क बनानेका भी निश्चय हुआ। इस रेल-योजनाके अनुसार संक्षेपमें यह तय था कि बर्लिनसे फारस तक अर्थात् जर्मनीके प्रसिद्ध नगर हेम्बर्गसे लेकर फारसकी खाड़ी तक २४०० मील लम्बी रेलकी सड़क तैयार की जाय। विस्तारके साथ इस प्रकार इसका विवरण होगा :—लघु एशियाके भीतरसे, कोनिया, अदाना, नेसीबीन और मोसल होते हुए बगदाद तक और उसके बाद ईरानकी खाड़ीपर स्थित बसरा तक रेलकी सड़क ले जाना। “निकट पूर्व” में जर्मनीकी साम्राज्यवादी मनोवृत्तिका उद्देश्य यह था कि वहाँ जर्मनीकी अतिरिक्त जन-संख्या खूबपूर्वक रह सकती थी तथा वहाँ रेल, नहर, कृषि आदिमें पूंजी लगानेसे उसे बहुत लाभ होता, तो वहाँसे जर्मनीको कच्चा माल भी बहुत मिलता। जर्मनीके साम्राज्यवादी इस प्रकार भूमध्य सागर और फारसकी खाड़ीपर अधिकार करके कास्पियनके पूर्वी भाग तथा भारतपर भी जर्मन प्रभुत्व जमाना सम्भव समझते थे। उक्त रेलवेके पीछे जर्मन साम्राज्यवादका कौन-सा उद्देश्य छिपा हुआ था, यह भी स्पष्ट ही है। एक जर्मन लेखकने इस उद्देश्यको व्यापारिक बतलाते हुए लिखा था—“तुर्की एशियामें जर्मनीको भविष्यमें कुछ लाभ प्राप्त होना सम्भव है।... हम तो केवल यही चाहते हैं कि एशिया माइनरमें हमारे

लिए व्यापारका बाजार खुला रहे, हम अपने उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिके लिए वहाँसे कच्चा माल ला सकें और हमारे देशका बना हुआ माल वहाँके बाजारोंमें बराबर बिकता रहे।” २४ मार्च, १९०८ ई० को जर्मनीके स्टेट सेक्रेटरी वान झूनने राईखस्टागमें कहा था—“जर्मन लोगोंने बगदाद रेलवे बनानेका जो कार्य हाथमें लिया, उसमें बहुत-सा धन खर्च हो गया। अतएव जिस-जिस प्रान्तसे होकर वह रेलवे जायगी, उस-उस प्रान्तका व्यापार जर्मन लोगोंके हाथोंमें रहेगा, इस बातकी मुझे पूर्ण आशा है।” परन्तु इनके अतिरिक्त स्प्रेञ्जरके शब्दोंमें जर्मन साम्राज्यवादी मनोवृत्तिके सम्बन्धमें और भी स्पष्टता है। उसने इस सम्बन्धमें कहा था—“यहाँ ऐसे जङ्गल नहीं हैं, जहाँ अन्य लोगोंने अभी तक प्रवेश न किया हो और जिन्हें काटना आवश्यक हो ; और न यहाँ आपको प्राकृतिक कठिनाइयोंका ही सामना करना है। आपको तो सिर्फ जमीन जोतकर बीज बोना और फसल काटना है। संसारमें “निकट पूर्व” ही एक ऐसा भूभाग है, जिसपर अभी तक किसी बड़े राष्ट्रने कब्जा नहीं किया है। फिर भी उपनिवेश बसानेके लिए वह सबसे उपयुक्त भूमि है। यदि जर्मनी इस अवसरको हाथसे न जाने दे और रूसके उस ओर अग्रसर होनेके पहले ही इससे लाभ उठानेका प्रयत्न करे, तो संसारके बंटवारेमें उसे सर्वोत्तम स्थान प्राप्त हो सकता है।”

अब जर्मन साम्राज्यवादियोंका ध्यान जर्मन साउथ-वेस्ट अफ्रीकाके उत्तरमें स्थित पुर्तगालके उपनिवेश अङ्गोलाकी ओर विशेष रूपसे लगा। पर गत यूरोपीय महायुद्धके कारण उनकी इस महत्त्वाकांक्षापर पानी पड़ गया। जब गत महायुद्ध छिड़ा, तब जर्मनी चाहता था कि रूस, वेलजियम तथा फ्रान्सके औद्योगिक भागोंपर उसका प्रभुत्व स्थापित हो जाय। परन्तु युद्धमें वह पराजित हुआ और उसकी यह महत्त्वाकांक्षा भी बुरी तरहसे नष्ट गयी हुई। सन्धिकी शर्तोंके अनुसार उसके उपनिवेश उसके हाथसे निकल गये ; बगदाद रेल-लाइनपरसे उसका अधिकार छीन लिया गया ; फिआओ-चारुपर जापानने कब्जा कर लिया।



दुर्घटनायें रोकनेवाले कुछ नये आविष्कार

श्री आत्मानन्द मिश्र, एम. ए., बी. एस-सी. एल-एल. बी.

यूरोपके प्रमुख नगर लन्दन, बर्लिन और पेरिस आदिमें, जहां प्रतिक्षण सैकड़ों मोटरों और गाड़ियोंका तांता बंधा रहता है, एक मनुष्यके लिए ट्राफिक नियन्त्रण करना असम्भव-सा हो जाता है। टेलीफोन, रेडियो आदि सुविधाओंके निर्माणकर्ता वैज्ञानिकोंने इस ओर भी ध्यान दिया है और एक ऐसे यन्त्रका आविष्कार किया है, जो बिना किसी मनुष्यकी सहायताके विद्युत्-शक्ति द्वारा स्वसञ्चालित होकर पथ-निर्देश किया करता है। इस यन्त्रका प्रयोग लन्दनमें सबसे पहले सन् १९२८ ई० में हुआ था; किन्तु आज यह इतने अधिक स्थानोंमें प्रयुक्त होता है कि कोई भी इसे देखकर यह नहीं कह सकता कि यह इतना नया आविष्कार होगा।

यह यन्त्र जो चौराहोंपर एक खम्भे-सा खड़ा रहता है, बाहर केवल तीन प्रकारके—लाल, पीले और हरे—प्रकाश दिखाया करता है। इन प्रकाशोंका नियन्त्रण करनेके लिए खम्भेके निकट एक सञ्चालक सन्दूक (Control Box) होता है, जिसे इस यन्त्रका मस्तिष्क कह सकते हैं। इस यन्त्रमें दिन-प्रतिदिन उन्नति होती जा रही है; यद्यपि उसके बाह्य स्वरूपमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है।

पहलेके यन्त्र निश्चित समयमें कार्य-सम्पादन करते थे। यद्यपि वे स्वसञ्चालित होते थे; किन्तु निकलनेवाली गाड़ियोंसे उनका कोई सम्बन्ध न होता था। ये यन्त्र कुछ निर्धारित समयके लिए (२ मिनट) पूरब-पश्चिमका मार्ग चालू रखते थे, तत्पश्चात् वे उतने ही समयके लिए उस दिशामें 'सावधान' (Caution) का सङ्केत देकर उत्तर-दक्षिणका मार्ग उतने ही समयके लिए खोल देते थे। यह सिगनल ऐसी सड़कोंके लिए ही उपयुक्त था, जिनपर दोनों दिशाओंसे बराबर रास्ता चलता हो। इसमें एक ओर सवारियां होनेपर व्यर्थमें कुछ देरके लिए दूसरी ओरका मार्ग बन्द रहता था। अतः इस बातकी आवश्यकता हुई कि सड़ककी ट्रैफिकके बड़लते ही सिगनलमें भी उसके अनुकूल परिवर्तन हो जाया करे।

सन् १९३२ ई० में प्रथम बार लन्दनकी दो प्रमुख सड़कोंके चौराहोंपर सवारियोंके सङ्केतपर चलनेवाले विद्युत्-शक्तिसञ्चालित सिगनल स्थापित किये गये। वे इतने उत्तम और

उपयोगी सिद्ध हुए कि शीघ्र ही लन्दनके सभी चौराहोंपर वही लगवा दिये गये। इस यन्त्रमें एक विशेषता यह है कि प्रत्येक सवारीके आगे-पीछे चौराहेपर पहुंचनेके क्रमसे ही उसे निकलनेका अवसर दिया जाता है। यदि उत्तर-दक्षिणसे कोई मोटर पूरब-पश्चिमसे आनेवाली मोटरसे आध सेकेण्ड पहले आयी है, तो यन्त्र पहले उत्तर-दक्षिणवाली मोटरको निकालनेका सङ्केत करेगा। आजकलकी ट्रैफिकका भयानक विस्तार देखकर ऐसे यन्त्रका बनना असम्भव प्रतीत होता था; किन्तु वैज्ञानिकोंने इसे भी सम्भव बना दिया है।

इस यन्त्रके तीन विभाग होते हैं, जो परस्पर विद्युत् द्वारा मिले रहते हैं। प्रथम भाग सवारियोंके चौराहेपर आनेका सन्देश देनेवाली पटरी होती है, जो चौराहोंसे कुछ दूर सड़ककी सतहपर आर-पार उभरी रहती है। यह प्रमुखतः एक बटनका कार्य करती है, जो ऊपरसे मोटर निकलनेके दबाव पड़नेपर विद्युत्-लाइनको जोड़ देता है। यह पटरी सड़कपर दृढ़तासे लगी रहती है और वर्षा, शीत तथा हिमका इसपर कोई प्रभाव नहीं होता। यह रबरसे मढ़ी रहती है, जो सवारीसे दबनेपर यन्त्रके दूसरे भागको सङ्केत पहुंचाती है। दूसरा भाग सञ्चालन सन्दूक अथवा मस्तिष्क कहलाता है। इसमें एक ऐसा यन्त्र लगा हुआ है, जो पटरी द्वारा लाये हुए आदेशके अनुसार तीसरे भागके रङ्गीन प्रकाशोंमें आवश्यक परिवर्तन करता है। तीसरा भाग एक साधारण सिगनलकी भांति होता है, जिसमें लाल, पीले और हरे प्रकाशकी व्यवस्था रहती है। लाल प्रकाशका अर्थ 'रुको', लाल-पीलेका 'सावधान', हरेका 'जाओ' तथा पीले-लालका 'ठहरो' होता है।

सङ्केतात्मक पटरीके लिए मोटरका धक्का मिलते ही उसकी खबर 'सञ्चालक सन्दूक'के पास तुरन्त ही भेजना असम्भव होता है। इसलिए सन्दूकमें अन्यान्य समय निश्चयात्मक युक्तियां प्रयुक्त की गयीं हैं, जिनके द्वारा प्रत्येक सवारीका समयानुसार मार्ग खुल जाता है। सिगनलके प्रकाश साधारण लालटेनोंकी भांति होते हैं, जो इस प्रकार लगी रहती हैं कि कमसे कम उनमेंसे एक सड़कके किसी भी कोनेसे दिखाई देती रहे।

इस सिगनलकी क्रिया समझनेके लिए हमें समकोणपर काटती हुई दो सड़कोंकी कल्पना करनी होगी। प्रत्येक सड़कके दोनों ओर एक-एक सङ्केतात्मक पटरी लगी रहती है और चौराहेके बीचमें चारों ओर दिखाई देनेवाली रङ्गीन बत्तियाँ लगी रहती हैं, जो प्रकाश बढ़ानेके लिए दोहरी भी कर दी जाती हैं।

मान लीजिये कि उत्तरसे दक्षिण जानेवाली एक मोटर चौराहेपर पहुँचती है और उसे हरी बत्ती दिखाई देती है। वह बिना रोकके चौराहेसे निकल जायगी। जब मोटर रबरकी पटरीके ऊपरसे निकलती है, तो मोटरका धक्का पटरी द्वारा सञ्चालक सन्डूक तक पहुँचता है और वहाँ इस बातकी व्यवस्था कर देता है कि जब तक मोटर चौराहेसे निकल न जाय, तब तक प्रकाशमें और कोई परिवर्तन न हो। मोटरके निकलनेका समय उसकी रफ्तारपर निर्भर रहता है, जिसका पता धक्के द्वारा सन्डूकके यन्त्रोंको मिल जाता है। यदि घोड़ागाड़ी निकली, तो पटरीकी रबर वेगशील मोटरकी अपेक्षा अधिक देर तक दबेगी और उसीके अनुपातमें उसके लिए हरा प्रकाश अधिक समय तक रहेगा। अब यदि दूसरे क्षणमें मोटर पूर्वसे आवेगी, तो सिगनल उसके विरुद्ध होगा। किन्तु उत्तर-दक्षिणवाली घोड़ागाड़ी निकल चुकी है, तो जैसे ही वह रबरकी पटरीको पास करेगी, प्रकाश उसके अनुकूल हो जायेंगे, अर्थात् पूर्व-पश्चिमकी ओर हरा प्रकाश 'निकलो' का सङ्केत करता हुआ दिखाई देगा।

यदि दो मोटरें एक साथ ही समकोण दिशाओंसे आवें, तो जो मोटर क्षण-भर भी पहले पटरी पार कर चुकी होगी, उसे पहले निकलनेका अधिकार हो जायगा। और अवसर मिलते ही उसीको सबसे पहले हरी रोशनी दी जायगी। दूसरी मोटर उतनी देर तक रुकी रहेगी, जब तक कि पहली मोटर पास न हो जाय। यदि अकस्मात् दोनों मोटरें एक साथ ही पटरीको दबायें, तो सञ्चालक सन्डूकमें एक ऐसा विशेष यन्त्र लगा रहता है, जो उनमेंसे एकको पहले निकलने देनेका निर्णय कर देता है।

कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि एक दिशासे दूसरी दिशाको जानेवाली मोटरोंका ताँता बड़ी देर तक नहीं टूटता। ऐसी दशामें विपरीत दिशामें जानेवाली गाड़ियोंको बड़ी देर तक खड़ा रहना पड़ता है। इस कठिनाईको दूर करनेके लिए भी इसमें बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। यदि उत्तर-दक्षिणके लिए हरा प्रकाश हो रहा है, तो ताँता बांधकर निकलनेवाली

मोटरोंमेंसे प्रत्येकसे एक-एक बार रबरकी पटरी दबेगी, अतएव प्रकाश हमेशा हरा ही रहेगा। इससे पूर्व-पश्चिमकी ओर जानेवाली सवारियोंको बड़ी देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इस आपत्तिका सामना करनेके लिए सिगनलमें एक कल लगी हुई है, जो पूर्व-पश्चिमकी ओरसे धक्का मिलते ही सचेत हो जाती है और अवसर मिलनेपर उत्तर-दक्षिणकी ट्राफिक बन्द कर देती है। यह कल एक निश्चित समयके ही लिए एक ओरका मार्ग बन्द करके दूसरी ओरका खोल सकती है। यह निश्चित समयकी कल ठीक उसी अवसरपर प्रयोगमें आती है, जब एक ओरसे सवारियाँ बड़ी देर तक निकला करती हैं और दूसरी ओरकी गाड़ियाँ खड़ी टापा करती हैं। यदि दोनों समकोण दिशाओंमें ट्राफिक अधिक होगी, तो निश्चित समयके लिए बारी-बारीसे दोनों ओरके मार्ग खुलते और बन्द होते रहेंगे।

पथिकोंको सड़ककी एक ओरसे दूसरी ओर जानेके लिए फुटपाथपर एक बटन दबाना पड़ता है, जिसके द्वारा सञ्चालक सन्डूक दोनों ओरकी ट्राफिक बन्द करके मनुष्योंके निकलनेके लिए रास्ता साफ कर देता है।

हाल ही में पथिकोंके लिए भी स्वसञ्चालक यन्त्र बनाया गया है। इसमें सड़क पार करनेके स्थानोंपर पथिकको एक सकेर मार्गसे होकर जाना पड़ता है, जिसके सामने फोटो इलेक्ट्रिक Photo electric cells पर प्रकाश बराबर पड़ा करता है। जैसे ही कोई मनुष्य प्रकाश और शीशेके बीचसे होकर निकलता है कि क्षण-भरके लिए मनुष्यकी परछाईके कारण प्रकाश शीशेपर पड़ता बन्द हो जाता है—प्रकाशके करते ही सिगनलके 'सञ्चालक सन्डूक'में धक्का पहुँचता है और वह सचेत हो जाता है। शीघ्र ही अवसर मिलनेपर वह पथिकके निकलनेकी व्यवस्था कर देता है।

थोड़े दिन हुए कि एक नया अन्वेषण हुआ है, जिसके द्वारा एक चौराहेपरसे निकलनेवाली मोटरका पता अगले चौराहेके सिगनलोंको हो जाता है और वह पहलेसे ही मोटरके निकलनेकी व्यवस्था कर रखता है। ऐसे सिगनल पिकैडिली तथा ग्लासोंमें लगे हुए हैं।

यह युक्ति इतनी सुन्दर है कि आवश्यकतानुसार यन्त्रमें परिवर्तन करके यह किसी भी प्रकारकी सड़कके लिए प्रयुक्त हो सकती है।

कनाडाकी विचित्र यमज बालिकायें

श्री आर० ए० वात्स्यायन

रहस्यमयी प्रकृति कभी-कभी ऐसी विचित्र लीला कर दिखाती है, जिसे देखकर महान् आश्चर्य होता है और जिसके कारणको समझनेमें मनुष्यकी बुद्धि अपनेको असमर्थ पाती है। आजसे प्रायः पांच वर्ष पहले कनाडाके एक छोटे-से कस्बेमें एक ऐसी ही विचित्र घटना घटी, जिसने सारे संसारको आश्चर्यचकित कर दिया। २८ मई, १९३४ को ओण्टेरियोके केलेण्डर नामक स्थानमें एक स्त्रीके पांच लड़कियां एक ही साथ पैदा हुईं और आज भी वे सब जीवित और पूर्ण स्वस्थ हैं। सम्भवतः संसारमें इस प्रकारकी यह पहली ही घटना है। दो सन्तानोंका एक साथ पैदा होना तो साधारण बात है, पर पांच-पांच बच्चोंका एक साथ पैदा होना और उनका जीवित रहना तो अवश्य ही एक अनहोनी बात है। इन पांचों यमज बहनोंको देखनेके लिए दुनियाके कोने-कोनेसे लोग आते हैं। ओटावाकी गवर्नमेण्ट ट्रेवेल व्यूरोकी रिपोर्टके अनुसार अमेरिकन यात्री इनको देखनेके लिए प्रति वर्ष ४० लाख पौण्ड खर्च करते हैं। इतनी आय, कमसे कम ४ प्रति सैकड़ें सूदके हिसाबसे किसी ऐसे उद्योगसे हो सकती है, जिसमें १० करोड़ पौण्ड मूलधन लगा हो। इस प्रकार इन पांचों यमज बालिकाओंसे होनेवाली आयका कनाडाके अन्य उद्योग-धन्योंसे होनेवाली आयोंमें चौथा स्थान है।

इन बच्चोंकी पैदायशके समयसे इनके छोटेसे कस्बेका काया-पलट हो गया है। पासके शहरकी म्युनिसिपैलिटी दिवालिया होनेसे बच गयी, वहां सौ मील लम्बी आधुनिक सड़कका निर्माण हुआ, जमीन-जायदादके मूल्यमें प्रायः १० लाख पौण्डकी वृद्धि हुई और सैकड़ों कर्मचारियोंको खाना, कपड़ा और वेतनके रूपमें प्रति वर्ष ५ हजार पौण्ड मिलता है। इसके अतिरिक्त वहां इनके अस्तित्वके कारण कितने ही छोटे-मोटे कारबार होने लग गये हैं, जिनमें लाखों पौण्ड लगे हैं और हजारों आदमियोंका जीवन-निर्वाह होता है।

इन पांचों यमज बहनोंके कारण कनाडाको जितना आर्थिक लाभ हो रहा है, इतने थोड़े समयमें उतना लाभ शायद ही किसी

उद्योग या कारबारसे होता। इस प्रकार इनके जन्मकी कहानी एक ऐतिहासिक महत्त्वकी घटना हो गयी है। २८ मई, १९३४ को जब वहांके डाक्टर डेफोको मालूम हुआ कि डायोनकी स्त्रीने एक ही साथ पांच सन्तानोंको प्रसव किया है, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही चिन्ता भी हुई कि किस तरह पांचों बच्चे जीवित रखे जा सकते हैं। उस समय उनके घरमें जो कुछ सामान मौजूद थे, उनकी सहायतासे उन्होंने इन नवजात शिशुओंके जीवनकी रक्षा की, क्योंकि यमज सन्तानें अकसर मर जाती हैं।

इस आश्चर्यजनक घटनाका किस प्रकार संसारमें प्रचार हुआ, यह भी एक दिलचस्प कहानी है। चिन्तित और आश्चर्य-चकित पिताको केवल यही जानकर सान्त्वना मिली और सन्तोष हुआ कि उसके प्रयत्नसे बच्चोंके प्राणोंकी रक्षा हो गयी, पर उसके भाई लियोन डायोनने ऐसी अद्भुत घटनाको योंही अपने घरकी चहारदीवारीके ही अन्दर रखना उचित नहीं समझा। उसने तत्काल ही स्थानीय पत्र "नार्थ वे नगेट" को फोन किया कि मेरे भाईकी स्त्रीके एक ही साथ पांच बच्चे पैदा हुए हैं। क्या इसकी सूचना प्रकाशित करनेके चार्जमें कुछ रियायत हो सकती है? सम्पादकको इस समाचारपर विश्वास नहीं हुआ और उसने समझा कि उसके साथ मजाक किया जा रहा है। पर लियोनने जब इस बातपर बहुत जोर दिया कि चाहे जो चार्ज लगे, पर यह सूचना अवश्य प्रकाशित होनी चाहिए, तब सम्पादकको उसकी सत्यतामें विश्वास हुआ और सूचना प्रकाशित हुई। इसके बाद २८ मईकी रातको संसारके कोने-कोनेमें यह समाचार फैल गया और दूसरे दिन प्रातःकाल सभी दैनिक पत्रोंमें मोटे-मोटे शीर्षकोंमें प्रकाशित हुआ। २८ मईको ही रातके आठ बजे अमेरिकाकी न्यूज एजेन्सी एसोसियेटेड प्रेसके द्वारा 'शिकागो अमेरिकन' के आफिसमें भी यह समाचार पहुंचा। न्यूज एडिटर और विशेषतः पत्रके उत्साही रिपोर्टर चार्ली ब्लेकने इस विचित्र समाचारको देखते ही इसकी महत्ता महसूस कर ली। न्यूज एडिटरने चार्ली ब्लेकसे कहा कि पहले इस बातका पता

लगाओ कि ये बच्चे जीवित हैं या नहीं। उस समय रातके दस बजे थे। चार्ली ब्लेकने यमज बालिकाओंकी देख-भाल करनेवाले डाक्टर डेफोको फोन किया और पूछा कि बालिकायें जीवित हैं न? डाक्टर डेफो दिनभर टेलीफोनोंका जबाब देते-देते थक गये थे। रातके दस बजे, सोनेके समय टेलीफोनकी घण्टी सुनकर चिढ़ गये और बोले—हां महाशय, जहां तक मुझे मालूम है, वे सब जीवित हैं। अब कृपया मुझे फिर तड़ न कीजियेगा। मुझे सोने दीजिये।

मगर चार्ली साधारण रिपोर्टर नहीं था। वह डेफोको चैनसे सोने नहीं देना चाहता था। वह उसी वक्त कैशियरसे पांच सौ डालर खर्चके लिए लेकर टेक्सीमें बैठ डाक्टर बनसेनके यहां पहुंचा, जो शिकागोके बच्चोंके विशेषज्ञ थे।

डेफोकी आंख अभी लगी भी नहीं थी कि फिर टेलीफोनकी घण्टी बज उठी। इस बार डा० बनसेन बात कर रहे थे। डेफो उठे और बिगड़कर बोले—मैं तड़ आ गया हूं। अब कुछ नहीं कह सकता। आप और 'शिकागो अमेरिकन' जहन्नुमको जायें। मुझे सोने दो। इसके बाद डाक्टर बनसेनने नवजात शिशुओंके सम्बन्धमें कुछ खास बातें बतलाईं और कहा कि ऐसे बच्चोंके लिए इनक्यूबेटर (कृत्रिम ताप द्वारा अण्डोंके सेनेका यन्त्र) की आवश्यकता होती है। डेफोको इनक्यूबेटरकी आवश्यकता तो जरूर थी, पर कैलेण्डरके सौ मीलके इर्द-गिर्दमें वह यन्त्र कहीं था ही नहीं। और अगर मिल भी जाता, तो वह बेकार था, क्योंकि डेफोका घर निकटतम इलेक्ट्रिक सप्लाइसे एक मीलसे ज्यादा दूर था। करीब आध घण्टे तक बातचीत होती रही। डाक्टर बनसेनने उन्हें सूचित किया कि चार्ली ब्लेक हवाई जहाज द्वारा पानीसे गर्म होनेवाला इनक्यूबेटर लेकर रवाना हो रहे हैं।

दूसरे दिन चार्ली ब्लेक इनक्यूबेटर लेकर कैलेण्डर पहुंचे। उनके एक घण्टेके बाद 'टोरण्टो स्टार'का रिपोर्टर कीथ मुनरो



पांचों यमज बालिकायें।

भी एक फोटोग्राफरके साथ वहां पहुंचा। उन्होंने जाकर देखा कि पांचों बालिकायें जीवित और स्वस्थ हैं और तत्काल ही कैलेण्डरके जेनरल स्टोरमें जाकर वहांसे अपने-अपने पत्रोंको समाचार भेजे, जिसके लिए उन्होंने स्टोरके मालिकका ५० डालरका बिल चुकाया।

इस प्रकार इन पांचों यमज बालिकाओंके जन्मका समाचार, जिनकी शक्लें भी अभी अच्छी तरह गढ़ नहीं पायी थीं और जिनका वजन पांच सेर भी नहीं था, संसारके दैनिक पत्रोंके मुखपृष्ठोंपर प्रकाशित हुआ और कनाडाको अप्रत्यक्ष रूपसे आयका एक जरिया मिला।

यद्यपि कनाडाको अपनी आय-वृद्धिके इस नये साधनका कुछ भी पता नहीं था, फिर भी दूसरे लोग इन पांचों विचित्र यमज बहनोंकी अन्तर्निहित शक्तिका अनुभव कर, इनसे लाभ उठानेके उपाय सोचनेमें लगे थे। उस समय सैली रेण्ड नामक एक अमेरिकन नर्तकी अपने नृत्य दिखाकर सबसे ज्यादा धन पैदा कर रही थी और उसकी ख्याति भी चारों ओर फैल रही थी। उसके प्रतिद्वन्दी मि० आइव स्पीयर किसी ऐसे खेल या तमाशेकी ताकमें थे, जिसे शिकागो वर्ल्ड फेयरमें दिखाकर वह धन और नाममें सैली रेण्डसे आगे बढ़ जायें। उन्होंने यमज बालिकाओंके पिता डायोनसे फोन द्वारा बातचीत की और उससे ५० हजार डालरमें यमज बालिकाओंका प्रदर्शन करानेका अधिकार प्राप्त कर लिया।

जिसने अपनी जिन्दगीमें कभी सौ डालर भी नहीं देखे थे, उसे यह जानकर कि पचास हजार डालर मिलेंगे, अपार हर्ष हुआ। ईश्वरकी कृपासे उसे जो यह अयाचित धन मिल रहा था, इसके उलक्षमें उसने अपने पुरोहित फादर डान रोडियर-को भी उसका कुछ हिस्सा देनेका निश्चय किया।

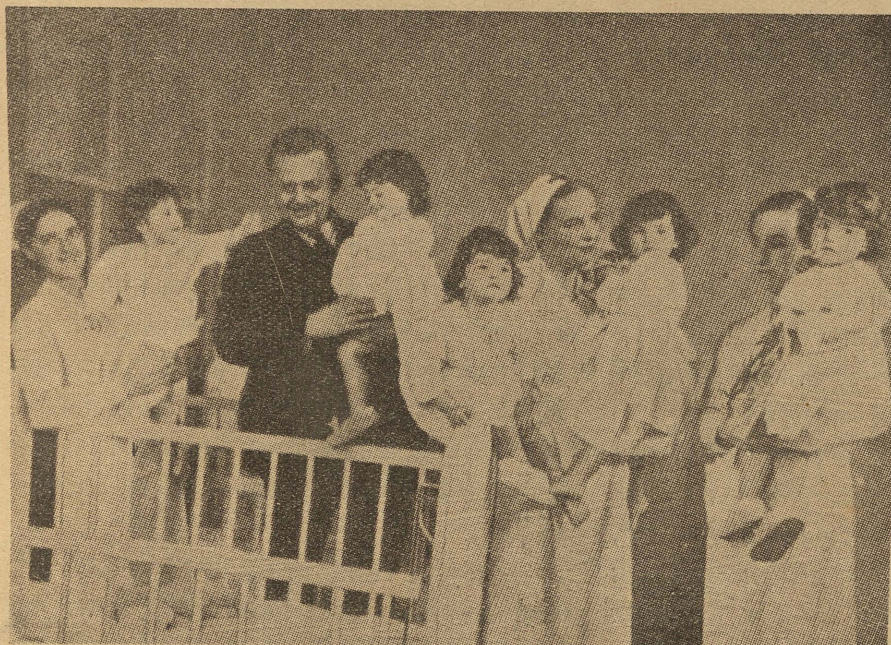
अन्तमें इस शर्तपर दोनों पार्टियोंमें कण्ट्राक्ट हुआ कि प्रदर्शनका सब खर्च चुकानेके बाद जो रकम बचेगी, उसका २३ प्रतिशत मि० और मिसेज डायोनको, ७ प्रतिशत पुरोहित फादर रोडियरको और ७० प्रतिशत मि० स्पीयरको मिलेगा। बालिकाओंसे लाभ उठानेके सम्पूर्ण अधिकारोंका उल्लेख कण्ट्राक्टमें किया गया था, और डाकूर डेफोके आदेशसे उन्हें शिकागो ले जाना तय पाया था।

जिन डाकूर डेफोने उन शिशुओंकी इतनी देख-भालकर

उन्हें स्वस्थ और जीवित रखा था, उन्हें उक्त कण्ट्राक्टमें मि० स्पीयर और मि० डायोनने मुनाफ़में हिस्सा बंटानेसे वञ्चित रख दिया। डाकूर डेफोको यह बात बहुत बुरी लगी। उन्होंने मि० स्पीयरकी इस धूर्तताका समुचित उत्तर देना निश्चय किया। उन्होंने बालिकाओंको उस समय या भविष्यमें किसी भी समय, स्थानान्तरित करनेका आदेश देनेसे इनकार कर दिया। इस तरह मि० स्पीयरका कण्ट्राक्ट रद्द हो गया। इसके बाद उन्होंने तत्काल ही ओण्टेरियोकी प्रान्तीय सरकारसे नवजात शिशुओंके अस्थायी अभिभावक बननेकी अपील की। डाकूर डेफोके इस व्यवहारसे उनके और मि० डायोनके बीच जो मनमुटाव पैदा हो गया, वह आज भी बना है, और दिनपर दिन गहरा ही होता जा रहा है। उधर अपने प्रयत्नका असफलतासे क्रोधित हो मि० स्पीयरने



बालिकाओंको देखनेके लिये दर्शकोंका तांता बंधा रहता है।



बालिकायें 'रिथूनियन' फिल्ममें काम करने जा रही हैं

कुल मिलाकर ५ करोड़ ६२ लाख ५२ हजार मीलकी यात्रा की, १२ लाख रातें बितायीं, और ४० लाख पौण्ड खर्च किये। इनके अतिरिक्त जो कनाडियन यात्री इन्हें देखने आते हैं, उनकी गणना करना कठिन है। प्रति वर्ष यात्रियोंकी इतनी ज्यादा भीड़ होनेके फलस्वरूप कैलेण्डरके चारों ओर कितने ही होटल, रेस्टोरां और पेट्रोल सर्विस स्टेशन खुल गये हैं और मुनाफेसे चल रहे हैं। पासके शहर नार्थ वेपर इसका इतना अधिक

मि० डायोन, डाकूर डेफो और टोरण्टोकी सरकारके विरुद्ध एक लाख डालर हर्जाना पानेका मामला इलिनायसकी अदालतमें दायर किया है, जो अभी तक चल रहा है।

इस प्रकार कनाडाके इस शिशु-उद्योगकी नांव पड़ी, जिसका सञ्चालन करनेके लिए सरकारकी ओरसे एक कार-पोरेगन गठित किया गया। उसके डाकूर डेफो, एक अवसर-प्राप्त जज, एक सरकारका नामजद और मि० डायोन सदस्य हैं। पर मि० डायोनने रज्ज होकर कारपोरेशनकी किसी भी बैठकमें शामिल होनेसे इनकार कर दिया है। तीनों पत्रकार चार्ली ब्लेक, कीथ मुनरो और फोटोग्राफर फ्रेड डेविस कार-पोरेशनकी ओरसे प्रचार-कार्य करनेके लिए नियुक्त कर लिये गये। चार्ली ब्लेकके जिम्मे फिल्म और विज्ञापनके टाई अप (विज्ञापनोंके साथ छपनेवाले चित्र) का काम सुपुर्द किया गया है, और वे डा० डेफोके प्राइवेट सेक्रेटरी भी हैं। कीथ मुनरो विज्ञानसे मैनेजर और फ्रेड डेविस सोल फोटोग्राफर हैं।

अब इन पांच वर्षोंमें इन पांचों यमज बालिकाओंकी प्रसिद्धि इतनी बढ़ गयी है कि गत वर्ष ३ लाख ५० हजार अमेरिकनोंने इन्हें केवल ५ मिनट तक देखनेके लिए ओपेरेरियोंमें

प्रभाव पड़ा है कि उसकी रूप-रेखा ही बदल गयी है।

पांचो यमज बालिकाओंके जन्मके समय नार्थ वे एक दिवालिया शहर था और कैलेण्डर छोटा-सा कस्बा, जहां एक जीर्णशीर्ण होटल था, जिसमें मुश्किलसे ७५ आदमी रह सकते थे। उक्त शहर और कस्बेके निवासियोंकी आर्थिक अवस्था इतनी खराब थी कि टेक्सकी दसूरी बड़ी मुश्किलसे हो पाती थी।

आज नार्थ वे और कैलेण्डरकी दिन-प्रतिदिन उन्नति हो रही है। सभी बकाया टेक्स वसूल हो गये हैं। कैलेण्डरमें अब एक आलीशान होटल बन गया है, जिसमें एक साथ १५०० आदमी आराम एवं आधुनिक सुविधाओंके साथ रह सकते हैं। वहांकी धूल-भरी ऊखड़-खाबड़ कच्ची सड़कें, काफ़ी चौड़ी और पक्की बन गयी हैं। १९३३ में जिस जमीन-के टुकड़ेकी कीमत ४० पौण्ड थी, अब उसकी कीमत १००० पौण्ड हो गयी है। कैलेण्डर और नार्थ वेके बीच पेट्रोल स्टेशनों और रेस्टोरोंके कारबारमें २० लाख पौण्ड लगे हैं। १९३३ में नार्थ वेमें ३६०० मोटरें थीं, गत वर्ष उनकी संख्या बढ़कर ८१६६ हो गयी है।

जिन बालिकाओंके कारण उनके जन्म-स्थान और पासके शहरकी आर्थिक आयमें इतनी वृद्धि हो गयी है, उनके सम्बन्धमें सर्वसाधारणका यह ख्याल होना स्वाभाविक है कि उनके पास भी लाखों रुपये जमा हो गये होंगे। पर बात यह नहीं है। उनके अस्तित्वसे कनाडामें जो इतना धन-उपार्जन हो रहा है, उसका बहुत कम भाग उन्हें मिलता है। हाल ही में उनकी आयके सम्बन्धमें जो आंकड़े प्रकाशित हुए हैं, उनसे मालूम हुआ है कि अब तक उन्हें कुल मिलाकर १ लाख ५० हजार पौण्ड मिले हैं, जिनमें १ लाख ३० हजार अमानतके तौरपर लाभकारी कारबारोंमें लगे हैं। बाकी उनके निजी खर्चमें व्यय हुए हैं।

उनका वार्षिक खर्च ५ हजार पौण्डसे कुछ ज्यादा होता है। इसी रकमसे इनके १४ आदमियोंके स्टाफका वेतन दिया जाता है, जिनमें दो नर्स, तीन पुलिसमैन, दो दासियाँ, एक अध्यापक, एक दरवान, एक रसोइया, एक विजनेस मैनेजर, एक आफिसका कर्मचारी और उनके निजी डाक्टर डेफो हैं, जिनका वेतन ४० पौण्ड प्रति मास है। इसीमेंसे इनके माता-पिताको ६० पौण्ड प्रति मास और बड़े भाइयों तथा बहनोंकी पढ़ाईका खर्च भी दिया जाता है।

यमज बालिकाओंको देखनेवालोंसे किसी तरहका चार्ज नहीं लिया जाता है। उनकी आयके प्रधान साधन हैं, उनके चल-चित्र, अचल-चित्र और विज्ञापनोंके साथके चित्र। दुवेन्टियथ सेञ्चुरी फाक्स पिक्चर्ससे इन बालिकाओंके चल-चित्र लिये जानेके बदलेमें अब तक ६० हजार पौण्ड मिले हैं, और आगामी दो वर्षोंमें और १० हजार पौण्ड मिलेंगे। इसके अतिरिक्त न्यूज रीलके अधिकारके लिए प्रति वर्ष २००० पौण्ड मिलते हैं। अचल-चित्रोंको लेनेका एकमात्र अधिकार इनके निजी फोटोग्राफर फ्रेड डेविसको है। अचल-चित्रोंकी बिक्रीसे अब तक इन्हें १५ हजार पौण्ड मिले हैं।

इनकी बाकी आय विज्ञापनोंके साथ छपनेवाले इनके चित्रोंसे होती है। उदाहरणार्थ—एक कम्पनीने अपने साबुन और दन्तमञ्जनके विज्ञापनोंके साथ इनके चित्र देनेके लिए ११ हजार पौण्ड और एक दूसरी कम्पनीने अपने जलपानके एक खाद्यके विज्ञापनमें इनके नाम देनेके लिए ५ हजार पौण्ड

दिये हैं। इस साधनसे उन्हें निरसन्देह काफी आय हो सकती, पर इनके डाक्टर डेफो और अभिभावक उन्हीं वस्तुओंके विज्ञापनोंमें इनके चित्र और नाम प्रकाशित करनेकी आज्ञा देते हैं, जिनका व्यवहार ये बालिकायें करती हैं।

विज्ञापनोंमें इनके चित्र और नाम देनेसे विज्ञापित वस्तुका महत्त्व कितना बढ़ जाता है, उसका अनुमान इसी एक बातसे लगाया जा सकता है कि इनकी एक नर्सने एक बार बातों ही बातोंमें योंही कह दिया था कि इनके प्रथम सप्ताहके भोजनमें एक खास शरबतकी दो-चार बूंदें डाल दी गयी थीं। इससे उस शरबतकी बिक्री इतनी बढ़ गयी कि उसके प्रस्तुतकर्ताओंको माल सट्टाई करनेके लिए एक और मशीन बैडानी पड़ी। १९३३ में उक्त कम्पनीका विज्ञापन-खर्च २१ सौ पौण्ड था, १९३६ में उसने विज्ञापनमें ४९ हजार २ सौ पौण्ड खर्च किये।

यद्यपि इन विचित्र बालिकाओंके पिता डायोनको, इनसे अर्जित धनका जितना हिस्सा मिलना चाहिए उतना नहीं मिलता, फिर भी उनकी भी आय कम नहीं है। प्रति मास ६० पौण्डका चेक तो इन्हें मिलता ही है, इसके अतिरिक्त उन्हीं बालिकाओंके वासस्थानके पास ही एक रेस्टोराँ और स्टोर खोल रखा है, जिससे उन्हें प्रति वर्ष ५० हजार पौण्डकी आय है। बालिकाओंके फोटोपर एक शिल्लिङ्ग लेकर ये अपना आटोग्राफ (हस्ताक्षर) देते हैं। इससे भी काफी आमदनी होती है।

बालिकाओंके अभिभावकोंको यह आशा है कि इनकी अवस्था ८ सालकी होने तक इनकी निजी सम्पत्ति २ लाख पौण्डकी हो जायगी। इतनी रकमसे साधारण बच्चोंकी तरह इनका लालन-पालन मजेमें हो सकता है। पर प्रकृतिकी विचित्र सृष्टि इन यमज बालिकाओंको देखनेके लिए लोग इतने उत्सुक रहते हैं कि जब तक कनाडाकी सरकार इन्हें किसी अभेद्य चहारदीवारीके अन्दर रखनेकी व्यवस्था नहीं करती और उनकी रक्षाके लिए एक छोटी-सी सेना नहीं रखती, तब तक इसमें सन्देह ही है कि वे कभी जनताकी नजर बचाये अपने घरसे साधारण बच्चोंकी तरह खेलने-कूदनेके लिए बाहर निकल सकें।

बस गिलहरी ही तो थी....

श्री अमृत

“कुछ सुस्ती और कुछ अनमनापन, मैं बाहर घूमनेके लिए निकल आया। बगीचेमें आया, सोचा, जरा दिल-बहलाव हो जायगा। और तो कुछ नहीं, सबोंने लम्बी-चौड़ी जमीन अलबत्ता घेर रखी थी। सब कुछ वीरान था, उजाड़, मानो अभी-अभी सबपर एक, जहरमें तपी हुई, झुलसानेवाली हवा डोल गयी हो। बगीचेमें उदासी-ही-उदासी दीख रही है। बागीचे—इसी नामसे उसे पुकारा जाता है—का रकबा बहुत था। इसीलिए जहां एक कोनेमें कुछ लड़के आंख-मिचौनी खेल रहे थे, वहां दूसरी तरफ गोलीका खेल जमा हुआ था। मुझे न मालूम क्यों सहसूस हुआ कि ये खेल यहांपर न खेले जाने चाहिए थे—इनके लिए तो दूसरी ही हजार दिलकश, दिलफरेब जगहें निकल आ सकती हैं। इस बागके लिए तो मुझ-जैसे बदनसीब, मायूस लोग ही ठीक हैं—जिन्हें न आज-की जिन्दगीमें कोई भेद रह गया है और न आनेवालीके लिए धीरज और इतमीनान। सब ओरसे ठोकरें खाकर यहां आना चाहिए....इस उदासीके आलममें ! चलो इस बियाबांमें भी इतनी जगह तो है ही कि जरा घूम सकूं। शायद तबीयत ताजा हो जाय।”

यह एक अंधेड़ आदमी है—उम्र यही कोई चालीस साल। चेहरेपर निराशाके बादल उमड़-घुमड़कर छाये हैं। माथेपर वेशुमार शिकनें पड़ चुकी हैं, मानो वे उन सारी परीशानियों और तकलीफोंकी दाद देती हैं, जो उस बेचारेने झेली हैं। चेहरेपर एक उदासी निरन्तर बनी रहती है। बाल उसके बड़े कहे जा सकते हैं और लापरवाहीसे मोड़ लिये जान पड़ते हैं। कपड़े उसके जिस्मपर चुस्त नहीं बैठते दीख पड़ते। मालूम नहीं, किस एक धक्केसे वह और भी धंसता जा रहा है। उसका एक विलक्षण व्यक्तित्व है। जब वह हंसता है, उसके गालमें गड्ढे पड़ जाते हैं, जिनसे उसका आकर्षण तो बड़ जाता है, पर साथ ही उसकी आंखें ऐसी कुछ स्थिर होकर रह जाती हैं कि देखनेवालेको लगता है, उन आंखोंमें बस अब आंसू आ जानेकी कमी है। वह खुश रहनेकी कोशिश करता है, फिर भी उससे मिलकर वापस लौटनेवाले एक अफसोस

लेकर लौटते हैं। उसका नाम जाननेकी कोई जरूरत नहीं।

लेकिन नहीं, आज जो उसकी शकलपर एक उलझन है, एक उजड़ापन है, उसके पीछे भी एक कहानी है.....। लेकिन खैर, उस कहानीसे हमको, आपको क्या ? यहांपर तो कुछ दूसरी ही बात कहनी है। अस्तु, इस बातको यहीं छोड़कर हम देखें, वह अपना अपनापन लिये हुए लम्बे-धीमे डग रखता हुआ घूम रहा है। आखिरकार वह कुछ थककर पासकी एक टूटी लोहेकी बेच्चपर बैठ गया।

बेच्च एक बरगदके पेड़के नीचे रखी हुई है। वह आदमी वहींपर बैठा हुआ अपने विचारोंमें मग्न है। रह-रहकर आंखें सिकोड़ता है, बालोंमें हाथ फेरता है, लेकिन जिस एक मुद्रामें वह आकर बैठा था, ठीक उसी मुद्रामें वह पन्द्रह मिनट बाद भी बैठा हुआ है।

उस बेच्चसे हटकर एक सोलह बरसका लावारिस-सा चञ्चल शोख लड़का नङ्गे पैर, फटे-से कपड़े पहने, एक हाथमें एक छोटी-सी गुल्ल और दूसरेमें कुछ गोल-गोल अंकड़ियां—जिन्हें गुल्लपर चढ़ाकर वह छोटे-छोटे जीवोंपर निशाना साधता है—लिये टहल रहा है। यह आदमी अपने ध्यानमें मग्न है और वह लड़का यह देख रहा है कि एक गिलहरी अभी दिखी थी और नीचे उतरनेके लिए अभी बड़ी थी, लेकिन फिर कहां रास्तेमें रह गयी ! एकाएक एक नन्हीं-सी नादान गिलहरी किसी चीजकी खोजमें पेड़के तने तक आकर रुक गयी। उस आदमीकी नजर भी न मालूम किस कारणसे उस गिलहरीपर जम गयी और वह आंखों-आंखोंमें ही उसका पीछा करने लगा। उसने देखा, वह गिलहरी तनेसे फुदकती हुई उतरी। उछलती हुई वह तीन हाथ आगे बढ़ी, फिर अपनी दुमपर खड़ी होकर उसने इधर-उधर चौकन्नी दृष्टियां फेंकीं, फिर डरते-डरते पगोंसे और दुम लहराती हुई आगे बढ़ी। उसने पास ही पड़ा एक छोटा-सा तिनका मुंहमें कुत्से दबाया और आंखोंमें कुछ शङ्का, भीति, और नादानी और पैरोंमें सफलताका भार लिये तनेकी ओर जल्दी, पर रुकते-रुकते बढ़ी। बेच्चपर बैठा हुआ यह आदमी इस समय कुछ

देरको अपने दुःख-सन्ताप भूलकर उस गिलहरीको बड़ी रुचि-पूर्वक देखता रहा था और सोचने लगा था—“कितनी नादान चीज है ! छोटी-सी नाखूनी आंखोंमें कितनी चमक है !..... मन्द भी, तेज भी, मानो मौत भी हो, जिन्दगी भी । दुम ऐसे हिलाती है, मानो उसके छोटे-से जीवनमें बाढ़ आ गयी हो !” और इस आदमीको ऐसा लगा कि वह गिलहरी अपनी अद्भुत चमकके साथ उसकी आंखोंमें देख रही हो और कुछ याचना कर रही हो, कुछ मांग पेश कर रही हो । और उसके नरम जिस्मकी उन उभरी हुई काली-काली धारियोंको देखकर उसे अनेकों बातें याद हो आयीं और उसने अपने चिन्तनको इन शब्दोंमें समाप्त किया—“ऐसी ही कोई भोली-सी नन्हीं गिलहरी त्रेता-युगमें रामके सेतुमें सहायता पहुंचानेके लिए, मुंहमें एक छोटा-सा तिनका दबाकर रामके पास पहुंची होगी और रामने मुग्ध होकर उसकी पीठ-पर हाथ रख दिया होगा और तबसे ये रेखायें गिलहरीपर रामकी कृपाका प्रतीक बनकर चली आती हैं । रामने गिलहरीको सबको दिखाकर कहा होगा—मेरी सच्ची भक्त यह है । इसमें सेवा करनेकी आकांक्षा प्रबल है; किन्तु शक्ति क्षीण है, फिर भी कार्यमें कार्यकी आत्मा देखनी चाहिए । इस गिलहरीका लाया हुआ यह तिनका मेरे सेतुको बांधनेमें हनूमान और दूसरे योद्धाओं द्वारा उठाकर लाये हुए जङ्गल और पहाड़से ज्यादा सहायता करेगा ।” और रामने गिलहरीको चूम लिया होगा । सच है, यह गिलहरी है भी इसी योग्य ।”

लेकिन उस गिलहरीको देखकर एक तरफ जहां उसने ये सब बातें सोचीं, दूसरी तरफ कुछ और भी सोचा, लेकिन... उसे वह दूसरी बात अस्पष्ट रूपमें ही हृदयमें कहीं करकती हुई मालूम पड़ी, जब तक कि.....

एकाएक इस आदमीको, अपने चिन्तनके प्रदेशमें, जैसे धक्का लगा और वह घबराकर खड़ा हो गया । उसने देखा, उस लड़केने गिलहरीपर गुल्ले तानी—गिलहरी अभी तने तक न पहुंच पायी थी—और जब तक वह आदमी उसे चिलाकर रोके, उसने गुल्ले छोड़ दी, और इस आदमीने—आधी चीख बाहर और आधी चीख भीतर, आधी जान बाहर और आधी जान भीतर—देखा, गिलहरी जहां थी, वहीं ढेर हो गयी । वह वेध होकर वेधपरसे गिलहरीके पास दौड़ा—

यद्यपि जलदीमें उसका कपड़ा भी फंसकर फट गया—और दूसरे पल वह दम तोड़ती हुई गिलहरीके पास था । वह शिकारी लड़का लुटा-सा खड़ा था । लेकिन इस दर्दसे बेवस आदमीके पास वक्त न था कि उसकी तरफ देखता या उससे कुछ कहता । उसने देखा, गिलहरीमें अब भी कुछ जान बाकी थी और थोड़ी-थोड़ी देरके बाद जरा-जरा-सी सांस लेकर वह दम तोड़ रही थी । उसका पेट ऊपर-नीचे आता जान पड़ता था । वह आदमी पासके नलके पास दौड़ा और अञ्जलिमें थोड़ा-सा पानी लेकर दौड़ता हुआ आया । लेकिन उसने आकर देखा, पानी लाना बेकार हुआ.....उसने पानी उसपर छिड़का, लेकिन वह मिनकी तक नहीं । और पानी भी नाकामयाब होकर उसकी काली धारियों और नरम गातसे फिसलकर जमीनपर आ गिरा ।

उस आदमीको जबईस्त उस लगी । और उसने विचारा, “कैसा विषम अन्तर है—कहां वह चमकती हुई मोतीदाने-जैसी आंख और कहां यह पथरायी हुई बेजान मट्टी ; कहां वह फुदकना और कहां यह जड़ होकर सो रहना ; कहां वे चौकन्नी आंखें फेंकना और कहां अब विपक्षियोंके हाथ समर्पण कर देना !...कैसा विषम अन्तर है भगवान्...जीवन और मृत्युमें ! अभी पलभर पहले इसने स्फूर्तिसे विदा ली होगी और अब...पत्थरकी तरह निश्चल और अपने मुंहके कोनेसे छूटकर गिरे हुए तिनकेकी तरह बेजान !” उस आदमीने पानी लेकर उसकी आंखोंको सहलाया, बदनपर हाथ फेरा, चूमा-चाटा, लेकिन वह गिलहरी न जागी । उसकी आंखें पथरा गयी थीं, और जिस्म वर्ककी तरह ठण्डा हो गया था । और चालीस बरसका एक अघेड़ आदमी, जिसके बाल समयसे पहले ही पक चले हों, जिसने तकलीफें कम न सही हों और झुर्रियां जिसके माथेपर समयसे पहले ही आकर रम गयी हों, उसीके पास बैठा हुआ जार-जार रो रहा था । उसकी हिचकियां न बंधी थीं, लेकिन आंसूके कतरे जारी थे ।... उसका दिल चाक हो गया था । ऐसी पकी उमरवाले आदमीको इतनी छोटी-सी बातपर यों जार-जार रोते देखकर लोगोंको अचरज हुआ और एक छोटी-मोटी मजलिस जमा हो गयी यह देखनेके लिए कि एक दुनियाकी आगमें पूरी तरह पकाया गया आदमी एक बिलकुल मामूली-सी बातको लेकर—एक लड़केने गुल्ले तानी और गिलहरी मार

दी—इतनी भावुकता यानी बेवकूफीका प्रदर्शन कर रहा है और यूँ उस मरी हुई चीजको अपने आँखोंसे धो रहा है, गोया गिलहरी न हुई, अपनी सगी प्या...। उनको अचम्भा तो इस बातका हुआ कि आया यह आदमी इसी जमीनपरका है या फरिश्तोंकी दुनियासे आया है, जहाँ मुमकिन है, ऐसे बेरहम दृश्य न देखनेको मिलते हों। लेकिन इस जमीनपर तो गिलहरीकी कौन कहे, लोग आदमियोंको इसी तरह बेरहमीसे मार देते हैं, और आदमी भी इसी गिलहरीकी तरह बिना पानीके सिसक-सिसककर दम तोड़ देता है और फिर उसकी मौतपर सिवाय उसके आसपासके दो-एक लोगोंको छोड़कर और किसीके एक कतरा आँसू भी नहीं निकलता। और फिर...ऐसी दुनियामें गिलहरीकी विसात क्या कि उसे लेकर यूँ बेवस होकर आँसू गिराये जायं!—निकम्मी-सी बात जान पड़ती है। लोगोंने भी कहा; कैसा बुढ़ा बच्चा है। और वह आदमी भी कौन-सी बात लेकर यूँ विवश होकर रो रहा था, यह शायद वह जानता रहा हो—उसके आँखोंसे ठके मुँहकी चिन्तित दीप्तिमें यह बात लिखी हुई थी—लेकिन हमें नहीं मालूम.....

लोगोंका जमघट उसे अभी घेरे खड़ा ही था, जब वह एक अस्त-व्यस्त दशामें उठ खड़ा हुआ। हाथमें उसके तिनका था और लोगोंके बीचसे अपनेको चीरता, अपना फटा कपड़ा झुलाता हुआ, वह बगीचेके किनारे अपने घरमें घुस गया। अपने खास कमरेमें जाकर उसने अन्दरसे किवाड़ बन्द कर लिये और एक आरामकुर्सीपर धम्से बैठ गया। फिर वह उठा और अपनी एक पुरानी मेजपर आकर—जिसकी लकड़ी सूख या निचुड़ चुकी थी और जिसमें अनेकों दरारें पड़ गयी थीं और उन दरारोंमें अजीब-अजीब किस्मके जानवर फलते थे—उसने बारी-बारीसे सब खानोंको जल्दीसे खींचना, फिर आवाजके साथ अन्दर डेलना शुरू कर दिया। आखिरकार उसे वह खाना मिल गया, जिसकी उसे तलाश थी। उसने उस ड्रायरमेंसे एक पुराना जर्जरित... लेकिन भली भाँति अपना परिचित नकाशीदार बक्स निकाल लिया। उस बक्सको देखनेसे साफ जाहिर था कि उसकी लकड़ी खदर गयी है और उसे और उसके साथ ही उसके खोलनेवालेका भाग्य किसी कारणसे बहुत बार खोला-मूँदा गया है। नकाशियोंपर उंगलियाँ लगते-लगते वे भी घिस

गयी थीं। और गो कि उसपर हर समय बहुत काफी गर्द पड़ी रहती थी, लेकिन वह धुला-पुछा-सा दीख पड़ता था।

इस आदमीने उस बक्समें पड़ी अनेकों चीजोंमें उंगलियाँ दौड़ायीं। उस बक्समें उसकी पुरानी मुहब्बतके अनेकों खत पड़े हुए थे, लेकिन इस वक्त उसे उनसे कोई काम न था। उसकी उंगलियाँ दौड़ती रहीं, जब तक कि उसे एक छोटा-सा हलका-फुलका लकड़ीका डिब्बा न मिल गया। उसे अपनी याददाश्तसे यह बात मालूम थी कि उस डिब्बेमें वही चीज थी, जिसकी उसे तलाश थी...और मानसिक दुःख या क्षोभमें याददाश्त और भी अधिक पैनी हो जाती है।...

उसने उस डिब्बेको खोला और उसमें जो कुछ देखा, वह हम अपने पाठकोंको भी दिखा दें—उसमें एक तह रुई ऊपर और एक तह रुई नीचे, दोनोंके बीचमें एक छोटा-सा, एक इञ्चका तिनका बड़े जतनसे रखा हुआ था। और जतनसे नहीं तो क्या ऐसे ही, यह तिनका पच्चीस साल पुराना होकर भी यों सुरक्षित रखा है। और खासकर जब इस तिनकेवाली घटनाके ही समय और भी एक व्यापक घटनासे सम्बन्ध रखनेवाली एक लड़की (जिसकी यादगारमें ये चिट्ठियाँ थीं, जिनके बीच वह लकड़ीका डिब्बा प्रतिष्ठित था) इस बेचारे उदास आदमीको निरन्तर अपने नामकी माला जपते छोड़कर ही आखिर अपने पतिके घर मर गयी...यह सब कोई मामूली बातें हैं—लेकिन हमें इससे क्या? यह तो यों ही बता दिया...

वह आदमी खुला डिब्बा हाथमें लिये खड़ा था। रह-रहकर कभी-कभी उस तिनकेको छू भी लेता था, और उसके चिन्तनकी धारा जिस रूपमें बह रही थी, वह इस प्रकार है :—

“उस दिन भी तो यों ही कुछ धूप-छाँहका-सा खेल मचा हुआ था—पलमें आफताब निकल आता था और पलमें ही बादलोंकी काली चादरमें छिप जाता था। बरसात यों ही नाममात्रको आ गयी थी, यद्यपि तब तक कोई गहरी वर्षा न हुई थी। यों ही फुहारें आती थीं और थोड़ी-सी नरमी और ठण्ठक देकर निकल जाती थीं। उस दिन भी ऐसा ही हुआ था। दो बूंद पानी गिरा था और साफ हो गया था। जमीनमें सौधी खुशबू निकलने लगी थी और चारों तरफ गहरी हरियाली नजर आती थी। मानो धरती हुलसकर आशीष दे रही हो।.....

“बहुत बरस हो गये, इसलिए बहुत साफ तो बात याद नहीं है, लेकिन तब भी खास बातें, मोटी बातें...तब मैं सोलह बरसका था, और इसलिए एक तरफ जहां नादान शैशव मेरा पल्ला खींचता था, वहीं दूसरी तरफ पूरे आदमी होनेकी समझ और हविस जोर मार रही थी। लेकिन यौवनका पहला उभार सच पूछिये तो बचपनसे भी नादान और बोदा होता है। मतलब यह कि अनेकों बेवकूफियां, ऊटपटांग ख्वाहिशें, अपनेको ‘कुछ’ समझनेकी धुन मुझपर अपना वजन डाले हुए थीं...और यही बुरा था !

“जिस दिन वह घटना हुई, उसके एक दिन पहले मैंने गांवमें आनेवाले बिसातीसे एक छोटी-सी मामूली शीशमकी गुलेल तीन पैसे देकर खरीदी थी। मैं यों भी आम वगैरह मार गिरानेमें अपने गांवके छोटे-बड़े दोस्तोंमें उस्ताद समझा जाता था।...यह भी एक दुर्भाग्य ही था।”

और उसकी आंखमें सूखे हुए आंसू एक बार फिर उतर आये—विषयकी अंधेरी गहनताको सोचकर और यह याद कर कि उस कृत्यके हो जानेके बाद उसे मनके क्षोभ और ग्लानि और धिक्कारके रूपमें कितनी गिरां कीमत देनी पड़ी थी !.....

“हां, यह भी एक बदनसीबी ही थी कि मेरा निशाना अच्छा समझा जाता था। तो दूसरे दिन, जब कि समय सुहावना था और प्रकृति अपने हरे उल्लासमें रंगी खड़ी थी, मैं सवेरेके वक्त अपनी गुलेल लेकर निकल आया और चर्खी, मैना, पण्डुक वगैरह चिड़ियोंकी ताकमें घूमने लगा। और मनमें कसद भी कर रहा था कि अगर इनमेंसे कोई चिड़िया न मिल सकी, तो किसी गिलहरीको तो जरूर ही निशाना बनाऊंगा।...

“...इस खोजमें मैं तो घूम ही रहा था, मेरे साथ ही छोटे लड़कोंका एक जमघट भी मुझे घेरे हुए घूमने लगा। कुछका खयाल था कि मैं कुछ भी मार सकनेमें नाकामयाब रहूंगा और कुछ मेरे हिमायती थे, लेकिन मुझे तो सबको यह दिखा देना था कि मैं अचूक निशानेबाज हूँ और अगर बदनसीबीसे और कुछ न मिल सके, तो गिलहरी तो कहीं गयी नहीं है। ...पाप तो जैसे मुझे लगता ही न था, लेकिन लड़कोंके उस हंसने और हिम्मत पस्त करनेवाले इशारोंने मुझे और भी जल्दी यह कह डालनेके लिए मजबूर किया, जिसका

सदमा जितना जबरदस्त मुझे तब था, उतना आज भी है। चोट कुछ मामूली न थी। एक इतने अदना और नाचीज वाक्यको लेकर मैंने तबसे अपनेको कितना धिक्कारा है और कितने तड़पते आंसू गिराये हैं, यह न पूछिये। और तबसे मैं कितने अफसोस और कितनी नदामतका शिकार रहा हूँ, इसे भी मुझी तक रहने दिया जाय।...

“गोकि मजाककी बात जरूर मालूम पड़ती है कि एक ऐसी दुनियामें, जहां सितम ही सितम हो, एक ऐसा आदमी, जिसे महज सितम और जेरबारी बख्शी गयी हो, इतनी छोटी-सी बातपर आंसूका एक कतरा भी बरबाद करे।... फिर भी तबीयतपर काबू न हो तो...”

“वह दिन भी आजका-सा ही सुहावना था और प्रकृति नयी जीवनी शक्तिसे छलकती हुई खड़ी थी, मानो कोई अमृत लुढ़क गया हो, और अपनी इस हयात और खुश्रीका इजहार वह अपने लहलहाते हुए हरे रङ्गसे दे रही थी—चारों तरफ तो जिन्दगीका पैगाम डोल रहा था। वहां खूं-रेजीकी गुल्लाइश कहां थी। लेकिन मैं तो हाथमें घातक गुलेल और हृदयमें यह घातक विचार अपनेको छुनाता हुआ घूम रहा था।

“बन्दूक और तोपसे तो सब मार सकते हैं। इसमें क्या खाका है ? तारीफ तो मेरी तब हो, जब मैं गुलेलसे मारूँ और सो भी ज्यादा कङ्कड़ोंकी जरूरत न पड़े। सिर्फ एक निशानेमें.....बस वहीं पेटके पासमें और काम तमाम। गोलीके मानिन्द कङ्कड़ी बहुत तेजीसे अन्दर घुस जायगी, वहीं निशान बन जायगी और वह निशान भी किसीको न दिखेगा। ...वहांसे निकलती हुई खूनकी एक पतली रेखा ही तो बस होगी, जो किसीको दीख पड़ेगी। इससे ज्यादा क्या ? लड़कोंका झुण्ड पीछे दौड़ पड़ेगा और उन सबके मुंहपर, जो मुझपर हंस रहे हैं, कालिख पुत जायगी। और... और मैं विजयी हूंगा। सब मेरी तारीफ करेंगे, तो मैं भी कैसा फूला न समाऊंगा।

“और इस सबके बीच न तो मुझे यही सूझा कि यह बात भी सम्भव है कि मैं पुरानी कहानीवाली उस मेढकीकी तरह इतना फूल जाऊँ कि समा न सकूँ और फूट पड़ूँ। और न मुझे इन सारी हिंसक प्रवृत्तियोंके बीच यह बात एक बार भी—धीमी आवाजमें ही क्यों न हो—सुनाई दी कि कैसा हो,

अगर मैं एक मरती चिड़ियापर पानी छिड़ककर और एक मरती गिलहरीपर दो अंगुलियां फेरकर उन्हें जिला सकूं। कैसा आह्लाद होगा, जब चिड़ियां तन्दुरुस्त होकर फुरसे उड़ जायंगी और फिर परली तरफके बांसकी लचीली डालपर जब वह पन्छी कोई भी नगमा अलापेगा, तो ऐसा लगेगा, मानो वह मेरी हीं बड़ाई और कृतज्ञतामें कुछ कह रहा है।”

वह आदमी उस डिब्बेपर सिर झुकाकर फफक-फफककर रोने लगा.....जिसमें उसे चैन नसीब हो जाय। उसका चेहरा आंखोंसे भर गया और बूंदें कुछ-कुछ देरपर आंखके कोनोंसे टपककर रूईकी उन दो तहोंको भिगोने लगीं।... लेकिन उसके चेहरेपर सन्तोष लहरें मार रहा था।...

“और न मुझे अभागने यही सोचा कि जब वह मासूम नन्हीं-सी गिलहरी चड़ी होकर हौले-हौले उछल-उछलकर अपने घोंसलेमें पहुंच जायगी, तो मैं क्या स्वयं अपनी कृतज्ञताके भारसे न दब जाऊंगा? ...लेकिन नहीं, मैं तो हिंसापर आमादा था। और तभी न मुझे ऐसा निर्मम धक्का लगा, जिससे मैं अब तक न उबर सका और एक पुश्त गुजर जानेके बाद आज एक पुरानी हड्डी खोदकर (उस गिलहरीके नामको तो कम और अपने नामको ज्यादा) रो रहा हूं।..... ठीक है न ?

“आज जब उस सारी घटनापर विशद रूपसे विचार करना ही पड़ रहा है, तो मैं भी क्षोभकी इस बादमें सन्तोषका एक तितका यही पा लेता हूं कि मैं भी किसी बड़ी ताकतकी मातहत ही उस समय काम कर रहा था। कुछ ऐसा दुर्भाग्य कि कोई चिड़िया बैठे, मैं हाथका हिलाना बन्द करके निशाना लूं और इसी बीच वह उड़ भी जाय—मुझे खिसियाना-सा और प्रतिहिंसाकी आगसे फुंका हुआ छोड़कर। मेरे साथियोंकी जुमलेबाजियां और आवाजें तथा हंसी सब बढ़ती ही जायें। और इस तरह गोया मेरे छलानेका रहा-सहा सामान भी इकट्ठा होने लगा।...

“आखिरकार बहुत जबर, मुंहकी कालिख छुड़ानेके लिए मैं गिलहरीपर उतर आया। और मुझे ऐसा लगा कि मेरे सिरपर नाचते हुए शैतानने गिलहरीका इन्तजाम भी पहले ही से कर रखा है...क्योंकि मनमें विचार आये दो पल भी न हुए थे कि मुझे एक गिलहरी पासके पेड़से उतरती दीख पड़ी।—बिल्कुल ऐसी ही गिलहरी, जिसपर मैं अभी आंखों-

का अर्घ्य चढ़ाकर, और इस प्रकार अपने उर्नीदे विषादको फिरसे जगाकर, आया हूं। ऐसी ही घाटियां, ऐसी ही नादानी...दुनियाके मक्कार और दगाबाज आईनी-कानूनसे, आंखोंमें वही पानी, वही चमक-दमक, इलतमास, साथ ही वही गिला—सब कुछ वही...ओह, कितना दर्द !

“उसके छोटे दांतोंमें भी ऐसा ही तिनका दबा हुआ था...”

उसने दोनों तिनकोंको आमने-सामने रखकर मिलान किया ; फिर बारी-बारीसे दोनोंको चूमा, आंखमें लगाया और रख दिया—

“दोनों बिल्कुल एक-से ही हैं। वह भी ऐसे ही मुंहमें दबाकर पेड़के तनेकी ओर बढ़ी थी, लेकिन पहुंच न पायी थी। ...मैंने निशाना लिया और गुल्ले छोड़ दी, और मानो मेरी पुरानी आकांक्षाका उपहास करते हुए (“बन्दूकसे तो सब मार सकते हैं ! उसमें रखा ही क्या है। तारीफ तो मेरी तब हो, जब मैं गुल्लेसे...और सो भी एक निशानेमें...पेटके पास...रक्तीभर खूनकी पतली धार वह निकलेगी...सबके मुंहपर मेरी तारीफ...बड़ा मजा आयेगा।...”) मेरा निशाना ठीक जानवरके नीचे लगा...घाव बन गया...रक्तीभर खूनकी पतली धार वह निकली और जब तक मैं विजय और खुशीके आवेशमें झूलता हुआ उस तक जाऊं, वह मर चुकी थी—बिल्कुल वही मौत, जिसकी कि मैंने उसके लिए पापी दिलसे आरजू की थी। हाय ! भगवानने शायद तभीसे मेरे लिए सजाओंका आयोजन कर दिया था !

“गया तो मैं दौड़ा हुआ उस तक अपनी फतहपर झूमनेके लिए ही था, लेकिन हाय, जो तड़पता और कलेजेको वेदद नाखूनोंसे भंभोड़ता हुआ दृश्य देखा, उसने मुझे कहींसे कहीं ला पटक। आंखें पथरा गयी थीं—उनकी वह चमक-दमक और वह आव तो मुझे सपनेकी याद दिलाने लगी; जो सच था, वह सिर्फ इतना कि वे दीदार पथरा गये थे...और उसके साथ मैं भी; उसका जिस्म वर्फकी तरह ठण्डा था। कोई उस वक्त अगर मुझे छूता, तो मेरे बारेमें भी शायद वह यही कहता। लेकिन ये तो बेबातकी बातें हुईं। ...उस दिन भी ऐसे ही पाक और सुहावना दिन था और मैंने खूब-रेजो की। ...कौन जाने, इसका सवाब मुझे कब मिलेगा। लेकिन मुझे याद है, मैंने गुल्ले तोड़कर फेंक दी थी, अपने कांपते हाथोंसे

गिलहरीको बड़े प्यारसे उठाया था, और उन्हीं कांपते हाथों-से तीन हाथ गहरा गड्ढा खोदा था और उसमें उस गिलहरीको छलाकर ऊपरसे मिट्टी फैला दी थी। और मुझे याद है, कुछ दिनों बाद उसपर हरियाली भी कसरतसे उग आयी थी...लेकिन हाथ, मेरे सीनेकी उस मजारपर तो हरियालीका एक रेशा भी आज तक पूरी तरह न उगा..."

उसके आंसू बहते-बहते कब सूख गये थे, उसे नहीं मालूम; पर मालूम होता था कि उन्होंने भी भरसक कोई कसर न उठा रखी थी, क्योंकि उसके सामने पड़ी हुई रुई पानीसे भारी हो गयी थी।

और मानो अपनेको और सबको समझाते हुए उसने अपने चिन्तनको इस तरह समाप्त किया :—

“और आज पच्चीस वर्षोंके बाद भी मेरे अन्दर वह आवाज उसी तरह उठती है, जैसी कि पहली बार उठी थी... ‘क्या हुआ ! बस एक गिलहरी ही तो थी ...’ लेकिन उसका वैसा ही मुंहतोड़ जवाब आज भी मौजूद है—‘क्यों न आदमीके गलेपर छुरी रेत दी जाय और इतनी ही मासूमियत और इतने ही भोले अन्दाजसे इतराकर कह दिया जाय—‘क्या हुआ ? बस एक आदमी ही तो था...’।”

“मालूम नहीं, यह कब तककी तपिश है—बेरहम और बेनियाज !”

और उसने उस डिब्बेमें एक तिनकेके सङ्ग दूसरा भी रखते हुए दोनोंको बहुत बेचैनीसे लबोंपर, फिर आंखोंपर लगा लिया !

गीत

तुम कौन ?—कुसुम-बन्धन लेकर, कर रहीं मुझे निजमें विलीन।

मेरे जीवनमें उतर पड़ीं,
तुम राशि-राशि उल्लास लिये ;
यह छविकी सरिता उमड़ पड़ी—
नयनोंको आकुल प्यास दिये ;

तुमसे युग-युगका परिचय है, पर सजनि, मुझे तुम चिर-नवीन।

तुममें सपने साकार हुए,
उरकी प्रतिध्वनि-सी बोल उठी,
कल्पना - लोककी रूप-राशि,
हंस-हंसकर तुममें डोल उठी,

अपनी आभापर जांच रहीं—तारक-दल, शशिको बीन-बीन।

मेरे प्राणोंका लघु प्रसून,
बन लता, छिपा निज अञ्जलमें ;
तुम लुटा-लुटा मुसकान-छुरभि—
मादक कर देतीं फल-फलमें,

तुम चिर-वसन्त ले आ बरसीं—नन्दन-बनकी छवि छीन-छीन।

हो उठा मंदिर प्रति रोम-रोम,
छूकर श्वासोंकी मलय-वात ;
जीवनका कण-कण राग भरा,—
अब स्वर्ण-दिवस औ' रजत रात ;

किस वाणीकी मधुतासे धुल—हो गयी मधुर यह प्राण-बीन।

हम प्रणय-सिन्धुकी दो लहरें,
जीवन-तटपर मिल एक हुईं ;
जग हमें देखता रहा सजग—
फिर फलमें विलग, अनेक हुईं ;

हम धूप-छाँहसे सहज मिले—रह गया देखता विश्व दीन।

तुम कौन ? कुसुम-बन्धन लेकर—कर रहीं मुझे निजमें विलीन।

—नर्मदाप्रसाद खरे।

विदेशी लेखक और प्रकाशक

श्री व्योहार राजेन्द्रसिंह, एम० एल० ए०

हिन्दी लेखकोंको उनकी रचनाओंपर पुरस्कारकी जो रकमें मिलती हैं, उनका पता तो प्रायः सभीको है, और इस सम्बन्धमें बराबर पत्रोंमें चर्चा होती ही रहती है। अतः विदेशी लेखक अपनी लेखनीसे कितना कमाते हैं, इसके दो-एक उदाहरण इस लेखमें मैं देना चाहता हूँ।

इंगलैण्डके प्रसिद्ध पत्र 'डेली न्यूज' के सम्पादक श्री टाम क्लार्कने अभी हालही में एक पुस्तक लिखी है, उसमें उन्होंने बर्नार्ड शाकी पुस्तकको प्रकाशनके लिए प्राप्त करनेमें जो विफलता पायी, उसका उल्लेख किया है। उनसे भेंट करनेके लिए पहले उन्होंने अपने साथीको भेजा। शाने उन्हें बतलाया कि जब वे २४ वर्षके थे, तब उन्होंने "Immaturity" नामक उपन्यास लिखा था। उस समय उन्होंने सभी प्रकाशकोंके द्वार खट-खटाये थे, किन्तु सभीने उसे प्रकाशन करनेसे इनकार कर दिया था। अब ५० वर्ष बाद इसी पुस्तकको अपने पत्रमें प्रकाशित करनेके लिए 'डेली न्यूज' के सम्पादक उत्तुह हो उठे। इसके सम्बन्धमें लेखक और प्रकाशकमें जो बातचीत हुई, वह इस प्रकार है :—

बर्नार्ड शा—मैं समझता हूँ, आप उसे 'डेली न्यूज' के लिए चाहते हैं।

टाम क्लार्क—जी हाँ, मैं उसे धारावाहिक रूपमें प्रकाशित करना चाहता हूँ।

शा—वह आपको नहीं मिल सकती।

टाम—यह तो बिलकुल साफ इनकार है! "एपिल कार्ट" के सम्बन्धमें हमारा-आपका जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह आपको याद होगा।

शा—जी हाँ!

टाम—मैंने समझा था कि उस समय आपने मुझे निराश कर दिया था; किन्तु इस पुस्तकके सम्बन्धमें अवसर देंगे।

शा—मैं नहीं कह सकता। मैं अपना वचन दूसरेको दे चुका हूँ। फिर डेली न्यूज सिर्फ समाचार चाहता है। मेरे उपन्यासमें कोई समाचार तो है नहीं! उसमें सब पुरानी खबरें हैं।

टाम—वह एक बड़ी साहित्यिक घटना होगी। आप जो कुछ भी करते हैं, वह सब समाचार ही तो है। आप जानते हैं कि आप उन लोगोंमेंसे हैं कि जिनकी चर्चा संसारमें अधिक होती है।

शा—मैं जानता हूँ। मगर आप क्या समझते हैं, मैं उसके लिए क्या मांगूंगा?

टाम—आप ही बतलाइये!

शा—क्या आप पचास हजार पौण्ड लाये हैं?

मैं—यह तो मजाक है!

शा—अच्छा तो मेरी क्या कीमत है?—पांच पौण्ड?

मैं—यह और भी मजाक है! मान लीजिये, हम लोग एक हजार पौण्डसे शुरू करें।

(इस समय मुझे वह बात यादआयी, जब मैंने उन्हें जिनेवाके राष्ट्रसङ्घमें जाकर अपने पत्रके लिए वहांकी कार्य-वाहीके विषयमें एक लेख लिखनेको कहा था। उन्होंने तार द्वारा उत्तर दिया था, "आप क्या देंगे? मुझे दूसरी जगहसे पच्चीस सौ पौण्ड मिल रहे हैं।" मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरे ही दिन रायटरने उनसे फी पत्र पीछे पांच पौण्ड तय कर लिये थे।)

शा—मुझे प्रसन्नता है कि डेली न्यूज जानता है कि मुझे काफी रकम देनी पड़ती है।

टाम—आप यह न समझें कि हम लोगोंके पास खजाने भरे पड़े हैं।

शा—मैं नहीं समझ पाता कि जो कुछ मैं लिखता हूँ, उसे आप लोग क्यों धारावाहिक रूपसे छापना चाहते हैं।

अगर आप मेरे इस उपन्यासको छापेंगे, तो दिवालिये हो जावेंगे।

मैं—यह बात नहीं है। इससे हम लोगोंको बहुत लाभ होगा। अब पत्रकार-व्यवसाय वह नहीं रहा, जो पहले था। अब हमें बहुत सङ्घर्ष करना पड़ता है।

शा—यह सच है। इस पत्रने बहुत उद्योग और क्रियाशीलता बतलायी है।

मैं—यह तो प्रारम्भिक काल है। हमारे सामने तो बहुत-सी कठिनाइयाँ हैं।

शा—मैं सहमत हूँ।

मैं—जनताके पत्रके नाते हम अपने किसी भी प्रतिद्वन्द्वीसे बराबरी कर सकते हैं। किन्तु हमारी विशेषता दूसरी ही है और यहीं आपकी जरूरत है। साहित्य-पुस्तकों और लेखकोंके विषयमें हमारी एक विशेष स्थिति है। समाचारोंसे हमने काफी कमाया, अब हमें साहित्यकी जरूरत है। आपकी पुस्तक हमको बना देगी। इस साल हमारी स्थिति बहुत खराब है।

शा—इस साल क्यों ?

मैं—“डेली हेरेल्ड” नये रङ्ग-ढङ्गसे जो निकलने लगा है ! वह हमारे लिए बड़ी प्रतियोगिता है।

शा—मैं समझता हूँ कि मुझे हेरेल्डकी मदद करना चाहिए। मैं तो समाजवादी हूँ।

मैं—पर उसने तो आपकी सहायता मांगी ही नहीं। फिर “डेली क्रानिकल” भी तो है।

शा—क्या वह पत्र अब भी जीवित है ? मैं समझता हूँ, मेरे उपन्यास या नाटक छापनेसे आपको कोई लाभ न होगा। आपको तो केवल समाचार चाहिए और फिर मेरा वचन मुझे रोकता है।

इसके बाद हडसनने कहा कि इनके पुराने उपन्यासों की को ले लिया जाय, जिन्हें किसीने नहीं पढ़ा। पर शा पिघलने-वाले नहीं। फिर हडसनने प्रार्थना की कि वे सिनेमाके सम्बन्धमें ही कुछ लेख लिख दें, पर फिर भी कोई सफलता नहीं। शाने कहा—“आफत यह है कि यदि वे कोई चीज एक पत्रमें लिखें, तो दूसरे पत्र उसीको दुहरानेके लिए उसके पीछे पड़ जाते हैं।” उन्होंने यह भी बताया कि “एक समय वह भी था, जब कि पत्रोंके सम्पादक मेरा नाम तक लेनेमें डरते थे। डेलीमेल मेरा कोई भी लेख नहीं छाप सकता; क्योंकि नार्थ क्लिफने मुझ सरीखे “निन्दित समाजवादी” का विज्ञापन करनेसे मना कर दिया था।”

जाते समय शाने हमारे ‘आफर’के लिए धन्यवाद देते हुए बिदा दी। मैंने ठण्डी सांस लेकर अपने साथीसे कहा, “चलो चलो हडसन, हम लोग हार गये।”

इसी पुस्तकमें एक दूसरी जगह लायड जार्जसे भी इन महा-शयको जो निराशा हुई, उसका बड़े मनोरञ्जक ढङ्गसे वर्णन किया गया है। उसका संक्षेपमें यहां उल्लेख कर देना आवश्यक है :—

“मैं लायड जार्जके ‘संस्मरण’के पीछे पड़ा था। मैं उसे अपने पत्रमें छापना चाहता था; किन्तु मछली जालमें फँसती ही न थी। एक जगह गोलेंस (एक प्रकाशक) से भेंट हो गयी। वह भी लायड जार्ज और उनकी पुस्तकके विषयमें हाथ पटककर क्रोध निकाल रहा था। मैं उसे कोई भी कीमत देकर अपने पत्रमें छापनेके लिए उत्सुक था। किसी दूसरे पत्रको इसे छापनेका सौभाग्य नहीं देना चाहता था। लार्ड काउण्ड्रे, जोकि अपनेसे अधिक योग्य आदमियोंको प्रकाशमें नहीं आने देना चाहते थे, उन्होंने इस पुस्तकको लेनेसे साफ इनकार कर दिया। मैं उनके व्यक्तिगत द्वेषको अपने व्यापारके बीचमें बाधक न होने देना चाहता था। और इसलिए लड़-झगड़कर पांच हजार पौण्डकी स्वीकृति ले ही ली। इस प्रकार अस्त्र-शस्त्रोंको लेकर मैंने लायड जार्जपर चढ़ाई कर दी; यद्यपि मैं अपनी टूटी-फूटी बन्दूकसे स्वयं ही लज्जित था और मनमें समझता था कि उससे निशाना न जमेगा। लायड जार्जसे मिलते ही उन्होंने एकदम कह दिया कि वे डेली टेलीग्राफसे वचनबद्ध हो चुके हैं। अपनी मोटी उंगली हिलाते हुए उन्होंने कहा कि यह नैतिक बन्धन उन्हें कोई भी दूसरा सौदा करनेसे रोकता है। तब मैंने अपनी पांच हजारवाली बन्दूक चलायी; किन्तु उन्होंने तुरन्त ही विषय बदल दिया और मैं निराश लौटा। बादमें लार्ड काउण्ड्रे ने हंसते हुए मुझे साधुवाद दिया कि भाग्यसे इतने बड़े नुकसानसे पत्रकी रक्षा हो गयी। किन्तु अब भी मैं समझता हूँ कि अपने प्रतिद्वन्द्वी डेली टेलीग्राफको पच्चीस हजार पौण्डमें वह पुस्तक लेने देकर हमने बड़ी भारी गलती की। उस पत्रने अपना प्रचार बढ़ाकर कहीं अधिक लाभ उठा लिया।”

उक्त अवतरणोंसे सिद्ध होता है कि विदेशी लेखकों और पत्रकारोंका सम्बन्ध हमारे यहांसे बिल्कुल विपरीत है। वहांके पत्र उदार याचक और लेखक स्वाभिमान की दाताकी स्थितिमें हैं, जबकि हमारे यहांके लेखक दीन-हीन याचक और पत्र दर्पपूर्ण दाताकी पदवीपर आसीन हैं। ये सब बातें हमारे यहां आनेमें अभी देर है। और इसीके अनुसार हमारी साहित्यिक उन्नतिमें भी विलम्ब है।

विवाह और युवकोंकी आर्थिक स्वतन्त्रता

श्री प्रेमनारायण अग्रवाल, एम० ए०

जीवन-संग्राममें सफलता प्राप्त करना अब उतना आसान नहीं रहा, जितना कि कुछ वर्ष पहले था और आगे आनेवाली पीढ़ियोंके लिए यह और भी अधिक कठिन कार्य होता जा रहा है। संसारके सभी देशोंमें यह हाल है। भारतकी परिस्थिति अन्य देशोंके मुकाबिलेमें अधिक चिन्ता-जनक है। यहांके युवकोंका जीवन अधिक सहृदय है और इसके अनेक कारण हैं। सफलता प्राप्त करना या जीवनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति होना तो अलग रहा, उनके सामने सबसे कठिन समस्या एक वक्त सम्मान-सहित भोजन प्राप्त करनेकी ही उपस्थित है। आर्थिक चिन्ताओंके कारण यदि वे देश, समाज या जातिके प्रति अपने कर्तव्यको भूल-सा जावें, तो हमें एकदम सारा दोष उनके ही मथ्ये न मढ़ देना चाहिए। वरन् उनकी दिक्कोंको समझकर उनको दूर करनेके लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। क्योंकि युवकोंपर देशका भविष्य निर्भर है और उनके साथ सहानुभूतिपूर्वक बर्ताव करनेमें ही सबका कल्याण है।

विवाहका प्रश्न — किशोरावस्थाको पार कर जब कोई युवावस्थाके नजदीक पहुंचता है, तो अनेक प्रश्नोंके साथ-साथ उसके विवाहका प्रश्न भी सामने आने लगता है। युवक भी एक जीवन-सहचरीकी आवश्यकता महसूस करता है और उसके माता-पिताको भी एक ऐसा साथी ढूँढ़ देनेकी फिक्र होती है।

विवाह एक स्वाभाविक तथा सामाजिक बन्धन है, जिसकी आवश्यकता सदासे रहती खली आयी है। संसारके सभी कामोंको सुचारु रूपसे चलानेके लिए तथा युवक-युवतियोंके व्यक्तित्वके विकासके लिए हमारे पूर्वजोंने इस संस्कारकी स्थापना की थी। विवाहके महत्त्व तथा आवश्यकतापर कुछ लिख लेखका कलेवर बढ़ानेसे कोई लाभ नहीं है, क्योंकि इन बातोंसे सभी परिचित हैं। कुछ कारणोंसे, जिनकी सृष्टि अभी हाल ही में हुई है, कुछ लोग विवाहके महत्त्वको माननेसे इनकार करने लगे हैं, पर अभी ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत कम है। जो लोग इसके हानि-लाभको नहीं मानते, वे

शायद आजन्म अविवाहित रहना पसन्द करें। परन्तु अब ऐसे लोगोंकी संख्या दिनपर दिन बढ़ रही है, जो विवाहके महत्त्वको मानते हैं, जो विवाह करनेके पक्षपाती हैं, जो विवाह करना चाहते हैं, फिर भी किन्हीं कारणोंसे इस पवित्र तथा आवश्यक बन्धनमें बंधना वे स्थगित करते चले जाते हैं। अगर उनके रास्तेमें ये दिक्कतें न हों, तो वे अवश्य ही शीघ्रसे शीघ्र इस सम्बन्धमें आवद्ध हो जावें। ऐसे लोगोंकी सबसे बड़ी दिक्कत होती है धन-सम्बन्धी। उनके दिमागमें यह प्रश्न उठता है कि क्या वे इतना कमा लेते हैं कि उसमें स्वयं खाने-पीनेके साथ एक औरको हिस्सा दे सकें। उसे आरामसे रख सकें। उनमें यह ख्याल दिन-प्रति-दिन जोर पकड़ता जा रहा है कि विवाहके लिए युवकोंकी आर्थिक स्वतन्त्रता बहुत जरूरी है।

युवकोंके इस सन्देहका निवारण होना बहुत जरूरी है, ताकि वे विवाहसे दूर न भागें और समाजके कारोबार आसानीसे चलते रहें। यदि यही भावना सबमें जोर पकड़ गयी, तो इससे समाजका भारी अहित हो सकता है।

आर्थिक स्वतन्त्रता — हमारी रायमें युवकोंके लिए आर्थिक रूपसे स्वतन्त्र होनेकी इस समय जरूरत नहीं है और न यह ऐसा प्रश्न है, जिसके कारण वे इतने घबड़ावें और विवाह-सूत्रमें न बंधकर अपनेको व्यर्थमें परेशान होने दें। यह प्रश्न तो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, पर प्रत्येक युवकके सामने प्रत्येक समय यह न होना चाहिए। यदि किसी युवकके लिए उसकी विशेष परिस्थितिके कारण यह प्रश्न बहुत गम्भीर है, तो सभीके लिए नहीं हो सकता। फिर प्रत्येक बातका समय भी होता है। एक समय ऐसा आता है, जब प्रत्येक युवकको इस प्रश्नको सुलझाना अनिवार्य है और यह उचित ही है। कोई भी युवक जिन्दगी-भर माता-पितापर निर्भर नहीं रह सकता और न उसके माता-पिता अमर होकर ही आये हैं, जो अपने बच्चोंको जिन्दगी-भर आर्थिक चिन्ताओंसे दूर करते रहेंगे।

पाश्चात्य सभ्यताका प्रभाव — आर्थिक स्वतन्त्रताका प्रश्न समाजमें किसी न किसी रूपमें सदैवसे रहा है। पर

वर्तमान रूपमें सम्भवतः यह पहले कभी उपस्थित नहीं हुआ। पाश्चात्य सभ्यताके प्रभावसे यहां भी यह प्रश्न भीषण रूपसे उपस्थित हो सका है। उन देशोंमें आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना आसान है। वहां तभी विवाह-सम्बन्ध हुआ करते हैं, जब दम्पति स्वयं अपने व्ययको संभालनेके योग्य होंगे। लेकिन वहांकी बात अलग है; वहांके समाजका ढांचा ही दूसरे तरीकेका है। वहांकी बातें यहां तब तक लागू नहीं हो सकतीं, जब तक भारतका भी समाज ठीक उसी प्रकार सङ्गठित न हो जाय। ऐसा होना असम्भव ही दीख पड़ता है, क्योंकि प्रत्येक देशकी अपनी-अपनी सभ्यता होती है और वह उसके लिए उपयुक्त भी होती है। एक देशकी बातें दूसरे देशके हितोंके अनुकूल नहीं हो सकती हैं और न होनी ही चाहिए। संसारमें विभिन्नताका रहना स्वाभाविक है।

भारतीय ढङ्ग— भारतकी सारी परिस्थिति भिन्न है— यहां सम्मिलित कुटुम्बका प्रचार है। युवकों-युवतियोंके सम्बन्ध प्रायः उनके अभिभावकों द्वारा निश्चय किये जाते हैं। वे इनको बहुत दिनों तक आर्थिक सहायता देते हैं। उनको दुनियाके सङ्घर्षमय जीवनमें खेल खेलनेका पूरा मौका रहता है। उनकी नयी-नयी जिम्मेदारियोंका भार इस समय उनके माता-पिताओंपर होता है, जो उन्हें यह स्वतन्त्रता देना अपना फर्ज समझते हैं।

आर्थिक स्वतन्त्रताका प्रश्न सबके लिए नहीं है— यहां आर्थिक स्वतन्त्रताका प्रश्न सबके सामने प्रस्तुत नहीं होता। जो युवक नौकरियां पसन्द करते हैं, उन्हें प्रायः शिक्षा समाप्त करनेके बाद ही ये कहीं न कहीं ढूँढ़ लेनी पड़ती हैं और एक बार उनके मिल जानेपर उनके जीवनका सङ्घर्ष बहुत कुछ कम हो जाता है और उनका जीवन शान्तिमय बन जाता है। नौकरीके लगते ही वे शादी कर लेते हैं या पढ़ना छोड़नेके बाद ही। कभी ऐसा भी होता है कि इनकी शादी शिक्षण-कालमें ही कर दी जाती है। पर इन लोगोंको अधिक दिक्कतें नहीं उठानी पड़तीं। थोड़े समय तक भले हा कुछ आपत्तियां आयें, जब वे नौकरियोंके ढूँढ़नेमें लगे होते हैं।

साहसी युवक और उनकी कठिनाइयां— असली दिक्कतें उनके सामने होती हैं, जिनका जीवनमें उद्देश्य केवल रुपया कमाना नहीं होता, जो नौकरी करके अपनी आत्मा-

को, अपने अस्तित्वको, अपने स्वतन्त्र विचारोंको खो देना नहीं चाहते हैं, जिनके जीवनमें कुछ कर मिटनेकी साध होती है, जो कुछ बनना चाहते हैं, जो महत्वाकांक्षी होते हैं। ये लोग अधिक साहसी होते हैं और उन कामोंको चुनते हैं, जिनमें सङ्घर्ष अधिक होता है, जिनको प्राप्त करनेके लिए उन्हें कसौटीपर खरा उतरना पड़ता है। ऐसा वे स्वयं जानबूझकर अपनी साहसिक प्रवृत्तिके कारण ही करते हैं। इनके सामने आर्थिक स्वतन्त्रताका प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। अगर गौरसे देखा जाय, तो यही वे व्यक्ति होते हैं, जो देशके लिए सबसे अधिक लाभदायक सिद्ध होते हैं। समय पाकर किसी न किसी क्षेत्रमें ये चमक उठते हैं और देश उनपर गौरव करता है। इस सबमें देरी लगती है और यह समय उनका परीक्षण-काल होता है। इस समय उनको जीवन-संग्रामकी घमासान लड़ाई करनी पड़ती है। यह सबसे कठिन समय होता है। इस समय उनको अपनेमें जो सर्वोत्तम है, उसे दिखलाना पड़ता है।

इनकी कार्यप्रणाली— शिक्षण-काल समाप्त करके ऐसे लोगोंको कुछ समय तक अपने लिए कोई स्थान चुनने-बनानेमें लगता है। ये एकदम कमाने नहीं लग जाते और न उनका यह उद्देश्य ही होता है। वे तो अपनी योजनाओंकी सफलताके लिए कार्य करते हैं; उसके लिए आवश्यक त्याग करते हैं, निकट भविष्यकी उनको परवाह नहीं होती। उन्हें तो अन्तिम सफलता चाहिए। यह समय तो प्रायः लम्बा होता है, उसमें दो-तीन सालसे लगाकर दस साल तक ला सकते हैं। अक्सर युवक लोग २४-२५ वर्षकी अवस्थामें शिक्षा समाप्त कर देते हैं। दो-एक वर्ष उनके काम चुननेमें और दो-चार वर्ष उसमें जमनेमें लगते हैं। इस प्रकार करीब तीस वर्षकी आयु तक वे किसी कामको करने योग्य होते हैं और उसमें इतना कमा सकते हैं, जो मुश्किलसे उनकी अपनी अकेली आवश्यकताओंको भी पूरा कर सके। तीससे चालीस तक उनके सङ्घर्षका समय है, जिसमें उनको अपने पेशोंमें सफलता प्राप्त करनेके लिए जी-जानसे कोशिश करनी पड़ती है। तब कहीं उन्हें कुछ अनुभव होता है, उनका कुछ नाम होता है और बादमें इस परिश्रमका परिणाम निकलता है, अर्थात् वे खूब कमा सकते हैं। उनका अच्छी खासी आमदनीका समय अब शुरू होता है।

सफल व्यक्ति—अगर हम अपने देशके सफल व्यक्तियोंके जीवनका अध्ययन करेंगे, तो हमें यह बात स्पष्ट मालूम पड़े जायगी कि उनके खूब कमानेका समय इस अवस्थाके बाद ही आता है। इसके बाद वे जितना हो, धन-धान्य-यश आदि कमा सकते हैं। यहाँ यह बात याद रखनी चाहिए कि ये बातें उन्हींके साथ घटती हैं, जो अपने पैरोंपर खड़े होकर महान् होते हैं, जो स्वयं अपने पुरुषार्थके बलपर कुछ होते हैं। उन लोगोंको हम इस श्रेणीमें शामिल नहीं करते, जो बाप-दादोंके प्रभावसे या अन्य किसीके पीठ डोंक दिये जानेसे जल्दी सफलता प्राप्त करने लगते हैं। पर ऐसे लोग थोड़े ही होते हैं। अधिकांश लोग वही होते हैं, जो स्वयं कुछ बनते हैं।

साहसी युवक क्या करें—इस प्रकारके लोगोंके लिए—और उनकी संख्या ही अधिक होती है, क्योंकि नौकरियाँ आदि करनेवाले थोड़े-से ही व्यक्ति होते हैं, अधिकतर लोग स्वतन्त्र पेशे ही करते हैं—कुछ जान-बूझकर और कुछ मजबूरीसे यह प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण है। ये लोग यदि आर्थिक स्वतन्त्रताके लिए इन्तजार करें, तो कब शादी करें। इनकी युवावस्था जब ढल जाय, तब कहीं ये शादी करनेके काबिल हो सकते हैं। तब तक इनको क्या करना चाहिए और अगर शिक्षण-काल समाप्त होनेसे पहले ही उनके ऊपर शादीकी जिम्मेदारियोंका भार लाद दिया जाय, तब तो उनकी जिन्दगी ही कठिन हो जाय।

समाजकी सहायता—समाजने इस बातको समझा है और इसका प्रबन्ध भी किया है। यह कोई नवीन बात नहीं है। यह तो ऐसा मालूम पड़ता है, पुराने जमानेमें भी किसी न किसी रूपसे विद्यमान थी, तभी इसका इलाज किया गया था। सामाजिक व्यवस्था कायम रखनेके लिए यह जरूरी है कि उचित समयपर उनकी शादी हो जाय। इसके अतिरिक्त वह ऐसे युवकोंके लिए कितने ही दृष्टिकोणोंसे लाभदायक भी सिद्ध होती थी। समाजने उनको अविवाहित रखना स्वीकार नहीं किया। उसकी रायमें युवक-युवतियोंकी उचित अवस्थामें शादी होना अधिक आवश्यक तथा उपयोगी था। इसीलिए उसने उसको प्रधानता दी और बादमें सामने आनेवाली दिक्कतोंको दूर करनेके लिए दूसरे-दूसरे सामाजिक नियम-कायदे बनाये। अगर उसने अविवाहित रहना ठीक समझा होता, तो सामाजिक बन्धन किसी दूसरे प्रकारसे ही निर्माण

किये गये होते। वर्तमान नियम-कायदोंको समझनेसे यही पता चलता है कि शादीका होना एक उचित अवस्थापर आवश्यक माना गया था। ये बातें थीं जनसाधारणके लिए। उनके लिए नहीं, जो अपवाद होते हैं। संसारमें सदासे प्रत्येक बातमें अपवाद होते ही गये हैं। दुनियाके नियम-कायदोंको उन्होंने कभी न माना और न वह वास्तवमें उनके लिए बनाये ही जाते हैं। उनका लक्ष्य होता है अधिकांश जनता। जो लोग विवाह नहीं करना चाहते हैं, जो आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करना चाहते हैं, उन्हें इन बन्धनोंमें पड़नेके लिए कोई बाध्य नहीं कर सकता। यह तो उनके लिए है और उनका इसमें बंधना जरूरी है, जो विवाहकी आवश्यकता महसूस करते हैं, जिनके लिए विवाह आवश्यक है, जो कभी न कभी परिस्थितिमें होनेपर विवाह करेंगे ही, जो किन्हीं खास दिक्कतोंके कारण अभी उसे दूर रखना चाहते हैं। इस प्रकारके लोगोंके अविवाहित रहनेसे समाजको खतरा है, अतएव उनकी दिक्कतोंको दूर करनेका इसने सदासे प्रयत्न किया है। इन दिक्कतोंमें सबसे बड़ी दिक्कत होती है आर्थिक स्वतन्त्रताकी। इसी बातको अनुभव करके हमारे पुरुषाओं-ने उसको बड़ी दूरदर्शितापूर्ण दृष्टिसे सुलझाया था। उनका समस्याओंको सुलझानेका ढङ्ग इस बदले हुए जमानेमें भी बहुत उपयोगी है। अगर उसमें कोई खराबी आ गयी, तो उसके जिम्मेदार हम ही हैं। हमने उसके रूपको बिगाड़ दिया। उसका असली मतलब तथा रूप ऐसा खराब न था। वह तो सबकी सुविधाका खयाल करके सबके लाभके लिए बनाया गया था। उन्होंने जब उसे बनाया था, तब किसी खास समाजके अङ्गको लाभ पहुंचानेके लिए नहीं बनाया था। उन्हें सभीका भला मजबूर था, किसी खासको यह रियायत उन्हें क्यों पसन्द आने लगी।

दहेजका प्रचार क्यों हुआ—दहेजकी प्रथाका चलाना इसी दिक्कतपर कुठाराघात करनेके लिए था। दहेजने आजकल विकृत रूप धारण कर लिया है। हम उसकी असली मंशाको भूल गये हैं। इस रिवाजको हमने राक्षसी बना डाला है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि इसे मेटनेके लिए कुछ लोग जी-जानसे कोशिश कर रहे हैं। इसे रोकनेके लिए व्यवस्थापिका सभाओंमें प्रस्ताव, बिल आदि भी पेश किये जा रहे हैं। इसके खिलाफ जबरदस्त आन्दोलन किया जा रहा है, फिर भी

इसके घटनेके आसार नजर नहीं आते। जो इसके विरोधी हैं, जो इसकी निन्दामें लम्बी-लम्बी स्पीचें झाड़नेसे नहीं चूकते, जो इसे मेटनेका दम भरते हैं, वे ही समयपर इसके शिकार नजर आते हैं। इसकी जड़ बहुत गहरी गड़ी है और वह भी रुपयेमें, जिसकी प्रत्येकको आवश्यकता होती है। रुपयेने संसारमें क्या नहीं किया है। देहेजमें मिलनेवाले इसी रुपयेको छोड़ देना आसान काम नहीं है। एक-दो आदमी आत्म-त्याग दिखावें और इसके लालचमें न भी फँसें, पर अधिकांश जनता तो इस प्रकार छोड़नेको राजी न होगी। हमारे ख्यालसे तो इस प्रथाको नेस्तनाबूद करना असम्भव-सा है। यही नहीं, इस समय इस प्रथाको जारी रखनेकी भी जरूरत मालूम होती है। इतनी जरूरत, जितनी शायद पहले कभी न रही हो—जब कायम की गयी थी तब भी। भारतकी वर्तमान परिस्थितियोंको हम उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देख सकते। वह इस प्रथाको प्रोत्साहित करती दिखलाई पड़ती है।

देशकी इन परिस्थितियोंने युवकोंके जीवनको अधिक सङ्घर्षमय बना दिया है। इनकी दिक्कतें सैकड़ों गुना बढ़ गयी हैं। कशमकश अब हृद दजेंकी हो गयी है और बढ़ती ही जा रही है। उनके लिए रुपया कमानेका प्रश्न अत्यन्त कठिन हो रहा है। अधिक कमानेकी बात नहीं, भर-पेट खाने लायक कमाना भी मुश्किल है। इस समय तो उन लोगोंकी ही पूछ होती है—चाहे वह नौकरियाँ हों, सरकारी या अर्द्धसरकारी, या और कोई कार्य—जो सफ़ारिश करवा सकते हैं, जिनके प्रभावशाली रिश्तेदार हैं और जो आत्म-सम्मानकी भावना खो चुके हैं। रुपया भी बहुत महंगा हो गया है। पूंजीपति अपने कार्यकर्ताओंका कचूर निकाल कर भी उचित तनख्वाह नहीं देना चाहते हैं। साधारण श्रेणीके युवकोंकी कठिनाइयाँ इन कारणोंसे कितनी बढ़ गयी हैं, इसका अन्दाज भुक्तभोगी या सहृदय पाठक ही कर सकते हैं।

विवाह भार हलका करता है—अब जरा इसपर गौर कीजिये कि देहेज युवकोंकी इन दिक्कतोंको कितनी सुन्दरता-पूर्वक छलझाता है। विवाहके समय युवक-युवतियोंके सामने ये दो प्रश्न उपस्थित होते हैं कि वे संयुक्त परिवारमें रहेंगे या अलग। देहेज देनेवालोंकी निगाहसे यह बात ओझल नहीं होती। उन्होंने दोनों बातोंको ध्यानमें रखकर यह प्रथा

चलायी। लड़की तथा लड़के दोनोंके मात-पिताओंका कर्तव्य बनाया कि वे नये दम्पतिके रास्तेके रोड़ोंको हटाने और उनका मार्ग सरल बनानेमें सहायक हों। अभी तक लड़केके भविष्यमें दिलचस्पी रखनेवाला, उसकी खैर-खबरकी परवाह करनेवाला केवल उसका पिता होता था, शादीके बाद कन्याका पिता भी हो जाता है और साथमें कन्याके पक्षवाले अन्य नाते-रिश्तेदार। दम्पतिकी सफलता चाहने-वालोंकी संख्या बढ़ जाती है और ये लोग उनकी सहायता भी करते हैं। इस प्रकार पाठक देखेंगे कि जीवन-संग्राममें प्रवेश करनेके लिए विवाह बाधक नहीं, हितकारी सिद्ध होता है। उसकी पत्नी भी उसकी सहायता ही करती है। इन दोनोंको अपना नया संसार अपने मन मुताबिक बनानेकी स्वतन्त्रता होती है और उसमें सहायता करनेवाले दोनों पक्षके होते हैं। विवाहमें इसकी जड़ बोयी जाती है। दोनों पक्षोंको एक-दूसरेका ख्याल करना पड़ता है। कन्याका पिता वरकी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए कुछ उठा नहीं रखता और वरका पिता कन्याकी। वरका पिता कन्याको कपड़े-लत्तों, आभूषणों आदिसे सुसज्जित कर देता है और कन्याका पिता वरके लिए नयी गृहस्थीका सारा सामान प्रस्तुत करता है। यह सामान समय-समयपर दिया जाता है और इतना होता है कि वर-कन्या अगर और कुछ न करें और सिर्फ उसीपर निर्भर रहें, तो दो-तीन साल तक काट सकते हैं। वास्तवमें यह उनको दिया ही इसलिए जाता है, ताकि इस सामग्रीके कारण उन्हें तत्काल ही कमानेकी चिन्ता न हो, वरन् वे जीवन अच्छे ढङ्गसे शुरू कर सकें। इसका अभिप्राय यही होता है कि वे अपने नये जीवनकी तैयारी अच्छी तरहसे कर सकें। विवाहके बाद भी दम्पतिको दोनों पक्षोंसे कुछ न कुछ मिलता रहता है, ताकि उनका जीवन नवीन जिम्मेदारियोंके कारण भार-स्वरूप न हो जाय। इनको हलका करनेके लिए दोनों पक्ष, उनके रिश्तेदार आदि बराबर दोनोंकी जिन्दगी-भर और बादमें भी सहायता करते रहते हैं। यह सहायता उनकी अपनी सामर्थ्यके अनुसार होती है और समयानुसार आवश्यकता होनेपर दम्पतिको मिलती रहती है—बिना मांगे।

देहेजकी आवश्यकता—यदि हम विवाहके समयके रीति-रिवाजोंकी इस दृष्टिसे जांच-पड़ताल करें, तो हमें देहेजकी प्रथा इतनी अच्छी और बुरी नहीं मालूम पड़ेगी। पुराने

जमानेमें युवक ब्रह्मचर्यसे रहकर जीवन बहुत सादगीसे व्यतीत किया करते थे। विवाहके समय उनको ठाट-बाटसे रहने तथा संसारकी सभी वस्तुओंके उपयोगकी स्वतन्त्रता मिलती थी, शिक्षण-कालमें उनको इन चीजोंसे दूर रहने ही की शिक्षा दी जाती थी। अतएव विवाह पका होनेपर और बादमें उनको अच्छे-अच्छे कपड़े, आवश्यकताका सामान अपने-आप दे दिया जाता था। इसी प्रकार कन्याको जेवर आदि। विवाह होनेके बाद उनको नये परिवारके लिए बर्तन तथा अन्य चीजें मिल जाती थीं। जब इनके प्रथम सन्तान होती है, तब भी उन्हें इस नयी जिम्मेदारीको पूरा करनेकी करीब-करीब सभी आवश्यक चीजें दोनों पक्षसे मिल जाती हैं और उन्हें स्वयं कोई चीज एकत्रित करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके लिए कपड़े आदि इतने मिल जाते हैं, जो वर्षों तकके लिए काफी होते हैं। इसी प्रकार इस दम्पतिकी सन्तानके विवाहके समय कन्या पक्ष-वाले यह सामग्री—जो विवाहमें देनी होती है—जुटानेमें सहायता करते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि एक आदमीपर सारी जिम्मेदारी नहीं लादी जाती है। वरन् उसका भार हलका करनेके लिए कितने ही ऐसे सामाजिक कायदे भारतमें बनाये गये थे, जिससे किसीको कोई दिक्रत न हो और सब काम आसानीसे किये जा सकें। कन्या पक्षवालेका यह फर्ज होता है कि वह कुछ न कुछ हर वक्त अपनी कन्याको देता ही रहे। कोई भी अवसर है, तो उसमें कन्याका हक भी है।

कन्याका पिताकी सम्पत्तिमें अधिकार—सम्भवतः यही कारण था कि उस जमानेमें कन्याओंको पिताकी सम्पत्तिमें कोई हक नहीं दिया गया और न हसकी कोई जरूरत ही थी। इस समय जब कि एक ओर लोग देहेजकी प्रथाको उठा देनेकी कोशिश कर रहे हैं, तो दूसरी ओर यह भी कहते हैं कि कन्याको उसके पिताकी सम्पत्तिमें अधिकार होना चाहिए—इस नवीन बातकी आवश्यकता इसलिए पड़ रही है, क्योंकि हम इसके बराबरकी दूसरी चीजका नामोनिशान मिटाना चाहते हैं। यह एक रिवाजको तोड़कर दूसरा रिवाज कायम करना है। अगर देहेजकी प्रथाको जारी रखने दिया जाय, तो इस नयी बातकी क्यों आवश्यकता पड़े। हिन्दू कानूनकी इस कमीकी ओर इसके कुछ हिमायती बड़े जोरसे उंगली उठाते

हैं। हमारी रायमें यह उनकी स्वयं कमी है कि वे ठीकसे इस प्रश्नको समझते नहीं हैं। यह हिन्दू कानूनकी कमी नहीं है, इसकी आवश्यकता ही नहीं थी। उन्होंने इतना प्रबन्ध किया था दूसरे तरीकेसे और यह तरीका भी अधिक उत्तम था। पिताकी सम्पत्ति उड़ायी जा सकती है और इसके होनेपर भी दम्पतिकी जीवन-यात्रा कठिन बन सकती है और प्रायः बन जाती है। जो लोग खाने-उड़ानेवाले होते हैं, वे अपनी तथा स्त्रीकी, दोनोंकी ही सम्पत्ति स्वाहा कर देते हैं, इसके बाद उनकी जिन्दगी खराब हो जाती है। अपनी जिन्दगी तो वे किसी प्रकार बसर भी कर लेते हैं, पर उस समय उनकी दिक्रतें बहुत बढ़ जाती हैं। जब उन्हें अपनी नयी जिम्मेदारियोंको हलका करनेकी आवश्यकता महसूस होती है, जब उन्हें अपने बच्चोंको पढ़ाने-लिखाने, शादी-ब्याहकी जरूरत होती है, तब वे क्या कर सकते हैं, उनके पास क्या है? सब स्वाहा कर बैठें। कन्याको अपने पितासे कुछ भी सहायताकी उम्मीद करना व्यर्थ; क्योंकि वह तो अपनी सम्पत्तिमें हिस्सा दे चुका, उसके भाई भी क्यों परवाह करें; क्योंकि उसका हिस्सा तो उसे मिल चुका। ऐसे वक्तपर अगर उसे सम्पत्तिमें हिस्सा न मिला होता, तो अधिक लाभदायक सिद्ध होता। वह बरवाद होनेसे बच जाता और सामाजिक बन्धनोंके कारण उसके माता-पिता, भाई-बहनोंका उसके प्रति कुछ कर्तव्य होता। उसे अपने बच्चोंकी शादीके अवसरपर 'भात'में काफी माल-टाल मिलता और कमी-कमी वह इतना होता कि उसे अपना आर्थिक सङ्कट मालूम भी नहीं पड़ता। यह लेन-देनका सामान उनकी हैसियतके मुताबिक होता है। यह भी एक उचित और बढ़िया बात है। अगर वे अधिक धनी हो गये हैं, तो वे अधिक रुपया लगावेंगे, और घट गये हैं, तो कम। इससे कन्याका हक भी तत्कालीन दशामें होता और यह समाजकी उन्नतिके लिए बहुत सुन्दर नियम है। इससे पाठक देखेंगे कि प्राचीन कालमें यह रिवाज सोच-विचारकर बनाया गया था और इसकी उपयोगिताके बारेमें कोई उंगली उठा नहीं सकता था, आज भी इसकी आवश्यकता ज्योंकी त्यों बनी हुई है, बल्कि बढ़ गयी है। उसमें इस समय जो खराबियां आ गयी हैं, वे इस प्रथाकी नहीं हैं, वरन् उसमें जुड़ गयी हैं।

वजाय इसके कि हम इस प्रथाकी जड़पर कठाराघात करें, हमें सुघरनेकी अधिक जरूरत है। इसका वर्तमान ढङ्ग बिगड़ गया है और वह आयत्तिजनक भी है।

ठहराना बुरा है — इसमें सबसे बड़ी खराबी जो आ गयी है, वह यह है कि जो लोग विवाहसे पहले ठहराने लगे हैं कि उन्हें कुल कितना मिलना चाहिए और अमुक-अमुक वक्त इतना-इतना। यह बात निन्दनीय है ठहराना नहीं चाहिए। जो कुछ वह दे सके, उसे स्वयं देन देना चाहिए। उसे भी इतना न देना चाहिए, जो उसकी सामर्थ्यके बाहर हो, जिसे जुटानेमें उसकी हैसियत बिगड़ जाय और सारा खेल तिड़ी-बिड़ी हो जाय। कुछ लोग बहुत मांगते हैं और कुछ बहुत देते हैं। दोनों बातें खराब हैं। बीचका रास्ता अल्टियार करना ठीक है। अब तो विवाहका प्रश्न मुख्य नहीं है। मुख्य है लेन-देनका। यह ठीक नहीं। विवाह ही प्रथम बात होनी चाहिए। दहेजमें जो कुछ मिल जाय, सो ठीक। हां, देते वक्त कन्या पक्षवालोंको वरपक्षसे राय अवश्य ले लेनी चाहिए कि क्या वस्तुएं देनेसे उनको अधिक लाभ होगा। ऐसी चीज देनेकी क्या जरूरत, जो उनके पास है या वह उसे पसन्द नहीं करता। इसी प्रकार कन्याकी आवश्यकताओंका ख्याल वर-पक्षको करना चाहिए। कुछ लोग तो दहेजके लालचमें यह भी परवाह नहीं करते हैं कि कन्या कैसी है, युवकके लायक है भी या नहीं। इसका प्रभाव युवकके लिए खराब होता है, युवती भी जिन्दगी-भर झींक सकती है।

भावावेश—हालमें कुछ ऐसी घटनायें हुई हैं, जिनसे कुछ लोगोंका खून खौलने लगा है। दहेज न दे सकनेके कारण कुछ अप्रिय काण्ड हो गये। बस, इसी प्रकारके इक्के-दुक्के कारणोंसे कुछ भाबुकोंने भावावेशमें इसको एकदम बुरा कह दिया। इन्होंने यह विचार नहीं किया कि दहेज न दे सकनेके कारण यदि कुछ ऐसे काण्ड हो गये, तो कुछ मालदार कन्याओंके पिताओंने खूब दहेज देकर लड़कोंको खरीदकर उनकी जिन्दगी खराब कर दी। दहेजके लालचसे युवकोंके पिताओंने ऐसी कन्याओंसे शादी कर दी, जिनसे युवकोंकी कभी बन ही नहीं सकती। वास्तवमें आवश्यकता इस बातकी है कि दोनों पक्षके आदमी समझदारीसे काम लें। सामाजिक बातोंपर विचार करते समय हमें ऐसे कभी-कभी होनेवाले किस्सोंकी उपेक्षा करनी पड़ेगी। हमें तो

अधिकसे अधिक व्यक्तियोंके लाभका प्रश्न प्रमुख रखना चाहिए और इसीको कसौटी मानकर नियम-क्रायेद बनाने चाहिए।

आर्थिक स्वतन्त्रता आवश्यक नहीं है — युवकोंके लिए विवाहसे पूर्व आर्थिक स्वतन्त्रता आवश्यक नहीं है। इसकी समस्या हल करनेमें दहेजका एक बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते। दहेजके अतिरिक्त अन्य रीति-रिवाज हमारे हिन्दू-समाजमें जो प्रचलित हैं, वे भी इस दिक्कतको हटानेकी भरसक कोशिश करते हैं। सम्मिलित कुटुम्बकी प्रथा भी इस समस्याको सुलझानेमें मदद करती है।

हमारे युवकगण जब इस प्रश्नपर विचार करते हैं, तब शायद इन बातोंपर गौर करनेकी परवाह नहीं करते। इनको इस प्रश्नपर गम्भीरतापूर्वक विचार करनेकी आवश्यकता है। यही नहीं, उनके दिमागमें कुछ अन्य युक्तियां भी होती हैं, जिससे वे आर्थिक स्वतन्त्रताकी आवश्यकता अधिक महसूस करते हैं। अगर वे अपनी दिक्कतोंको किसी सहृदय अनुभवी पुरुषके सामने रखें, तो सम्भवतः वह उनको सुलझा सके। उनकी एक बड़ी भारी युक्ति यह भी होती है कि पत्नियोंके कारण अधिक खर्चकी जरूरत पड़ती है। इस बातमें बहुत कम सत्यता है। पत्नियोंके होनेसे उनका खर्च कुछ बढ़ता अवश्य है, पर बहुत ही मामूली। इतना नहीं, जितना वे समझते हैं। जितना बढ़ता भी है, उससे अधिक वे उनकी सहायता करती हैं। अगर उनको ठीक पत्नी मिली है, तो वह उनके लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होगी। वह उनके काममें हाथ बटा सकती है, उनकी चिन्ताओंको कम कर सकती है और उनका बहुत कुछ समय भी बचा सकती है। उनका समय तनिक-तनिक-सी बातोंमें बरबाद होनेसे बच जायगा।

हां, यह बात जरूर है कि युवक लोग इस प्रकार भले ही न रह सकें, इस तरह अपनी पत्नीको न रख सकें, जिसके वे स्वप्न देख रहे हों। यहां उनको थोड़ी दिक्कत अवश्य पड़ेगी, पर यह प्रश्न भी ऐसा नहीं है, जिसका हल न हो। अगर वे कुछ समय ऐसा नहीं कर सकते, तो नहीं सही। मनुष्य-जीवन पाकर दिक्कतोंसे घबराना व्यर्थ है। वे तो सदैव आती हैं प्रत्येकके सामने, बड़ेसे बड़े और छोटेसे छोटे सभीके सामने अपने-अपने ढङ्गकी कठिनाइयां होती हैं, वास्तवमें सारा जीवन ही संग्राम है।

युवतियोंकी तरफसे उन्हें कुछ डर होता है। वे अधिक खर्चीली हुईं, तो वे क्या करेंगे। उनको उन्होंने सहायता न दी और कहीं वे उल्टा भार बन गयीं, तो उनकी दिकतें बहुत बढ़ जायंगी। यह बात अवश्य ठीक है। उनका यह शक ठीक है; पर इतना खतरा तो जिन्दगीमें लेना ही पड़ता है और यह खतरा तो बराबर बना ही रहेगा।

पत्नियोंकी सहायता—इस मामलेमें समाजको इनकी सहायता करनी चाहिए। उसे लड़कियोंको इस बातकी शिक्षा देनी चाहिए, ताकि वे पतियोंकी सच्ची सहचरी बन सकें। उन्हें वर्तमान समयकी कशमकशसे परिचित होना चाहिए और यह भी जानना चाहिए कि दिकतोंके बढ़ जानेसे युवकोंकी दिकतें भी बढ़ गयी हैं। उन्हें इनकी बातोंको सहानु-भूतिपूर्वक समझाना चाहिए। यह न करना चाहिए कि शादी होते ही वे अपने परेशान पतियोंको अपनी अजीब-अजीब आदतोंसे, अपनी आवश्यकताओंसे, घबरा दें, थोड़ा वे भी इन्तजाम करें, समय आनेपर उनकी मांगें स्वयं पूरी हो जायेंगी। पति लोग अपनी पत्नियोंको स्वयं कोई कष्ट नहीं

देना चाहते हैं, वे तो उनको सब प्रकार आनन्द और सुख देकर अपने ऊपर आफत लेनेके उत्सुक होते हैं। लड़कियोंके लिए जरूरी है कि वे इस समयकी समस्त परिस्थितिसे परिचित होकर अपने-अपने पतियोंकी महत्त्वाकांक्षाओंमें सहायक हों। उनके भारको हलका करनेमें मदद दें और उन्हें बढ़ावें नहीं।

समाजको खतरा है—समाजको भी युवकोंकी इन दिकतोंको दूर करनेके लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए। बिना इनको दूर किये अत्यन्तनुकसान है। समाजमें भयङ्करता आ जावेगी और नाना प्रकारके दोष आ जायेंगे। देरकी शादीके परिणाम समाज तथा युवकों—दोनोंको भोगने पड़ेंगे। युवकोंको शान्ति नहीं मिलेगी और समाजमें उच्छृङ्खलता आदि अनेक बातें फैल जायंगी। युवकोंके देरमें शादी करनेके निश्चयसे योग्य लड़कियोंके लिए योग्य पतियोंका प्राप्त करना मुश्किल हो गया है। उनके अभिभावकोंकी दिकतें बढ़ गयी हैं। दूसरी ओर समाजमें व्यभिचारकी भी वृद्धि होने लगी है। अगर अभी इसे न रोका गया, तो आगे चलकर और भी गुल खिलेगा और समाजमें परेशानी बढ़ेगी।

विज्ञान द्वारा नवयुग-निर्माण

श्री रामचन्द्र शर्मा, बी० एस-सी० (आनर्स)

आजकलकी विज्ञान-शालाओंमें मनुष्य-जीवनमें भारी परिवर्तन लानेवाले कुछ पदार्थोंका निर्माण हो रहा है। पिछले अनुभवोंसे तो यही पता चलता है कि हम लोग नवयुगसे केवल २५ वर्ष पीछे हैं, क्योंकि बहुत-से आविष्कारोंको विज्ञानशालाओंसे आम जनता तक पहुंचनेमें २५ वर्षोंसे अधिक समय नहीं लगा था। उदाहरणार्थ, टेलीविजन (Television) सन् १८८५ ई० में पेटेंट दिया गया था। विटामीनका आविष्कार केवल २७ वर्ष पहले हुआ था। विद्युत-शक्ति (Electric power) का अधिकतर प्रचार ३० वर्षोंसे ही हुआ था।

निवास-स्थानोंमें पूर्ण परिवर्तन लानेवाले आविष्कारोंकी चर्चा सुदूर पश्चिमसे सुनाई पड़ रही है। अनुसन्धानसे स्पष्ट जान पड़ता है कि मकानोंको गर्म रखनेके लिए अब तेल या कोयला जलाकर, पानीसे स्टीम बनाकर कमरेकी वायुको गर्म करनेकी बिल्कुल जरूरत नहीं। इन्फ्रा-रेड (Infra-red)

की किरणोंसे सूर्यकी किरणोंके समान गर्मी निकलती है। कुछ आविष्कारकोंका कहना है कि (Infra-red) बिजली-बत्तियोंकी किरणोंको इस प्रकार स्थिर किया जा सकता है कि इनके द्वारा बर्फके ढेलेपर रखे हुए पानीसे भरे बोतलमें-का अण्डा उबाला जा सकता है। अभी तक इन बत्तियोंसे रसोई बनानेके लिए बहुत-से पेटेंट दिये जा चुके हैं।

२५ वर्षके बाद जाड़ेके एक दिनमें किसी ठण्डे मुलकमें रोटी पकानेवाली किसी महिलाका ख्याल कीजिये। कोयलेसे बने हुए पायतावे और शीशेकी बनी हुई पोशाक पहने वह अपने रसोई-घरमें खड़ी है। सभी झरोखे खुले हुए हैं। यद्यपि कमरेका ताप १०९% से भी कम है, तथापि वह रसोईघर इन्फ्रा-रेड किरणोंसे (Infra-red rays) गर्म है। और वह महिला अपना अधिकतर समय टेलीविजनपर बिता सकती है। क्योंकि अब तो उसे मकानोंको साफ-सुथरा रखने, झाड़ू देनेकी उतनी अधिक जरूरत नहीं पड़ेगी।

भविष्यके मकानोंमें हवा, विद्युत्से आच्छादित स्थानसे ले जाकर ऐसे यन्त्रसे होकर, जहांपर उसके ९९ फीसदी ठोस गन्दी और कीटाणु रह जायेंगे, लायी जायगी। ऐसे यन्त्र, जिनका नाम इलेक्ट्रिक प्रेसिपिटेटर्स (Electric precipitators) है, बहुत तादादमें स्टोर्स डिपार्टमेंट और बड़ी सरकारी कचहरियोंमें लगाये जा रहे हैं।

कम दामकी अल्ट्रा वायोलेट बत्तियोंका (Ultra violet Lamp) बरवत्त मांसकी दूकानोंमें मांसको सड़नेसे बचानेके लिए, अस्पताल, होटल और सोडावाटरके कारखानोंमें शीशोंको संक्रामक कीटाणुओंसे बचानेके लिए व्यवहार किया जाता है। बहुत अनुसन्धान अभी बाकी है; परन्तु यह ख्याल करना अनुचित नहीं होगा कि हेल्थ अफसर फसली और संक्रामक बीमारियोंमें जो अब तक भीड़ लगानेके खिलाफ थे, लोगोंको एकत्र करके इन बत्तियोंकी रोशनीसे घातक कीटाणुओंको मारेंगे।

भावी २५ वर्षोंमें मनुष्य सूर्यकी शक्तिको इकट्ठा कर सकता है। गत वर्ष स्मिथ सोनियन कम्पनीके डा० एबौटको सूर्यकी शक्तिसे, जिसने कोयलेको मात कर रखा है, भाफ बनानेके लिए एक मशीनका पेटेंट दिया गया है। यह मशीन एक प्यालेके समान अलमुनियमकी आरसीको, जो घड़ीके समान घूमकर सूर्यकी सीधी किरणोंको एक शीशेकी नलीपर, जिसके भीतर पानीकी एक पतली धारा बहती है, एकत्र करती है और साफ दिनमें पानी भाफ बन जाता है। डा० एबौटकी यह मशीन सब प्रकारके भोजन अच्छी तरह बना सकती है, और कैलीफोर्नियामें हजारोंकी तादादमें इसका व्यवहार किया जा रहा है।

एक महीनेमें सूर्य पृथ्वीको जितनी शक्ति प्रदान करता है, उतनी मनुष्य मुश्किलसे संसारके सारे कोयलेसे प्राप्त कर सकता है। और विद्युत्-शक्तिको बहुत दूर भेजनेका उपाय मालूम होते ही एक ऐसी सार्वदेशिक कम्पनीका ख्याल किया जा सकता है, जो पृथ्वीके चारों ओर सोलर पावर स्टेशनकी एक लाइन खोल दे, जहां कि सूर्य कभी डूबता नहीं।

थर्मोकपुलस और फोटो एलेक्ट्रिक सेल्स (Thermocouples and photo electric cells) सूर्यकी शक्तिको सीधे विद्युत्-शक्तिमें बदल देते हैं। यदि उन्नतिकी रफ्तार

ऐसी ही तेज रही, तो कुछ ही दिनोंमें हम लोगोंके मकानोंमें फोटो एलेक्ट्रिक शिन्गील्स (Photo electric shingle,) लगा दिये जायेंगे, जिनसे शक्ति और रोशनी सब कामोंके लिए जरूरतसे ज्यादा मिल जायेंगी। कारण यह है कि साफ गर्मीके दिनमें सूर्यसे इतनी विद्युत्-शक्ति मिल जायगी, जितनी हमारे लिए सालभरके लिए आवश्यक है। गत वर्ष इम्पीरियल इन्स्टीच्युट आव टेक्नोलौजी, मेसानुसेट्समें इस विषयपर अनुसन्धान करनेके लिए छः लाख डालर दिया गया है। कितने ही वैज्ञानिक इसकी खोजमें लगे हैं।

ऐसे अनुसन्धानसे बहुत-सी विचित्र बातें सम्भव हैं। सस्ती और ज्यादा सूर्यकी शक्ति हासिल हो जानेसे सहारा, अरब, पैलेस्टाइनको सूर्य द्वारा पटाया और उपजाऊ बनाया जा सकता है, जो अब तक अधिकांशतः बेकार-से पड़े हैं। और संसारके घनघोर युद्ध अब कोयले और तेलके लिए नहीं, बल्कि सूर्यकी रोशनीसे आच्छादित मरुभूमिके लिए होंगे।

मकानोंमें रोशनी जलानेके सिद्धान्तमें धीरे परिवर्तन हो चुका है। बिजली-बत्तियोंके गर्म तार द्वारा रोशनी हासिल करनेके बदले फ्लोरोसेण्ट बत्तियोंका व्यवहार किया जा रहा है। पाराकी भाफसे बिजली-बत्तीके नलको भर दिया जाता है और बिजली जब भाफसे मिलकर अल्ट्रा वायलेट रोशनी विकरण, जिसको आंख नहीं देख सकती है, पैदा करती है, तब यह बत्तीकी भीतरी सतहमें चिपके हुए रासायनिक पदार्थोंसे मिलकर रोशनी पैदा करती है, जो साधारणतः बिजली-बत्तियोंसे ३० से ४० गुना अधिक रोशनी देती है। दूसरी सम्भावना यह है कि मकानकी दीवारोंको इन्हीं रासायनिक पदार्थोंसे पोत दिया जा सकता है और इनसे छिपी हुई अल्ट्रा वायलेट रोशनी मिलनेपर सारे मकानमें रोशनी फैल जायगी, जिसकी विशेषता यह होगी कि मकानके अन्दर छाया या अंधेरे कोने नहीं पाये जायेंगे।

पुराने जमानेसे आज तक हम लोगोंके कपड़े पौधे या जानवरोंकी खालके थे; परन्तु गत वर्ष नीलन नामके एक बनावटी सूतको, जो कोयला, हवा और पानीसे बनता है, पेटेंट किया गया है। यह सूत इस्पात लोहे-पेसा मजबूत और मकड़ीके सूत-पेसा पतला और मुलायम होता है। इसके अलावा विनियन नामके एक सूतका, जो पेट्रोलियम पदार्थोंसे बनता है और जो घटता-बढ़ता नहीं, आगमें जलता नहीं,

पानीमें सड़ता नहीं और जो रेशमसे भी ज्यादा मुलायम होता है, पेटेंट दिये हुए आज ५ वर्ष बीत रहे हैं और महंगे दामोंमें विदेशी बाजारोंमें बिक रहा है।

शीशेका भी सूत तैयार किया जा रहा है, जिसकी मोटाई मनुष्यके केशका आठवां भाग है। कपड़े बुननेवाली मशीनोंपर यह कपड़ा तैयार किया जा रहा है, जो चमकीला, मुलायम और गर्म होता है; लेकिन अभी भी भारी और महंगा है। अभी तो उसका व्यवहार केवल रासायनिक कारखानोंमें ही हुआ करता है; परन्तु १९६५ तक आशा है कि पुलिसकी पोशाकमें काम आने लगेगा।

यदि शीशेका मुकाबला सूती कपड़ोंसे है, तो कोयलेके रालका मुकाबला शीशेसे है। रेजीन शीशेको अल्ट्रा वायलेट किरणें पार कर सकती हैं; परन्तु साधारण शीशेके जरिये नहीं। इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज आव इंगलैण्ड द्वारा इसी रालसे चश्मे और दूरबीनके शीशे तैयार हो रहे हैं। अभी हाल ही में इनकी परीक्षा करके देखा गया है कि इन शीशों-को हथौड़ीसे भी तोड़ा नहीं जा सकता।

कृषि और बीज-सम्बन्धी भी कई प्रयोग हो रहे हैं, जो एक साथ ही कितने ही क्रान्तिकारी परिवर्तन ला देंगे। जमीनको अधिक उपजाऊ बनाने, बीजको अधिक जोरदार बनाने तथा फलोंको अधिक पुष्टिकर एवं अनाजके दानोंको अधिक बड़ा-बड़ा बनानेके प्रयोग भी चल रहे हैं, जिनमें अभी तक आंशिक सफलता मिली है और पूरी सफलता मिलते ही दुनियाकी पैदावारको कई गुना बढ़ाया जा सकेगा। न्यूयार्कके डा० ब्लेसेसलीने दिखाया है, बीजोंमें कोलसीसीन नामक रसायनसे वैज्ञानिक क्रिया की जाय, तो एक ही बार उस पौधेमें कई गुना विकास हो जाता है। इसलिए नये प्रकारके अच्छे पौधे मनुष्य अपनी इच्छानुसार पैदा कर सकता है। वैज्ञानिक लोग इस आविष्कारको वैसे ही गौरव-पूर्ण बतलाते हैं, जैसे कि स्टीम इंजिनका आविष्कार शक्ति और चालके लिए था।

दूरीका तो अब कोई मूल्य ही नहीं रह गया, फिर भी वैज्ञानिक लोग अपने नये-नये प्रयोगोंको लेकर उतना ही उलझे हुए हैं। आटो प्रेसेस नामक वायुयानका आविष्कार हुए आज छठा वर्ष गुजर रहा है। यह अनोखा आविष्कार है, जो कितनी ही बातें सम्भव बना देगा।

इस तरहके वायुयानोंमें और वायुयानोंकी भांति बिजलीके पट्टेके समान ह्वील सामने नहीं, बल्कि ऊपरको लगे होते हैं और यह वायुयान जहां खड़ा है, वहींसे ऊपर उड़ जायगा, जहां चाहे उतर जायगा। इस वायुयानपर चढ़कर २५ वर्ष बाद मनुष्य अपनी छतसे उड़कर दूसरेकी छतपर उतर सकेंगे। जब इसका प्रचार इस समयकी मोटरगाड़ियोंके समान हो जायगा, तब सरकारी पुलिस और दूसरे अफसरोंको जमीनके अलावा हवामें भी वैसे ही निरीक्षण करना पड़ेगा, जैसे अभी वे जमीनपर करते हैं।

एक और अनोखे आविष्कारकी खबर अमेरिकासे यह आयी है कि बेतारके तारसे छोटी-छोटी चीजें, जैसे रुमाल वगैरह, काफी दूरी तक भेजी जा सकती हैं। इसका सिद्धान्त भी ठीक टेलीविजन और रेडियोके ऐसा ही है। इसमें आप खयाल कर सकते हैं कि यद्यपि एक प्रेमी लन्दनमें है और उसकी प्रेमिका न्यूयार्कमें है, तथापि वे दोनों टेलीविजन और बेतारके तार द्वारा एक-दूसरेकी तसबीर सामने देखते हुए इत्रोंसे तर रुमालोंको अपने प्रेम-शब्दोंके साथ एक-दूसरेको दे सकेंगे।

अखबारोंके मोटे-मोटे शीर्षक आजकल तानाशाहों और लड़ाईकी खबरोंसे भरे रहते हैं। पर केवल इनको देखकर भविष्यकी सम्भावनाओंका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अनेक सम्भावनाओंका जन्म तो वहां हो रहा है, जहां बड़े-बड़े वैज्ञानिक प्रयोग-शालाओंमें बैठे चुपचाप अन्वेषण-कार्यमें लगे हैं—वहीं नये युगका निर्माण हो रहा है। और कूट-नीतिज्ञों और तानाशाहोंका अस्तित्व तो इन्हीं वैज्ञानिकोंपर निर्भर है, जहां असली क्रान्तिका बीजारोपण हो रहा है।



भारतीय साम्यवादियोंके प्रति

श्री सन्तराम, बी० ए०

हमारे अधिकांश देश-बन्धुओंकी धारणा है कि स्वराज्य एक ऐसा मेवा है, जो आकाशसे टपकता है ; भारतमें वह इसलिए नहीं टपकता, क्योंकि उसके मार्गमें विदेशी शासन बाधक है। इन भाइयोंकी समझमें यह बात नहीं आ रही कि ये बुराईयां इसके कारण नहीं। भारतके राजनीतिक रङ्गमञ्चपर अंगरेजोंके प्रादुर्भावके पूर्व भी ये दोष हममें थे। इन्हींके कारण हमारा स्वराज्य नष्ट हुआ। परन्तु हम इनको दूर करनेके बजाय सारा दोष दूसरोंके माथे मढ़ रहे हैं। कारण यह कि दूसरेको दोष देना सदा सरल होता है। आत्म-सुधार ही सबसे कठिन है। उस दिन एक कट्टर राष्ट्र-वादी हिन्दूसे बातचीत हो रही थी। वे कुछ वर्ष विलायतकी भी हवा खा आये थे। मैंने कहा, जितना आप दूसरोंको कोसते हैं, यदि आप उससे आधा समय भी अपने समाजके सुधारपर लगायें, तो आपको बड़ी भारी सफलता हो सकती है। मैंने यह भी कहा कि इतिहासके अध्ययनसे पता लगता है कि सामाजिक क्रान्तिके अनन्तर ही राजनीतिक क्रान्ति सम्भव हुआ करती है ; आप जहां राजनीतिक समता लानेके लिए यत्न करते हैं, वहां उसकी आधारभूत सामाजिक समताको लानेमें भी सहायता दिया कीजिये। इसपर वे बोले कि मैं मानता हूं हिन्दुओंका जाति-भेद अच्छा नहीं, यह प्रजातन्त्रका निषेधक है, परन्तु इसे मिटानेके लिए तो एक शताब्दी चाहिए ; हम स्वराज्यके लिए इतनी देर ठहर नहीं सकते ; स्वराज्य हो जायगा, तो हम एक कानून बनाकर छूत-छात और जात-पात एक क्षणमें दूर कर देंगे। मैंने कहा कि क्या आप समझते हैं कि स्वराज्य कल ही मिल जायगा। अंगरेजों और मुसलमानोंके पहले भी तो यहां हिन्दुओंका स्वराज्य था। उसे इन्होंने कैसे खोया ? अपने उस स्वराज्य-कालमें इन्होंने जाति-भेद और अस्पृश्यताके कलङ्कको क्यों न दूर किया ? अब भी नैपाल-जैसे हिन्दू राज्यमें अस्पृश्यता और जात-पातका जितना प्रकोप है, उतना अंगरेजी राज्यमें नहीं।

बात असलमें यह है कि जैसे प्रकृत आनन्दकी प्राप्ति के लिए अपनी ही मानसिक वृत्तिको ठीक करनेकी आवश्यकता

होती है, बाह्य जगत्में भटकनेसे उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं, वैसे ही स्वराज्य-प्राप्तिके लिए भी अपने मनको एक विशेष उच्च अवस्थामें लाना पड़ता है। जिस व्यक्ति अथवा जातिकी यह स्थिति नहीं, उसके मुंहमें स्वराज्यरूपी अमृत टपका देनेसे कुछ भी लाभ नहीं। हमारे देशमें म्युनिसिपल कमेटियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंको चिरकालसे स्वाधीनता मिली हुई है, और अब प्रान्तोंको भी स्वराज्य दिया जा चुका है। परन्तु दशा क्या है ? जिन लोगोंका स्वभाव ही बन चुका है कि वे अपना उत्तरदायित्व कुछ भी न समझकर, अपनी त्रुटियोंको दूर करनेका कुछ भी यत्न न करके, सारा दोष दूसरोंको ही दिया करते हैं, वे वेशक इन खराबियोंका कारण भी दूसरोंको ही मानकर बुदबुदाते रहें, उनकी अपनी इच्छा है, उन्हें कोई रोक नहीं सकता। परन्तु जिस मनुष्यके मस्तिष्कमें रत्ती-भर भी बुद्धि है, वह जानता है कि यक्ष्माके कीटाणु उसी शरीरमें रोग उत्पन्न करते या कर सकते हैं, जिसमें पहलेसे उनका खाद्य-पदार्थ या विजातीय द्रव्य विद्यमान रहता है ; नीरोग शरीरमें जाकर तो वे आप ही मर जाते हैं या बिना किसी प्रकारकी हानि पहुंचाये बाहर निकल जाते हैं। अंगरेजोंमें कोई फूट क्यों नहीं डलवा सकता ? फ्रान्सीसियोंको कोई आपसमें क्यों नहीं लड़ा सकता ? जापानमें कोई सात करोड़ देशवासियोंको अछूत क्यों नहीं बना सकता ? अमेरिकामें कोई पादरी और बड़ईमें रोटी-घेटी-व्यवहारका निषेध क्यों नहीं कर सकता ? ये सब आधि-व्याधियां हमारे यहां ही क्यों ? क्या उन देशोंपर राज्य करनेकी दूसरे राष्ट्रोंको इच्छा नहीं होती ? ये सब ऐसी बातें हैं, जिनपर हमारे भारतीयों और विशेषतः हिन्दुओंको विचार करनेकी आवश्यकता है।

इस समय अधिकांश भारतीय स्वराज्यका जो अर्थ समझ रहे हैं, वह बहुत कुछ इस प्रकार है :—

किसान समझता है, स्वराज्य होनेपर मुझे लगान नहीं देना पड़ेगा। साहूकार समझता है, मैं बैंकसे बच जाऊंगा। सरकारी नौकर समझता है, मुझे अबसे दुगुना-तिगुना वेतन

मिलेगा, और मुझसे काम लेनेवाला कोई न होगा। मजदूर समझता है, मैं काम बहुत थोड़ा करूँगा, परन्तु मेरे पास धन-सम्पदा कुंघरके समान होगी। ब्राह्मण समझता है, मैं तो सब वर्णों द्वारा पूजित हूँगा, परन्तु शूद्र और अछूत मुझसे समताका व्यवहार न कर पायेंगे। राजपूत समझता है, मैं तो सेनामें सेनापति और प्रान्तोंका गवर्नर बन सकूँगा, परन्तु किसी चमारको न सेनामें भर्ती होने देंगा और न अपने सामने खाटपर बैठने देंगा। महात्मा गांधीके बहुत-से भक्त भी उनके महात्मापनके ही पुजारी हैं, उनके उपदेशोंपर चलनेकी न उन्हें इच्छा है और न विचार ही। उस दिन मैंने लाहौरमें देखा, महात्माजीकी प्रातःकालीन प्रार्थना सुननेके लिए कोई बीस सहस्र नर-नारी इकट्ठे हो गये। तिल धरनेको जगह न रही। परन्तु उनमें, विशेषतः स्त्रियोंमें, सौ पीछे एक भी ऐसी न थी, जिसके शरीरपर खादी तो दूर, स्वदेशी वस्त्र ही हों। बर्नार्ड शाने ठीक कहा था—In a land of fools a patriot becomes a saint, where every body worships him but nobody follows him. अर्थात् “मूर्खोंके देशमें देशभक्त महात्मा कहलाने लगता है। वहाँ उसकी पूजा तो सब करते हैं, परन्तु उसका अनुकरण कोई भी नहीं करता।”

हमारे देशमें लोग किसी नेताके पीछे वहीं तक हैं, जहाँ तक वह नेता उनके पीछे है। लोग कहते हैं, मालवीयजी सनातनधर्मियोंके मान्य नेता हैं। परन्तु वास्तवमें लोग उनके पीछे वहाँ तक हैं, जहाँ तक वे लोगोंके पीछे हैं। मालवीयजी क्योंकि खान-पानमें छूत-छात करते हैं, अपनी जातिके ब्राह्मणके सिवा क्योंकि किसी दूसरे हिन्दूके हाथका नहीं खाते, इसलिए सनातनधर्मी उनसे प्रसन्न हैं। मुझे पूर्ण निश्चय है कि यदि मालवीयजी हिन्दुओंसे आज कहने लों कि जाति-भेदको मिटा दो या अस्पृश्यताको हटा दो, तो उनके भक्तों और यजमानोंमेंसे दो प्रति सैकड़ा भी उनके साथ न रह जायेंगे।

अब तनिक भारतके साम्यवादियोंको लीजिये। ये लोग आँख मीचकर यूरोपके साम्यवादियोंका अनुकरण कर रहे हैं। इनकी दृष्टि राष्ट्रीयकी अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय अधिक है। कहनेको ये लोग कहते हैं कि हम शक्तिको कतिपय इने-गिने लोगोंके हाथमें न रहने देकर सारी जनतामें

बराबर बांट देना चाहते हैं, ताकि थोड़े-से लोग बहुसंख्यक सर्वहाराका शोषण और पीड़न न कर सकें। परन्तु जिस बातको ये भूल जाते हैं, वह यह है कि शक्ति केवल धनमें ही नहीं। देश और कालके अनुसार यह विभिन्न वस्तुओंमें रहती है। यूरोपमें सामाजिक समता पहलेसे है। वहाँ जो आज भङ्गी है, वह कल पादरी या हलवाई या गवर्नर बन सकता है। भङ्गीका बेटा होना उसकी उन्नतिके मार्गमें कोई बाधा नहीं डाल सकता। वहाँ सिपाहीको ऊँचा और किसानको नीचा नहीं समझा जाता। वहाँ मिस्टर पाटर और मिस्टर टेलर भी वैसे ही सम्मानित हैं, जैसे रेवरेंड न्यूटन या मिस्टर एडवर्ड। सब लोग अपनी रुचि और स्थितिके अनुसार सब कहीं विवाह कर सकते हैं। काम और जन्मकी दृष्टिसे वहाँ बिल्कुल सामाजिक समता है। यूरोपीय समाजको यदि कोई चीज दुःख दे रही है, तो वह है आर्थिक विषमता। वहाँ धनी और निर्धनकी, पूँजीपति और श्रमजीवीकी कठिन समस्या है। वहाँ धन ही शक्ति है। इसलिए यूरोपके साम्यवादी धनकी विषमताको ही सारी बुराइयोंकी जड़ बताकर आर्थिक समता लानेपर जोर देते हैं। यह बात उनके समाजके लिए उपयुक्त भी है। परन्तु हमारे भारतकी दशा इसके बिल्कुल विपरीत है। यहाँ अभी सामाजिक समता ही नहीं आयी, आर्थिक समताका तो कहना ही क्या। सच तो यह है कि जैसे यूरोपमें धनमें सारी शक्ति है, वैसे भारतमें वर्ण-भेदमें सारी शक्ति है। वर्ण-भेदने मनुष्योंके विभिन्न समूहों या वर्णोंमें अधिकारोंका बड़ा विषम बांट कर रखा है। ब्राह्मणको सबसे अधिक अधिकार प्राप्त हैं और भङ्गीको सबसे कम। ब्राह्मणके लिए पुरोहित, जज, हलवाई, पाचक, किसान, चपरासी, मजदूर, खनार या मोची कुछ भी बनकर धन कमानेके द्वार खुले पड़े हैं। परन्तु एक भङ्गी सिवा मैला उठानेके और कुछ नहीं कर सकता। वह हलवाई, पुरोहित, होटल कीपर या खनार बनकर धन नहीं कमा सकता। इसलिए उसका सदा दरिद्र बना रहना अनिवार्य है। इसी बातको एक विदेशी विद्वान्ने इन शब्दोंमें प्रकट किया है :—

“The art of the power may differ widely between different groups. In the West the power is largely economical (money is crys-

tallised power) predominating even over the power of Church. In India it is the power of caste, largely the product of the power of Brahmins and of the ruling classes.

“In the West the social mind is obsessed by the idea of economical power, and in India by the idea of caste-power. The orthodox Brahmins are afraid of nothing but an attack on their position in relation to the lower castes and untouchables, on their social and religious privilege.”

“If the social mind did not attach its seal to the economic power in western society and to the power of caste in India, these different kinds of power could never tyrannise society as they do by obstructing the freedom of the individuals.”—DHARMA AND SOCIETY, by Gualtherus H. Mees, M. A., p. 145.

भावार्थ—“शक्तिकी कला विभिन्न जन-समूहोंमें एक-दूसरेसे बहुत भिन्न हो सकती है। पश्चिममें यह शक्ति अधिकतर आर्थिक है (धन पुञ्जीभूत शक्ति है), यहां तक कि पुरोहितकी शक्तिको भी इसने दबा रखा है। भारतमें यह शक्ति वर्ण-भेदमें है, जो कि अधिकतर ब्राह्मणों और क्षत्रियोंका बनाया हुआ है।

“पश्चिममें सामाजिक दुःखोंका कारण आर्थिक शक्ति है, और भारतमें वर्ण-भेदकी शक्ति। कट्टर ब्राह्मण केवल एक ही बातसे डरते हैं और किसी चीजसे नहीं। उनको निम्न वर्णों और अस्पृश्योंकी अपेक्षा जो अधिक और उच्च सामाजिक एवं धार्मिक विशेषाधिकार मिले हुए हैं, वे उनको छोड़नेको किसी प्रकार तैयार नहीं। उनके छिननेसे ही उनको डर लगता है।

“यदि पश्चिमी समाजमें लोग धनकी शक्तिको और भारतमें वर्ण-भेदकी शक्तिको स्वीकार न करें, तो ये शक्तिके विभिन्न प्रकार समाजका कभी उत्पीड़न न कर सकें, जैसा कि अब वे व्यक्तियोंकी स्वतन्त्रतामें बाधा देकर कर रहे हैं।”—गुआल-थेरस एच० मीज एम० ए०-कृत “धर्म एण्ड सोसायटी।” पृष्ठ १४५।

यूरोपके सभी साम्यवादी अपनेको ‘कामरेड’ कहते हैं। परन्तु भारतीय साम्यवादी पण्डित, लाला, चौधरी, ठाकुर आदि जन्ममूलक ऊंच-नीचके सूचक पुछल्ले अपने नामोंके साथ लगाये फिरते हैं। यहां तक कि श्री० जवाहरलालजीके नामके साथ भी जब तक “पण्डित” शब्दका प्रयोग न कर लें, तब तक इनको चैन नहीं आता। सिक्खोंके दशम गुरु गोविन्दसिंहने भी जातिमें नवजीवनका सञ्चार और समता एवं बन्धुताका प्रचार करनेके लिए वर्ण-भेदको मिटाना आवश्यक समझा था। वे जब किसीको सिक्ख-धर्मकी दीक्षा देकर “सिंह” बनाते थे, तो पहले एक पात्रमें जल डालकर उसमें बताशे घोलेते थे। फिर विभिन्न वर्णोंके लोगोंको बैठाकर उस पात्रमें इकट्ठा खिलाते थे। इसके पश्चात् निम्नलिखित वचन पढ़ा जाता था—

सरावक सिद्ध समूह सिद्धान्त देख फिरियो घर जोगीजतीके।
सूर सरावक सिद्ध सरावक सन्त समूह अनेक मतीके।
सारे ही देसको देख फिरियो मत कोऊ न देखत प्राणपतीके।
श्री भगवानकी भूरि कृपा बिन एक रती बिन एक रतीके॥

तब सिक्खोंको उपदेश दिया जाता था कि लाला, पण्डित, ठाकुर, चौधरी प्रभृति वर्णसूचक नामोंका व्यवहार परित्याग करके सब अपने आपको “भाई” कहो। यही कारण है कि अब तक भी सिक्ख भाई निहालसिंह, भाई तख्तसिंह और भाई सन्तसिंह इत्यादि कहलाते हैं। यह “भाई” कामरेड शब्दका ठीक पर्याय जान पड़ता है।

सिक्खोंमें जितना तम्बाकू पीना बुरा समझा जाता है, उतना सुरापान नहीं, यद्यपि सुरा तम्बाकूकी अपेक्षा कहीं अधिक मादक होती है। इसका भी एक कारण है। गुरु गोविन्दसिंह जाति-भेदको सुरापानसे भी अधिक हानिकारक समझते थे। सुरापान करते समय मधुशालामें कोई किसीसे उसका वर्ण नहीं पूछता; सभी वर्णोंके लोग इकट्ठे मिलकर एक ही प्यालेमें पी लेते हैं। परन्तु हुक्केका एक घूंट लेनेके लिए भी जाति, वर्ण, गोत्र, प्रवर, शाखा और न मालूम क्या कुछ पूछा जाता है। एक वर्णका मनुष्य दूसरे वर्ण, वरन् अपने ही उपवर्णका हुक्का नहीं पीता। इसीलिए गुरुजीने हुक्केका इतना कड़ा निषेध किया था। उनकी शिक्षा भारतके लिए सच्चा साम्यवाद था। उसपर आचरण करनेसे हिन्दू सिंह बन गये थे और उन्होंने शत्रुओंके छक्के छुड़ा दिये थे।

परन्तु खेद है, सिक्ख भी गुरुजीकी पावन शिक्षापर चिरकाल तक हड़ न रह सके। जाति-भेदका राक्षस फिरसे प्रकट होकर उनको भी पुनः हड़प कर रहा है।

मराठोंका सङ्गठन भी तभी सम्भव हुआ था और उनमें राष्ट्रीयताकी भावना भी तभी जाग्रत हो सकी थी, जब तुकाराम, एकनाथ और समर्थ रामदास प्रभृति सन्त-महात्माओं-ने अपने उपदेशों द्वारा जाति-भेदको बहुत कुछ दबा दिया था।

हमारे भारतीय साम्यवादियोंको इस बातपर विचार करना चाहिए कि एक ही देशमें बसते हुए भी क्या कारण है, जो बनिये, एक वर्गके रूपमें, चमार वर्गसे अधिक धनी और सुसंस्कृत हैं? क्या कारण है, चमारोंमें आज तक कोई सेठ बिड़ला नहीं उत्पन्न हुआ? इसका कारण यह है कि जाति-भेदने रोटी-बेटी-व्यवहारपर प्रतिबन्ध लगाकर धन और विद्याका सञ्चरण एक विशेष क्षेत्रमें ही सीमित कर दिया है। बनिये केवल बनियोंमें ही बेटी-व्यवहार करते हैं। इसलिए उनकी धन-दौलत एवं संस्कृति उनके छोटे-से सङ्कीर्ण क्षेत्रके भीतर ही घूमती रहती हैं। वे बाहर नहीं जाने पातीं। उधर चमार भी आपसमें ही बेटी-व्यवहार करते हैं। वे आरम्भसे ही दरिद्र और अशिक्षित हैं। उनमें बाहरसे धन और संस्कृति आनेका कोई साधन ही नहीं। उनमें एकाध जो थोड़ा-बहुत धनी या विद्वान् बनता भी है, उसका रोटी-बेटी-व्यवहार केवल उन्हीं निर्धन और अशिक्षित लोगोंमें होनेसे उसकी सन्तान फिर वैसी ही निर्धन और अशिक्षित हो जाती है।

इसलिए आर्थिक शक्ति या धनका बराबर बांट करनेके लिए भी साम्यवादियोंके लिए यह आवश्यक है कि वे पहले वर्ण-भेदका विध्वंस करें। वर्ण-भेद और साम्य दो परस्पर

विरोधी चीजें हैं। भारतका साम्यवाद वर्ण-भेदको मिटानेके सिवा और कुछ है ही नहीं। परन्तु भारतका साम्यवादी मजदूर यह तो चाहता है कि बिड़लोंको लूटकर उनका धन निर्धनोंमें, जिनमें एक वह आप भी है, बराबर-बराबर बांट दिया जाय, परन्तु वह अपने ठाकुरपनका अभिमान छोड़ने या चमारको भी ठाकुर कहलानेका अधिकार देनेको तैयार नहीं। क्या यह साम्यवाद है?

जैसा मैंने ऊपर स्वराज्यके सम्बन्धमें कहा, साम्यवादके विषयमें भी वही बात ठीक है। सच्चा साम्यवादी वही है, जिसकी मानसिक स्थिति ऐसी हो गयी है कि वह मनुष्य और मनुष्यके बीच किसी प्रकारकी हानिकारक विषमताको देखना सहन नहीं कर सकता। जब तक वह स्थिति प्राप्त नहीं होती, तब तक केवल धनके समान बंटवारेको लेकर ही नाचते फिरना किसी कामका नहीं। इससे भारतमें समाजका कुछ भी स्थायी कल्याण नहीं होगा। कारण यह कि यहाँ आर्थिक विषमताका मूल सामाजिक विषमता है। उसे दूर किये बिना समाजमें किसी प्रकारकी भी समता नहीं आ सकती। सामाजिक विषमताके दलदलपर स्वराज्य और आर्थिक साम्यका सुन्दर भवन खड़ा नहीं किया जा सकता। सन् १९२९ की लाहौर-कांग्रेसके अवसरपर जात-पात-तोड़क मण्डलके सम्मेलनमें भाषण करते हुए स्वर्गीय श्री० मोती-लालजी नेहरूने कहा था कि एक बार किसीने मुझसे पूछा कि कोई एक ही बात ऐसी बताओ जिसके करनेसे भारतको स्वराज्य मिल सकता है, तो मैंने, पांच मिनट सोचनेके बाद, उसे उत्तर दिया था—वर्ण-भेदको मिटा दो, स्वराज्य मिल जायगा।



चिताकी आग

श्री आरसीप्रसाद सिंह

आवाह अपने सम्पूर्ण यौवनसे गम्भीर था। आकाशमें समस्त, नील-कमलके समान, घोर-कृष्ण मेघोंका समुदाय, इस छोरसे उस छोर तक फैला था। पृथिवी भयानक अन्धकारके समुद्रमें निमग्न-सी थी।

और, सामने किसीकी चिता जल रही थी।

बिजली जो कभी चमक जाती, तो सारा श्मशान खिलखिलाकर हंस पड़ता।

नदीमें बाढ़ आ गयी थी। उस पार, मीलों तक अजगर-की तरह जल-राशि फैल गयी थी और छोटी-छोटी लहरें तटसे टकराकर, बच्चोंकी तरह रो रही थीं।

दिनके नग्न प्रकाशमें भी, जो प्रभात यहां आनेका कभी साहस नहीं करता, आज निर्भय नदीके तटपर बैठा है। और पास ही वह पीपलका पेड़ प्रेतकी तरह खड़ा है, जिसके विषयमें उसने गांवके लोगोंसे, अनेक भौतिक अद्भुत कहानियां सुनी थीं।

परन्तु आज जैसे उसे कुछ याद ही नहीं!

रातके ग्यारह बजे थे। घरके लोग रो-धोकर सो चुके थे। भोजन तो उसे करना ही नहीं था। चुपचाप बिछावनपर लेट रहा। लेकिन नींद नहीं आयी।

सारा मकान सांय-सांय कर रहा था। ये दीवारें, ये खिड़कियां, ये किताबें.....जैसे सब उसे काट खानेके लिए दौड़ती हों! डरकर उसने लालटेन बुझा दी।

कोई भी दिन ऐसा नहीं गया, जब वह खानेके लिए हठ न करती हो। भोजन तैयार हुआ नहीं कि नौकर पहुंच गया—“बहुरानी बुला रही हैं!” जरा-सी छींक भी आयी, तो फौरन किसीको भेज दिया—“जाओ, डाक्टरको बुला लाओ!” कपड़े मैले हो गये, तो धोबीकी याद उसे आयी। हजामत नहीं बनायी, तो फिक्र उसे हो गयी। किताबोंपर धूल जम गयी, तो बुरा उसे लगा।

विमलाकी सेवास प्रभात परेशान था।

लेकिन आज विमलाकी हंसी उसके कमरेमें नहीं गूंजती। वह भूखा सो गया है, विमला आकर इतना भी नहीं पूछती कि तबियत कैसी है?

शाम हो गयी थी। पश्चिमके दिगन्तमें दिनकी चिता जलकर, बुझ भी चुकी थी। और सूरजको किसीने ढेलकर, अथाह समुद्रमें फेंक दिया था।

और इधर भी एक चिता जलनेको तैयार थी। प्रभातने पत्थरके हाथोंसे उसमें आग लगायी। क्षण-ही-भरमें लकड़ियोंके ढेरसे नीली-नीली लपटें निकलने लगीं। और एक विचित्र गन्धसे आसपासकी हवा भर गयी थी।

नदीके पानीसे, सिर निकालकर कुछ कछुओंने देखा था और फिर छप!.....पल-भर जल चञ्चल हो उठा। किनारे, मछुओंने जाल फेंका; मछलियां छटपटाकर उसमें फंस गयीं।

तब नावकी पालें गिर चुकी थीं। चारों तरफ काफी अंधेरा फैल गया था। सुनसान मरघटमें चिता चट-चट कर रही थी। अन्धकारमें प्रकाश और भी तीव्र हो उठता है।

प्रभात विषण्ण-सा बैठा था। शरीरमें शुभ्र वस्त्र, कण्ठमें सूतकी माला और वह देख रहा था, पुष्पोंकी शय्यापर भी जिसे कष्ट होता, चांदनी भी जो सह नहीं सकती,.....यह देह, क्या वही है?

लोगोंने उसे खींचा था—“आखिर, कब तक बैठे रहोगे इस तरह? चलो भी तो!”

लेकिन प्रभातने मानो सुना ही नहीं। वह जड़ हो गया था।

“अरे, भाई!” तब किसी वृद्धने आगे बढ़कर उसे आश्वासन दिया था—“जवान आदमी हो। तुम्हें फिक्र क्या? औरत भी तो नहीं, जो विधवा हो जाते। अभी उम्र ही क्या है? एक गयी, दूसरी आ जायगी। कौन वह इन्द्र-सभाकी परी थी, जो...”

प्रभातको लगा, जैसे किसीने उसके कलेजेमें जबर्दस्त घूंसा मारा हो। वह तिलमिला उठा। गुस्सा आया, मगर पी गया। बस चलता, तो वह उसे उठाकर नदीमें फेंक देता। लेकिन प्रसङ्ग कुछ दूसरा ही था।

(२)

और तब प्रभातको मालूम पड़ा, जैसे किसीने उसे झुकारा। वह चौंक उठा। पूछा—“कौन ?”

“बाह, इतना जल्द भूल गये ?” उसने कहा—“मुझे नहीं पहचानते क्या ?”

हां, हां। तीसरे पहर तक ही तो।

बीमार थी विमला। पिछले कई महीनोंसे उसकी तन्दुरुस्ती दिन-प्रतिदिन खराब होती जा रही थी। फिर भी, वह प्रसन्न रहनेकी कोशिश करती। प्रभात उसकी इस कोशिशको समझ गया था। लेकिन वह करता ही क्या ? शरीरसे अस्वस्थ होते हुए भी जब विमला होठोंपर बलात् एक फीकी मुस्कान लानेकी चेष्टा करती, तो न जाने किस भयसे प्रभात सहम उठता।

विधाताके विरुद्ध मानवके सारे प्रयत्न निष्फल हुए। प्रभात अपनी सम्पूर्ण शक्तिका प्रयोग करके भी, विमलाको स्वस्थ नहीं देख सका। उसे विश्वास नहीं था कि इतना शीघ्र वह दिन आ जायगा। परन्तु आदमी जो सोचता है, वह नहीं होता ; और जिसे वह बिल्कुल नहीं सोचता, वही हो भी जाता है।

और एक दिन विमला सचमुच चली गयी।

तब प्रभातकी आंखें खुलीं। उसने चकित होकर देखा... विमला ही तो !

“हां, हां। मैं ही हूं। तुम यहां हो ?...अरे, उठो भी। क्या पड़े हो ? मैंने एक नया घर बसाया है। देखोगे नहीं उसे ?...चलो तो !”

प्रभात घबराकर उठ बैठा। कमरेमें किसीकी आहट सुन पड़ी। दौड़कर दरवाजा खोला। बाहर जैसे कोई खिलखिला उठा। उसने देखा, जैसे किसीने हाथका इशारा दिया—“इधर आओ न.....डरते क्यों हो ?... इतना जल्द भूल गये ?...मुझे पहचानते क्यों नहीं ?...अजी, मैं हूं विमला !”

कोई छाया-सी आगे बढ़ी और तीरकी तरह प्रभात उसके पीछे निकला।

“तुम क्या समझते हो कि विमला मर गयी?... छि: ! छि: ! ऐसे अमङ्गलकी कल्पना न करो।.....पागल तो नहीं हुए हो ?” मरघटका पीपल ‘सर-सर’ कर उठा और वह छाया भी कहीं अदृश्य हो गयी।

सूची-भेद्य अन्धकार। श्मशान। पेड़पर उल्लू बोला। और प्रभात घम्म-से वहीं बैठ गया। दौड़ते-दौड़ते वह थक गया था। वह हांक रहा था। गांवसे करीब एक कोस वह निकल आया। आधी रातमें, अकेले.....

और चिता तब भी जल ही रही थी। जली-अधजली लकड़ियां इधर-उधर बिखर गयी थीं। और हवाके झोंके उन चिनगारियोंसे खेल रहे थे।

झोंगुरोंकी झनकार अंधेरी रातके सन्नाटेको जैसे चीर रही थी। आसमानमें बादल लटक आये। दूर, आमके बगीचे-में कोई जड़ली चिड़िया जोरसे चहचहा उठी।

और फिर अखण्ड शान्ति। सिर्फ, कभी-कभी जो किनारे-से मेढक उछलकर पानीमें गिरते, तो आवाज होती—छप् !

(३)

अबकी बार, प्रभातने देखा, जलती लकड़ियोंको हटाकर चितासे कोई बाहर निकल रहा है। सिरके बाल खुले हैं। लेकिन पीछेकी तरफ संवारे हुए, चमेलीके तेलसे युगन्धित। नीले रङ्गकी साड़ी, हरा जम्पर,.....और मांगमें सिन्दूर !

प्रभात एकटक उसकी ओर देखने लगा।

वह जो कोई नारीकी मूर्ति थी, धीरे-धीरे चलकर उसके पास आयी। और आकर ठीक उसके आगे खड़ी हो गयी।

प्रभात जैसे, पत्थर !

“आज मैं जा रही हूं।”

“कहां ?”

“बहुत दूर..... अपने प्रियतमके पास !”

“और मैं क्या तुम्हारा प्रियतम नहीं ?”

“हो क्यों नहीं ? लेकिन,....”

“क्या उसे बतानेमें कोई हानि है ?”

“शरीरपर तुम्हारा अधिकार था, लेकिन मनपर तो उसीका.....”

“मैं नहीं समझा।”

“तो, यों समझो कि तुम्हारा शरीर जलकर भस्म हो गया। लेकिन उसके मनका राज्य अभी भी...”

“यह पहेली है।”

“जो हो, समाजने मेरे भाग्यको तुम्हारे पैरोंमें बांधा। परन्तु प्रेम तो उसीको...”

हां, प्रभातसे यह भेद छिपा नहीं था। उसे अच्छी तरह मालूम था कि विमला प्रदीपको चाहती है। और प्रदीप भी उसको प्यार करता था। मगर प्रभातने जान-बूझकर...

जान-बूझकर उसने गलती की। विमला रूपवती थी। यौवन था। सुहचि थी। आधुनिक महिलाओंकी जागरूकता थी। परन्तु नारीकी उन रहस्यमयी प्रवृत्तियोंसे वह अनभिज्ञ था, जो पुष्पमें कीटके समान उसके हृदयमें निरन्तर वास किया करती हैं!

प्रदीपकी स्पर्धा...प्रभातकी शक्तिको रणक्षेत्रमें ललकारा। तहण प्रभात, तेजस्वी प्रभात, वैभव-शाली प्रभात, पीठ दिखाता?... डूब मरनेकी बात थी। पिताके सम्मुख विमलाका मुंह बन्द हो गया। विजय प्रभातकी ही हुई। प्रदीप हार गया।

परन्तु प्रभात विजयी होकर भी पराजित हो गया और प्रदीप पराजित होकर भी विजयी हुआ। राजा प्रजापर राज करता है, प्रजाके मनपर नहीं। विमलाके शरीरका शासक प्रभात हो गया। परन्तु हृदय जिसको एक बार दे दिया जाता है, उससे फिर वापस कौन लेता है?

फिर भी, प्रभात समझता, मैं खुशी हूँ और यह जो उसकी जीवन-सङ्गिनी विमला है, वह भी खुशी है। और वास्तवमें, प्रत्यक्ष रूपसे अपने व्यवहारमें विमलाने कभी ऐसा भाव प्रदर्शित नहीं होने दिया, जिससे प्रभातको तनिक भी कष्ट हो!

वह निरन्तर हंसती, सदैव प्रसन्न रहती और हमेशा अपने पतिको खुश रखनेकी कोशिश करती।

किन्तु मनपर तो विमलाका भी अधिकार नहीं था। नदीमें जो धेग है, वह स्वयं उसके वशमें नहीं।

वह हंसती, बोलती; खाती, खेलती; चलती, फिरती; घरके कामकाज करती; सहेलियोंसे मिलती-जुलती। परन्तु विवादका जो विष-कीटाण उसके प्राणोंमें घुस चुका था, उसे कैसे बाहर निकाल देती?

और वे विषैले कीटाणु दिन-प्रतिदिन उसके शरीरका रक्त शोषण करने लगे। धीरे-धीरे उसके मस्तिष्कपर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ने लगा। जीवन-शक्ति क्षीण होने लगी। रोगोंका आक्रमण हुआ। विमलाने भरसक सामना तो किया; लेकिन विष खाकर बिलकुल पचा देना जरा

मुश्किल है। सामर्थ्य-भर उसने खड़ी रहनेकी चेष्टा की सही; मगर एक दिन लाचार होकर उसे चारपाईकी शरण लेनी ही पड़ी।

और, तब...

(४)

“यह जो सामने चिता जल रही है, किसकी है? तुम क्या खयाल करते हो कि यह आज ही जली है? पागल, यह चिता दो साल पहलेसे जल रही है। आज तो यह जलकर बुझ भी गयी है!..... जिसे तुम देख रहे हो, यह तो जङ्गलकी सूखी लकड़ियां हैं। उसमें भी तुम्हींने आग लगायी थी और इसमें भी..... मगर इस चितामें जलनेवाले व्यक्तिके प्राण कहां हैं? हृदय कहां है? मन कहां है? अरे, आज तुमने एक शवको.....मृतकको.....निर्जीव पदार्थको फूंक दिया, तो दुनिया-भरकी कहणा और आंसू लेकर बैठ गये। मगर, उस दिनकी बात तो याद करो। एक जीवित प्राणीको, जिसके श्वास बन्द नहीं हुए थे, जिसके वक्षका स्पन्दन रुका नहीं था; जिसके हृदयमें नाना प्रकारके अरमान भरे थे, जिसके कण्ठमें कोमल वाणी थी, जिसके अधरोंपर मधुर हास था और जो संसारके किसी भी जीवित व्यक्तिके समान चल-फिर सकता था,.....तुमने प्रज्वलित चिताकी ज्वालामें फेंक दिया। हां, तुम्हींने फेंक दिया। उस दिन तुमको दया नहीं आयी। आज तुम बड़े दयालु बन गये हो। क्यों, ठीक है न? हां, यह सच है कि इस तरह उस चिताकी आगमें किसीके केश नहीं जले थे, अङ्ग नहीं भस्म हुए थे, देह नहीं दग्ध हुई थी; परन्तु वह प्रेम,...वह भाव,...वे इच्छायें...वे लालसायें,...और वे यौवनको उल्लती हुई उमङ्गें, जीवनकी तड़पती हुई प्यास,...प्राणोंकी अकुलाती उत्कण्ठा...! और यह पार्थिव शरीर भी क्यों नहीं जला?... जल तो गया। नहीं तो आज यह निरर्थक स्वांग रचनेकी क्या जरूरत थी?”

प्रभात सोचता, ठीक तो है। यदि वह चाहता, तो अपने इस विवाहको रोक सकता था। संसारमें युवतियोंका अभाव नहीं। रूपकी भी कमी नहीं। क्या होता, यदि विमलाकी शादी प्रदीपके साथ ही होती? वह विमलाके पितासे साफ कह देता, महाशय! आप दूसरा वर तलाश कर लीजिये। मैं अभी विवाह नहीं करना चाहता।

लेकिन, ...यह जो प्रदीप। उसे अभिमान था, विमला उसीको प्रेम कर सकती है। और फिर मेरे भी तो हृदय है! मैं आदमी हूँ। क्या मुझमें कमजोरियाँ नहीं हो सकतीं। विमला यदि चाहती, तो, क्या...उसे प्यार नहीं कर सकती थी?

लेकिन वह चाहती ही क्यों?...प्रदीपका अभिमान सत्य था। और मैं?...

“मैं अपराधी हूँ। मुझे क्षमा करो।”

चितामें जैसे किसीकी खिलखिलाहट गूँज उठी। और कुछ बूँदा-बूँदी भी शुरू हो गयी। जङ्गलमें गीड़ोंके झुण्डने भयानक शोर किया।

(९)

“तुमने इतने दिनों तक क्यों इस रहस्यको छिपाया?”

“क्या तुम्हें यह बात मालूम नहीं थी?”

“थी तो; मगर इस रूपमें नहीं।”

“वह रूप कौन-सा था?”

“यही कि अब भी तुम प्रदीपको उसी दृष्टिसे देखती हो, जिस दृष्टिसे विवाहके पहले।”

“लेकिन यह बात मैं तुमसे क्यों कहती?”

“मैं तुम्हें इसका अवसर देता।”

“झूठ!...बिल्कुल झूठ!”

“कैसे?”

“मैं बताऊँ?...बुरा तो नहीं मानोगे?”

“नहीं।”

“तुम अपने दोस्तोंको खत लिखते हो न?”

“जरूर।”

“फिर मेरे भी दोस्त हैं। मैं उन्हें अगर खत लिखूँ, तो तुम्हें नाराज तो न होना चाहिए।”

“भला इसमें नाराज होनेकी कौन-सी बात है?”

“लेकिन एक बार तुमने मुझे मना किया था कि प्रदीपके पास चिट्ठियाँ मत लिखा करो। और मैं मान भी गयी थी।”

“हाँ।”

“तो, छुनो। एक दफे उसने अपनी यह भी इच्छा प्रकट की थी कि मैं विमलासे मिलना चाहता हूँ। तुमने मेरी राय पूछी। मैंने कहा था, जो तुम्हारी खुशी। और तुमने

उसका आना रोक दिया था। मैंने इसपर भी कोई एतराज नहीं किया। याद है न?”

“हाँ, याद है। लेकिन,...”

“मैं उसे भी समझती हूँ। तुम्हारे मनमें जो है, मैं जानती हूँ। और उसे भी छुनो। मैं कहती हूँ। अपने साथ तुम मुझे लखनऊ ले गये थे। वहाँ, रातमें किसी होटलमें ठहरे थे। संयोगकी बात, उसी दिन प्रदीप भी कहींसे आकर उसी होटलमें ठहर गया था। तुम उस वक्त नहीं थे। प्रदीपसे मेरी भेंट हो गयी। बहुत दिनोंके बाद मिले थे। मैं अपनेको रोक नहीं सकी। बहुत चाहा कि छतपरसे नीचे कूद पड़ूँ!... या कमरेमें वन्द हो जाऊँ! लेकिन प्राण मेरे बसमें नहीं थे। उसने सिनेमा चलनेके लिए अनुरोध किया। मैं फिर हार गयी। तुमसे बिना पूछे, मैं चुपचाप सिनेमा देखने चली गयी। वहाँसे लौटी, तो तुमसे झूठ बोलना पड़ा। लेकिन मैं तब भी समझ रही थी कि शायद तुम जान गये। तुमने कुछ कहा नहीं। मगर उस रात मुझे नींद न आयी। तरह-तरहके खयाल मेरे दिमागमें चक्कर काटते रहे। सुबह उठी, तो जी जरा भारी था। प्रदीप तड़के ही होटल छोड़कर चला गया था। और हम लोग भी दो-एक रोजके बाद लौट आये थे।”

“तुमने नहीं कहा। मगर मैं इस बातको जानता था।”

“किससे पता लगा?”

“अपने एक दोस्तसे। वह प्रदीपको पहचानता था। प्रदीपके साथ ही उसने तुम्हें भी देखा। लेकिन पहचाना नहीं। मेरे दोस्तने पहले खयाल किया था कि वह प्रदीपकी ही पत्नी है। किन्तु बातचीतके सिलसिलेमें स्वयं प्रदीपने बतलाया कि वह उसके किसी घनिष्ठ मित्रकी स्त्री है। और मुझे यह जानते देर नहीं लगी कि उसका वह घनिष्ठ मित्र मेरे सिवा और कोई नहीं।”

“ओह!...तो तुमने उसी वक्त मुझे क्यों नहीं फांसीपर लटका दिया?”

“ऐसा मत कहो। मैं तुम्हें क्या प्यार नहीं करता? मैं तुम्हारा स्वामी नहीं, प्रेमी भी नहीं, तो साथी जरूर ही था। साथी जरूरत पड़नेपर किसीको रोक सकता है; दण्ड देनेका उसे अधिकार नहीं।”

“नहीं, नहीं; तुमने भूल की।”

“हां, भूल की। मगर इसलिफु नहीं कि तुम्हें रोका। वरन् सिर्फ इसलिफु कि तुम्हारे प्रेम और मनपर बलात् अधिकार जमाना चाहा।”

“मगर वह रास्ता गलत था।”

“जो हो; अब तो जान पड़ता है, जैसे वही रास्ता सही हो।”

“हे ईश्वर! मुझे नरकमें भी ठिकाना न मिले। मैं सचमुच अपराधिनी हूँ, स्वामी!”

(६)

“मैं अपराधी हूँ, प्रभात!”

टार्चकी तेज रोशनीमें प्रभातकी आंखें चौंधिया गयीं। वह कुछ उखड़ा-उखड़ा-सा सोच ही रहा था कि किसीने सहसा उसके कंधेपर अपना हाथ रखा—“मैं आ गया।”

“कौन?...प्रदीप?” प्रभातने आश्चर्यसे पूछा—“इस वक्त कैसे?”

“विमलाकी चिट्ठी मिली थी...आज ही तो। लिखा था, वच नहीं सकती। एक बार आ जाते, तो.....। कहो, वह कैसी है?”

“वह, वहां देखो...चितापर है।” प्रभातने इङ्गित किया—“जाओ, मुलाकात कर लो।”

“जाने दो।” एक दीर्घ श्वास लेकर प्रदीपने कहा—“मैं लौट जाऊंगा।”

“तुम कुछ देरसे आये, क्यों?”

“हां।...इससे जल्द मैं आ भी तो नहीं सकता था। ...तो, तुम यहां बैठे क्या कर रहे हो?”

“कुछ भी नहीं।...यों ही निकल आया था।”

“मालूम है, ...यह श्मशान है।”

“और वहां चिता भी जल रही है।”

“तुम्हें डर नहीं लगता?”

“छि:!”

“उसे भूल नहीं सकते?”

“लेकिन मैं उसे प्यार करता था, प्रदीप!”

प्रदीप चुप।

“अच्छा हुआ, तुम आ गये।”

“प्रभात, यह दुनिया ही मरघट है। दिन-रात चिता जलती है। और हम प्रतिक्षण जलते हैं।”

“बारिश शुरू हो गयी थी। बड़ी-बड़ी बूंदें टप-टप करने लगीं।

“प्रेम एक महंगा सौदा है, प्रभात।”

“होगा। लेकिन तुम कौन होते हो, जो यह बेवक्तकी शहनाई बजाते हो?”

“क्या इस सौदेमें मेरा हिस्सा नहीं था?”

हां, था तो। प्रभात इस बातको इनकार नहीं कर सकता। संवारने उसे धोखा दिया, वह क्यों किसीको धोखा दे?

दीपक घरको उजेला कर सकता है और चाहे, तो घरमें आग भी लगा सकता है। बाहरके चोरको तो दीवालमें सेच भी मारनी पड़ती है, लेकिन मनके चोरका पता किसने पाया?

“तो, क्या अब तुम्हें जीवनमें शान्ति नहीं मिलेगी?”

“मिलेगी क्यों नहीं? यही तो मैं भी कहना चाहता हूँ। जिस दिनसे लोगोंने शवोंको पूजना शुरू किया है, उसी दिनसे मानवकी आत्मा कुण्ठित हो गयी है! तुमने पढ़ा है, संसारकी शक्ति परिमित है। सागरकी गम्भीरता जिस प्रकार निश्चल है, उसी प्रकार इस शक्तिका न विकास होता है, न विनाश। सृष्टिके प्रथम क्षणसे प्रलयके अन्तिम प्रहर तक यह शक्ति ज्योंकी त्यों बनी रहती है।”

“और विमलाकी मृत्युसे जो स्थान रिक्त हुआ है, उसकी पूर्ति.....?”

“विमलाको भूल जाओ। वह देखो, विश्व-सागरके तटपर असंख्य नर-नारियोंका क्रीड़ा-कलरव, प्रेम-कुतूहल, आनन्द-विलास, ...क्या इनमें तुम्हें कुछ रस नहीं मिलता!...ये विनोदिनी युवतियां.....ये हास्यमयी बालिकायें.....और ये.....”

नहीं छन सकता। प्रभात इन बातोंको नहीं छन सकता।

“उठो, अब घर चलो।”

“मेरा कण्ठ सूख रहा है।...चलूंगा। जरा ठहरो।”

“सिगरेट पीओगे, प्रभात?”

“कोई हर्ज तो नहीं?”

प्रदीपने सिगरेट-केस निकालकर प्रभातके हाथमें रख दिया—“पागल मत बनो।”

“लेकिन दियासलाई?”

प्रदीपने पाकेटमें हाथ दिया, मगर मिली नहीं ।
 “दूहरो, मैं आग ले आता हूँ !”
 प्रदीप गया, लेकिन तब तक चिता ठण्डी हो चुकी थी ।
 बच गयी थी मुट्ठी-भर राख.....
 प्रभातने हँसकर कहा—“चलो, घर चलें.....इस रात-
 में...तुम लौट नहीं सकते, प्रदीप !”
 लेकिन तब तक प्रदीप दूर, बहुत दूर निकल गया था ।

श्मशानकी निस्तब्धताको भेदकर एक व्याकुल स्वर गूँज
 उठा—“ओ, प्रदीप !” लेकिन, किसीने जवाब नहीं दिया ।
 प्रभातने सिगरेट वहीं फेंक दी ।
 जोरकी हवा चली, भूसलाधार पानी बरसने लगा और
 पीपलका पेड़ खिलखिला उठा ।
 और, प्रभात वहाँ अकेला था ।

स्वप्न-गीत

सपनोंकी मैं तसवीर बना, मानसके फूल चढ़ाता हूँ
 केवल अपने अभिशापोंसे अपना संसार बसाता हूँ

जग सह न सका मेरा हँसना
 यह सह न सका मेरा रोना
 मेरी छायासे कांप उठा
 इस आंगनका कोना - कोना
 तब अपने निश्वासोंमें ही निज गीत छिपाकर गाता हूँ
 सपनोंकी मैं तसवीर बना मानसके फूल चढ़ाता हूँ
 जगको अस्तित्व किया अर्पित
 अर्पितकी आशा - अमिलाषा
 अर्पित करता ही जाता हूँ
 दृग - जलमें अन्तरकी भाषा
 फिर भी यह पृष्ठ रहा मुझसे, मैं किसको शीश झुकाता हूँ
 अपने सपनोंकी मैं केवल मानसके फूल चढ़ाता हूँ
 ये सपने भी प्रतिपल मुझसे
 जाने क्यों दूर हुए जाते
 मैं पूज रहा इनको, केवल
 मानव कहलानेके नाते
 सपनोंकी छायामें क्षणभर निज आकुल प्राण जुड़ाता हूँ
 केवल अपना कह लेनेको अपना संसार बसाता हूँ

जगमें उतना सन्देह भरा
 मुझमें है जितनी आकुलता
 जगमें अभिमान भरा उतना
 जितनी है मुझमें असफलता
 केवल साहस दिखलानेको मैं पांव बढ़ाता जाता हूँ
 अपवाद बनानेको सम्भव बालूकी भीत उठाता हूँ
 इन आंखोंपर इतनी आंखें
 इन सांसोंपर सांसें इतनी
 इस आंगनकी चेतनता भी
 बस, मिट्टीकी दीवार बनी
 कांटोंके बीच खड़ा होकर भी तो मैं राह न पाता हूँ
 केवल मनको समझानेको पद-चिह्न बनाता जाता हूँ
 मैं देवालय जाता केवल
 दुनियाको धन्य बनानेको
 खोला करता आंखें अपनी
 जीवनकी ज्योति जगानेको
 आश्चर्य सभी करते इतनी मैं ज्योति कहाँसे लाता हूँ
 मैं निर्धन अपने भावोंका अपना संसार बसाता हूँ

जितना कोलाहल करता जग
 जितना आंखें मुंदवाता है
 मेरे उका आलोक स्वयं
 उतना ही बढ़ता जाता है

मैं मौन, मुक्तामें अपनी जयका संवाद सुनाता हूँ
 इस जन-संकुल पगडण्डीपर जब एकाकी हो पाता हूँ

युद्ध और भारतका उद्योग-व्यवसाय

श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०

युद्धके दिनोंमें सभी राष्ट्रोंका ध्यान अपने-अपने उद्योग-धन्योंपर केन्द्रित हो उठता है। युद्ध छिड़नेपर न केवल विपक्षी दलके देशोंके व्यापार और उद्योग-धन्योंपर असर पड़ता है, बल्कि अन्य देशोंकी तिजारतपर भी काफी धका पहुंचता है।

इसीलिए वर्तमान युद्धके छिड़ते ही हमारे देशमें चारों ओरसे आवाजें आने लगीं कि इस अवसरको हाथसे जाने नहीं देना चाहिए—हमें एक सुसङ्गठित तरीकेपर तरह-तरहके उद्योग-धन्योंके कारखाने खोलने चाहिये। देशके अन्दर नये-नये कारखाने और उद्योग-धन्ये शुरू करनेमें सबसे बड़ी अड़चन होती है विदेशी मालकी प्रतियोगिताकी। किन्तु अब, युद्ध छिड़ जानेपर विदेशी मालका आना एक तरहसे बन्द हो गया है। जापान चीनके साथ उलझा हुआ है; इङ्ग्लैण्ड, फ्रान्स, आस्ट्रेलिया वगैरह हिटलरकी लगायी हुई आगके बुझानेकी फिकमें हैं। अतः भारतकी तिजारत अब स्वदेशी मालके लिए बहुत कुछ सहज है। अतः इस दिशामें हमें सावधानी और सतर्कतापर जरा वेगसे चलनेकी आवश्यकता है।

औद्योगीकरणकी राष्ट्रीय योजना—कांग्रेसी सरकारोंके उद्योगसे पिछले साल भारतके औद्योगीकरणके लिए एक व्यवहारिक योजना बनानेके लिए कमेटी भी नियुक्त की गयी थी। इस कमेटीने काफी लगन और परिश्रमके साथ काम किया है और आशा की जाती है कि शीघ्र ही इस कमेटीकी ओरसे विसृत योजना तैयार की जायगी। इस कमेटीको न केवल कांग्रेसी प्रान्तोंका, बल्कि मैसूर तथा अन्य कई प्रगतिशील दृष्टिकोण रखनेवाली रियासतोंका भी सहयोग प्राप्त है। इन रियासतोंने कमेटीके कार्य-सञ्चालनके लिए पर्याप्त मात्रामें धन भी प्रदान किया है।

इस सिलसिलेमें इस बातका ध्यान रखना जरूरी है कि यह कमेटी गैर-सरकारी रूपसे बनायी गयी है। निस्सन्देह इस कमेटीकी सिकािशें कांग्रेसी प्रान्तोंके लिए मान्य होंगी, किन्तु पञ्जाब, बङ्गाल आदिका सहयोग हम कदाचित् ही प्राप्त

कर पायें। फिर इस किस्मकी किसी भी योजनाको अखिल भारतीय पैमानेपर कार्यान्वित करनेके लिए केन्द्रीय सरकारके पूर्ण सहयोगकी भी जरूरत होगी। किन्तु दिल्लीकी मौजूदा सरकारपर हमारा किसी भी प्रकारका नियन्त्रण नहीं है, इसलिए अभी नहीं कहा जा सकता कि उक्त समिति-की बनायी हुई औद्योगीकरणकी योजनाको भारतसरकार कहां तक स्वीकार करेगी।

उन्नतिके क्षेत्र—उद्योग-व्यवसायके प्रत्येक क्षेत्रमें काफी प्रगति इस मौकेपर हासिल की जा सकती है। कपड़ेकी मिलोंमें इस्तेमाल की जानेवाली मशीनोंके पुर्जे बनानेके लिए एक फैक्ट्री खोलनेकी स्कीम बम्बईमें सोची जा रही है। रासायनिक चीजें, तेजाब, कास्टिक सोडा वगैरहके लिए भी अच्छी गुंजायश है। क्योंकि ये चीजें युद्ध-स्थलमें काम करनेवाली चीजोंके तैयार करनेमें इस्तेमाल की जाती हैं।

निस्सन्देह लोहेके व्यापारकी उन्नति भी काफी होगी। शिमलेमें भारतके लोहेकी फैक्ट्रियोंके मालिकोंकी एक कान्फरेन्स भी वायसरायने बुलायी थी। गवर्नमेण्टकी योजनामें यह भी है कि शीघ्र ही रेलके इञ्जिन भी भारतमें तैयार किये जायें।

टेलीफोन और टेलीग्राफमें इस्तेमाल होनेवाले पुर्जे और तार वगैरहके बनानेका भी आयोजन हो रहा है।

कागजकी अनेक फैक्ट्रियां हमारे देशमें हैं। किन्तु सस्ते दामपर अखबारी कागज अभी तैयार नहीं हो पाया है। और किसी फैक्ट्रीने इस तरहके कागज तैयार करनेकी हिम्मत भी नहीं की; क्योंकि विदेशी कागजके मुकाबलेमें उनके कागजपर लागत बहुत बँट जाती है। किन्तु अब बाहरसे कागजका आना बन्द है। अतः अखबारी कागजका दाम चढ़ गया है। इस अवसरपर अखबारी कागजके तैयार करनेका कारबार शुरू किया जा सकता है। जब कुछ दिनोंके बाद इस व्यवसायके पांव मजबूत हो जायेंगे, तो विदेशी प्रतियोगिताको भी यह सह लेगा।

सिनेमा-व्यवसायको भी इस स्वर्ण-अवसरसे लाभ उठानेसे चूकना नहीं चाहिए। गत पचीस वर्षके भीतर इस व्यवसायने आश्चर्यजनक उन्नति की है; किन्तु टेक्निकल लाइनमें हमारी सिनेमा कम्पनियोंको जर्मनी, इंग्लैण्ड वगैरह-के ऊपर ही आश्रित रहना पड़ता है। अब जर्मनीके फिल्म यहां फोटोग्राफीके लिए मंगाये नहीं जा सकते, और भारतका मौजूदा स्टूक मुश्किलसे दो-तीन सालके कामके लिए काफी होगा। ऐसी हालतमें फोटो उतारनेके लिए फिल्म तैयार करनेका व्यवसाय बड़ी आसानीसे यहां चालू किया जा सकता है।

केन्द्रीय सरकार—अब देखना यह है कि इस मौकेपर हमारी केन्द्रीय सरकार क्या करने जा रही है। अखबारोंने हल्ला मचाया, व्यापार-सङ्घोंने प्रस्ताव पास किये और देशके बड़े-बड़े व्यवसायियोंने इस प्रश्नपर बहुत जोर दिया, तब कहीं जाकर केन्द्रीय सरकारने सरकारी व्यक्तियोंकी एक परामर्शदायिनी समिति इस कामके लिए तैयार की है, जो युद्धकालमें उत्पन्न हुई परिस्थितियोंमें पनपनेवाले उद्योग-धन्योंके सम्बन्धमें हर प्रकारके आंकड़े और जरूरी जानकारी एकत्र करेगी तथा लोगोंको समुचित परामर्श देगी।

औद्योगीकरणकी किसी भी योजनाको सफल बनानेके लिए इस बातका पता लगाना तो जरूरी ही है कि हमारे देशमें कौन-से कच्चे माल और किस मात्रामें पाये जाते हैं। साथ ही कल-कारखानोंके सञ्चालनके लिए सस्ते दामपर कहाँसे शक्ति हासिल की जा सकती है, इस प्रश्नपर भी ध्यान देना जरूरी है।

सञ्चालन-शक्तिका प्रश्न—प्रसिद्ध विद्वान् एमर्सनने एक बार कहा था, किसी राष्ट्रकी शक्ति इस बातपर निर्भर करती है कि उसके पास कितने व्यक्ति ऐसे हैं, जो बहादुरी और हिम्मतके साथ सत्य और आनके लिए भारीसे भारी कष्ट सह सकें। किन्तु अब इस वैज्ञानिक युगमें राष्ट्रकी शक्ति उसके कल-कारखानोंकी शक्तिमें निहित है। इन कल-कारखानोंकी बढ़ौलत वह अनगिनत मशीनगर्नें, शोषें, डैड्ड, बम बरसानेवाले हवाई जहाज तैयार कर सकता है तथा अन्य देशोंके आर्थिक शोषणके लिए सस्ते दामपर हर तरहका माल भी तैयार कर सकता है।

प्रकृतिकी भिन्न-भिन्न वस्तुओंमें निहित शक्तिको काबूमें करके मनुष्यने उससे मनमाना काम कराया है। प्रकृतिके

रहस्योद्घाटनमें मनुष्य ज्यों-ज्यों सफल हुआ है, त्यों-त्यों उसकी सम्यताने भी आगेको कदम बढ़ाया है। पहले तो मनुष्योंको स्वयं अपनी रूनायुओंका ही भरोसा था। फिर उसने अपनेसे कमजोर आदमियोंसे काम लेना शुरू किया। समयकी प्रगतिके साथ उसने चौपायोंको वशमें किया और तब हवाकी शक्तिको बांधा और बहते हुए पानीके जोरसे चक्रियोंको चलाना सीखा। किन्तु इन तमाम तरीकोंसे बड़ी मिकदारमें मनुष्यको शक्ति हासिल न हो सकी।

पत्थरके कोयलेमें दबी हुई सूर्यकी शक्तिका इस्तेमाल करना जब लोगोंको मालूम हुआ, तो मनुष्यके कारबारमें एकदम क्रान्ति-सी आ गयी। जगह-जगह कल-कारखाने खुल गये। कृषिके अलावा एक नये पेशेका जन्म हुआ।

कल-कारखानोंके सञ्चालनके लिए शक्ति हासिल करनेका एकमात्र साधन पिछली शताब्दीके अन्त तक कोयला था। किन्तु विद्युत्की ईजादने उद्योग-धन्योंके लिए एक नवीन तथा श्रेष्ठतर शक्ति सलभ बना दी।

कोयलेके बलसे चलनेवाले भापके इंजिनोंकी अपेक्षा कोयलेसे ही पैदा की गयी विद्युत्-शक्ति कई मानोंमें श्रेष्ठ साबित होती है। बिजलीकी शक्ति आसानीसे तार द्वारा एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जायी जा सकती है, इच्छानुसार कम-बेश मात्रामें इस शक्तिका इस्तेमाल कर सकते हैं। तथा बिजलीसे चलनेवाली कलोंके सञ्चालनके लिए किसी विशेषज्ञकी जरूरत नहीं पड़ती। मशीनके सञ्चालकको बस स्विच खोलने और बन्द करने-भरका ज्ञान होना चाहिए। फिर बिजलीकी शक्तिसे चलनेवाली मशीनोंमें न तो कोई ज्यादा आवाज ही होती है और न किसी प्रकारकी बदबूदार गैस ही उसमेंसे निकलती है। अतः बस्तीके बीचमें ये मशीनें फिट की जा सकती हैं, क्योंकि ये जगह भी कम घेरती हैं।

फिर पानीके झरनोंसे भी बिजली बड़ी आसानीके साथ हासिल की जा सकती है। दस फीट ऊंचा झरना भी हमें प्रचुर मात्रामें बिजलीकी शक्ति प्रदान कर सकता है।

विशेषज्ञोंका कहना है कि उद्योग-धन्योंके लिए विद्युत्-शक्ति ही सबसे अधिक मौजू होती है। पश्चिमके सभी देशोंने इस नूतन शक्तिकी महत्ताको पहचाना है, और उन्होंने भिन्न-भिन्न तरीकोंसे मशीनोंके सञ्चालनके लिए बड़े पैमानेपर बिजलीकी शक्ति उत्पन्न भी की है।

सोवियट रूस—इस सिलसिलेमें सोवियट रूसपर भी हम दृष्टि डालेंगे। क्योंकि क्रान्तिके पूर्वका रूस बहुत कुछ उसी हालतमें था, जिस हालतमें आजका खेतिहर-प्रधान देश भारत है। १९१८ में रूसकी ७० प्रतिशत जनता उजड़ु गंवार थी, और खेतीका पेशा करती थी। बिजली थोड़ी-बहुत जो लगी थी, वह महज अमीरोंके आसायशके लिए थी और अधिक मिकदारमें खर्च न होनेके कारण वह महंगी भी बहुत पड़ती थी।

फिर भारतकी ही तरह रूसकी भी खानें, ऊँचे-ऊँचे झरने और तेलके सोते या तो बेकार पड़े थे या विदेशी कम्पनियोंके हाथमें थे, जिनका एकमात्र उद्देश्य था ज्यादासे ज्यादा मुनाफा करना। राष्ट्रीका भला किस बातमें है, इसकी उन्हें मुतलक फिक्र न थी।

किन्तु १९१८ की महान् क्रान्तिके बाद ही लेनिनने रूसकी विज्ञान-समितिके जिम्मे रूसके औद्योगिक पुनर्निर्माणका काम सौंपा। उसने इस बातपर विशेष जोर दिया कि उद्योग-धन्धों, द्राम और रेलगाड़ियों तथा कृषिके धन्धोंमें बिजलीकी शक्ति इस्तेमाल की जाय। इसी आदेशके अनुसार १९२० में २०० वैज्ञानिकोंकी एक कमेटी बनायी गयी। इस कमेटीका नाम था गवर्नमेण्ट इलेक्ट्रिफिकेशन आव रशिया प्लान कमेटी।

लेनिनने खुले शब्दोंमें स्वीकार किया था—“रूसके आर्थिक पुनर्संरुद्धनकी योजनाका निर्माण इस कमेटीकी सिफारिशोंकी रोशनीमें ही किया जा सकता है। जब तक रूसके उद्योग-धन्धोंमें हम पर्याप्त वृद्धि नहीं कर लेते, तब तक राष्ट्रीय आर्थिक योजना और साम्यवादकी आशा करना व्यर्थ है। साम्यवादके मानी हैं श्रमिक वर्गके हाथमें रूसकी बागडोरका आना और समूचे देशमें विद्युत्-शक्तिका सुलभ होना।”

फलस्वरूप उक्त कमेटीने समूचे मुलककी पैमाइश की और वे इस नतीजेपर पहुँचे कि जहाँ तक पत्थरके कोयलेका सम्बन्ध है, रूसका स्थान संसारमें दूसरा है। और झरनोंकी जल-शक्तिमें तो रूसका स्थान संसारमें सबसे ऊँचा है। फिर तो देखते-देखते बिजलीके सैकड़ों विशाल पावर हाउस बन गये और १९२९ से १९३९ के बीचके दस वर्षोंमें विद्युत्-शक्तिका प्रयोग ६९० प्रतिशत बढ़ गया! सस्ती विद्युत्-शक्ति-

की बड़ौलत रूस-जैसा पिछड़ा हुआ देश भी एक प्रथम श्रेणीका कारोबारी मुलक बन गया।

किन्तु हमारे देशमें क्या हो रहा है?

शक्तिके साधन—विद्युत्-शक्ति प्राप्त करनेके लिए हमारे मुलकमें साधन न हों, ऐसी बात नहीं है। कुछ महीनों पहले इलाहाबादमें युक्तप्रान्तीय साइन्स एकेडमीकी एक कानफरेन्स इस प्रश्नपर गौर करनेके लिए बुलायी गयी थी। पं० जवाहरलालने भी इस कानफरेन्समें सभापतिकी हैसियतसे भाग लिया था। डाक्टर साहा-जैसे विद्वानोंने आंकड़ोंकी मददसे भली भाँति इस कानफरेन्समें साबित किया था कि भारतमें शक्ति प्राप्त करनेके लिए साधनकी कमी नहीं है।

बङ्गालमें प्रचुर मात्रामें कोयला मिल सकता है। और जहाँ कोयला कम दाममें आसानीसे मिल सकता है, वहाँ विद्युत्-शक्ति उत्पन्न करनेकी मशीनोंका अञ्चालन कोयलेके ही बलसे करना चाहिए। क्योंकि कोयलेसे चलनेवाले पावर हाउसकी मशीनरीकी लागत (प्रारम्भिक) बहुत कम होती है। तथा रोजमर्राका खर्च भी अधिक नहीं पड़ता। बङ्गाल, बिहारमें बिजली उत्पन्न करनेके लिए कोयलेको इस्तेमालमें लाना ही श्रेयस्कर है। किन्तु पूर्वी युक्तप्रान्त तक बिहारकी खानोंसे कोयला मंगानेमें काफी खर्च पड़ जाता है, अतः बनारस, इलाहाबाद, गोरखपुर आदि शहरोंमें बिजली महंगी पड़ती है। खानमें कोयला ३) प्रति टन पड़ता है, किन्तु वही बनारसमें रेलके भाड़ेकी वजहसे १४) प्रति टनके हिसाबसे बिकता है।

चूँकि उद्योग-धन्धोंके लिए शक्तिका सवाल एक राष्ट्रीय सवाल है, इसलिए कोयलेके लिए भाड़ेंमें कमी करानेके लिए गवर्नमेण्टको भी हस्तक्षेप करना जरूरी है। पूर्वी यू० पी० या बिहारमें रेलके भाड़ेंमें खास रियायत होनी चाहिए।

पञ्जाब, उत्तरी यू० पी०, आसाम तथा दक्षिण और पश्चिमी भारतमें पानीके अनेक झरने हैं, जो बांधकर बिजलीकी कल चलानेके काममें लाये गये हैं। कई साल पहले मैसूरमें कुछ अमेरिकन यात्री देशाटनके लिए आये हुए थे। उन्होंने मैसूरके दीवानसे कहा कि आप अपने यहांके पानीके झरनोंसे बिजलीकी शक्ति क्यों नहीं उत्पन्न करते? बस, दीवानके मनमें बात बैठ गयी। अमेरिकासे विशेषज्ञ बुलाये गये। इन लोगोंने शिवसुन्दरम् झरनेको बांधकर वहाँ एक

शक्तिशाली पावर हाउस बनाया तथा कुछ दिनों वहाँ टिककर उन्होंने भारतीय इंजीनियरोंको ट्रेनिङ दी। और अब पूरे पावर हाउसका इन्तजाम भारतीयोंके हाथमें है। शिव-सुन्दरम् झरनेका पावर हाउस नियाया हाइड्रो इलेक्ट्रिक पावर कम्पनीके अधिकारियोंकी देख-रेखमें तैयार हुआ था।

किन्तु इसके प्रतिकूल पञ्जाबमें मण्डी हाइड्रो इलेक्ट्रिक स्कीममें गवर्नमेण्टने पानीकी तरह रुपये भी बहाये और योजना भी कुछ विशेष सन्तोषजनक नहीं साबित हुई। पहले तो मण्डी स्कीमको पूरा करनेके लिए ३ करोड़ रुपयेका बजट पास हुआ। फिर यह बजट शैतानकी आंतकी तरह बढ़ता गया और आखिरमें ९॥ करोड़ तक पहुँच गया। और तिसपर तमाशा यह कि सालके कई महीनों तक झरनेमें पानीकी कमी होनेके कारण पानीसे चलनेवाला डायनेमा बेकार रहता है, और बिजली पैदा करनेके लिए कोयलेकी मदद उन दिनों ली जाती है।

युक्तप्रान्तकी योजना—अभी हाल तक हमारे युक्त-प्रान्तमें भी कुछ इने-गिने बड़े शहरोंमें रोशनीके कामके लिए बिजली कोयलेसे चलनेवाले पावर हाउसमें पैदा की जाती थी। कानपुरको छोड़कर और कहीं बिजली उद्योग-धन्धोंके लिए इस्तेमाल नहीं की जाती थी। आटेकी हल्की चकियाँ अवश्य बिजलीकी मददसे चलायी जाती थीं। किन्तु हर तरहकी मशीनोंके सञ्चालनके लिए तथा कुएँसे सिंचाईके लिए पानी खींचनेके लिए बिजलीको सस्ते दामपर देहातों तकमें सुलभ बनानेके लिए गवर्नमेण्टने गङ्गा केनाल हाइड्रो इलेक्ट्रिक स्कीम बनायी। हरद्वारसे गङ्गाकी नहर कई झरनोंसे होकर गुजरती है। हरद्वार और अलीगढ़के दमियान दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह फीट ऊँचे १२ झरने हैं। बहादुराबाद, मोहमदपुर, चितौरा, सालवा, मोला, पलरा और सुमेरा इनमेंसे मुख्य हैं। इन सभी स्थानोंके झरनोंको बांधकर पावर हाउस बनाये गये हैं। ये सभी पावर स्टेशन एक-दूसरेसे काफी दूरीपर हैं। फिर चण्डीसीमें भी एक बड़ा-सा पावर हाउस बनाया गया है, जो कोयलेकी शक्तिसे चलता है। इन तमाम पावर स्टेशनोंको लम्बे-लम्बे तारों द्वारा एक-दूसरेसे सम्बद्ध कर दिया गया है, ताकि इस तरह एक जाल समूचे पश्चिमी यू० पी० में बिछ जाय, और इस प्रदेशके छोटे-छोटे कस्बों और गांवों तकमें सस्ते दामपर बिजली

लोगोंको हर तरहके कामके लिए मिल सके।

किन्तु पावर स्टेशनोंके बीचकी दूरी इतनी अधिक थी कि उक्त याजनाको कार्यान्वित करनेके लिए जब एक पावर हाउससे दूसरे पावर हाउसों तक तारोंके लम्बे-लम्बे तार बिछाने पड़े, तो बेहद खर्च हो गया। नतीजा यह हुआ कि सस्ती बिजलीका स्वप्न दिमागमें ही रह गया। गांववालोंको सिंचाईके लिए जब बिजली मिली, तो उन्हें मालूम हुआ कि बिजलीकी मददसे खेत सींचनेमें नहरकी सिंचाईसे भी अधिक खर्च पड़ता है। अच्छा हुआ होता, यदि गवर्नमेण्ट हाइड्रो इलेक्ट्रिककी योजनाको प्रत्येक पावर हाउसके इर्द-गिर्दमें ही सीमित रखती। उस हालतमें तारोंके तार बिछानेका खर्च बच जाता, और इसके फलस्वरूप लोगोंको बिजली भी सस्ते दामोंपर मिल सकती।

प्रान्तमें सस्ते दामपर बिजली उत्पन्न करनेकी योजनापर कांग्रेस-गवर्नमेण्टका भी ध्यान आकर्षित किया गया था। और रीवां स्टेटके चवाई झरनेसे बिजली पैदा करके उसे इलाहाबाद तक ले आनेकी कहां तक सम्भावना हो सकती है, इस प्रश्नपर गौर करनेके लिए गवर्नमेण्टने एक कमेटी भी नियुक्त की है। इस कमेटीने अभी अपनी जांच खतम नहीं की है। किन्तु इसी सिलसिलेमें काशी विश्वविद्यालयके प्रो० बी० एस० दुबेने एक विशेषज्ञकी हैसियतसे अपने विचार प्रकट किये हैं, जो विचारणीय हैं। आगे अपने भूतत्त्व-सम्बन्धी अनु-सन्धानोंके सिलसिलेमें मिर्जापुरकी विस्तृत पैमाइश की है। आप इस नतीजेपर पहुंचे हैं कि मिर्जापुरके जिलेमें रेलवे स्टेशनसे लगभग ४० मील दूर कोयलेकी खानें मौजूद हैं, जो फिलहाल बेकार पड़ी हुई हैं। उन्हें खोदकर कोयला अगर स्टेशन तक ले आया जाय, तो गाड़ीके भाड़ेमें बहुत अधिक खर्च पड़ जायगा। हाँ, वहीं खानके पास ही यदि एक शक्ति-शाली पावर हाउस तैयार किया जाय, तो सस्ते दामके कोयलेकी शक्तिसे बिजली पैदा की जा सकेगी। फिर इस बिजलीको मिर्जापुरके कस्बों और देहातोंमें पहुंचाया जा सकता है। कोयलेकी शक्तिसे सञ्चालित पावर हाउसकी मशीनरी बैठानेमें खर्च उतना अधिक नहीं पड़ता, जितना जल-शक्तिसे सञ्चालित पावर हाउसके खड़ा करनेमें।

फिर कोयलेके पावर हाउसमें खानके समीप रोजानाका खर्च भी अधिक नहीं पड़ सकता। अधिकसे अधिक १॥ प्रति

उनके हिसाबसे मिर्जापुरकी खानके मुंहपर कोयला मिल सकता है। और एक यूनिट बिजली तैयार करनेके लिए ला-भा एक सेर कोयलेकी जरूरत होती है। इस हिसाबसे पावर हाउसमें एक यूनिट बिजली तैयार करनेमें ३ पाईकी लागत बैठेगी। फिर प्रारम्भिक पूंजीका सूद, इन्जीनियर और मिस्त्रीकी तनखाहें तथा सरम्मत आदिका खर्च लेकर कुल एक पाई प्रति यूनिट खर्च पड़ेगा।

खानसे मिर्जापुर शहरकी दूरी ९० मील है। तार बिछानेका खर्च प्रति मील १० हजार रुपये पड़ता है। इस तरह मिर्जापुर तक तार ले जानेमें करीब ९ लाख रुपये खर्च होंगे। इस रकमके सूद वगैरहका ख्याल रखते हुए प्रति यूनिट १। पाई दाम मिर्जापुर शहरमें बैठेगा। प्रोफेसर दुबेका ख्याल है कि इस रेडकी बिजलीसे सिंचाई वगैरहका काम पश्चिमी यू० पी० की हाइड्रो इलेक्ट्रिक स्कीमकी अपेक्षा बहुत सस्तेमें लिया जा सकता है।

शीरेसे अलकोहल—यन्त्र-सञ्चालनके लिए शक्ति प्राप्त करनेके लिए अन्य योजनायें भी सोची जा रही हैं। यू० पी० और बिहारकी कांग्रेस-सरकारोंने एक संयुक्त कमेटी इस बातकी जांचके लिए नियुक्त की थी कि चीनीकी मिलोंसे निकलनेवाले शीरेसे अलकोहल तैयार करनेमें क्या खर्च पड़ेगा। इस कमेटीकी सिफारिशें अब प्रकाशित हो गयी हैं। और इनकी सिफारिशोंको यू० पी० और बिहार गवर्नमेंण्टने स्वीकार भी कर लिया है।

उक्त कमेटी इस नतीजेपर पहुंची है कि व्यावसायिक दृष्टि-कोणसे शीरेसे अलकोहल बनाना लाभदायक हो सकेगा। इन दोनों प्रान्तोंमें शीघ्र ही शीरेसे अलकोहल तैयार करनेके लिए तथा उसकी बिक्रीके लिए एक बृहत् योजना बनायी जायगी। अलकोहलका मुख्य इस्तेमाल होगा मोटर हांकोंमें। यदि पेट्रोलके साथ २० प्रतिशत अलकोहल मिला दिया जाय, तो मोटरके इन्जिनमें किसी किसमकी खराबी नहीं आती और वह पूर्ववत् काम करता रहता है। विशुद्ध पेट्रोल इस्तेमाल करनेवाले कारव्यूरेटरमें यह अलकोहल और पेट्रोल-वाला मिश्रण भी आसानीसे जल सकता है। कारव्यूरेटरमें किसी किसमका रद्दोबद्द करनेकी जरूरत नहीं।

इन दोनों प्रान्तोंमें प्रति वर्ष ९० लाख गैलन पेट्रोल खर्च होता है। अतः इसके सङ्ग १८ लाख गैलन अलकोहल

आसानीसे खप जायगा। इसके मानी हुए ३०००० टन शीरा मोटर-व्यवसायके काम आयेगा। किन्तु बिहार और यू० पी० की शुगर फैक्ट्रियोंमें प्रति वर्ष तीन लाख टन शीरा निकलता है। अतः कोशिश की जा रही है कि अलकोहलकी सप्लाई अन्य प्रान्तोंमें भी यू० पी० और बिहारकी अलकोहल फैक्ट्रियोंसे की जाय। प्रयाग विश्वविद्यालयके केमिस्ट्रीके प्रोफेसर डा० दत्त, पेट्रोल और मोटरके इन्जिन सम्बन्धी मामलोंमें विशेषज्ञ समझे जाते हैं। आका कहना है कि पेट्रोलमें ९० प्रतिशत तक अलकोहल मिला देनेपर भी वह पूर्ववत् मोटरके इन्जिनमें इस्तेमाल किया जा सकता है।

साथ ही अलकोहलमें एक खूबी यह है कि सिलिण्डरमें जलते वक्त यह धुआं वगैरह नहीं देता, किन्तु पेट्रोल सिलिण्डरकी भीतरी दीवारोंको काली कर देता है। पेट्रोल इन्जिनसे बढ़बूढ़ार गैस बाहर निकलती हैं, किन्तु अलकोहल जलानेपर दुर्गन्धयुक्त गैस नहीं निकलती। लेकिन पेट्रोलके मुकाबलेमें अलकोहलसे ८९ प्रतिशत ही शक्ति प्राप्त होती है। किन्तु दामका ख्याल करते हुए अलकोहल इस्तेमाल करनेमें ही सुभीता होगा।

इस पेट्रोलवाली समस्याके हल करनेकी कोशिशमें अन्य मुल्कवाले भी लगे हुए हैं। मोटर, वायुयान आदिका काम बिना पेट्रोलके एक मिनट भी नहीं चल सकता। और आधुनिक युगमें युद्ध भी अधिकांश वायुसेनाकी मददसे लड़ा जाता है। अतः युद्ध तथा शान्ति दोनों ही वक्तमें पेट्रोलकी सख्त जरूरत आधुनिक सभ्य देशोंको हुआ करती है। किन्तु पेट्रोल संसारके इने-गिने देशोंमें ही पाया जाता है। अमेरिका, रूस, फारस आदि पेट्रोल सप्लाई करनेवाले प्रधान देश हैं। अमेरिकाके पेट्रोलके सोतोंमें २० सालसे अधिकके लिए पेट्रोल नहीं है। संसारके दूसरे देशोंके पेट्रोलके सोतोंका भी तखमीन लगाया गया है। और इन्जीनियर लोग इस निष्कर्षपर पहुंचे हैं कि मौजूदा रेटसे यदि पेट्रोलका खर्च चलता रहा, तो ३९ वर्षके अन्दर संसारके किसी भी देशके सोतेमें एक बूंद भी पेट्रोल बाकी न रहेगा।

अतः व्यवसायी मुल्कोंको कृत्रिम ढङ्गसे पेट्रोल तैयार करनेकी बड़ी फिक्र हो रही है। स्वभावतः कोयलेकी ओर लोगोंका ध्यान गया। कोयला करीब-करीब समान रूपसे दुनियाके सभी देशोंमें फैला हुआ है और पृथ्वीके गर्भके

अन्दर प्रचुर मात्रामें यह अभी मौजूद है। वर्तमान रेटसे खर्च करनेपर अभी ६०० वर्ष तक हमारी कोयलेकी खानें हमें बराबर कोयला देती रहेंगी।

कोयलेसे अलकोहल— तो क्या कोयलेसे पेट्रोल तैयार किया जा सकता है? इस प्रश्नका उत्तर ढूंढनेके लिए इंगलैण्डकी गवर्नमेण्टने भी इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज लिमिटेडके जिम्मे रिसर्वका काम सपुर्द किया। पूरे ८ वर्ष तक यह अनुसन्धान चलता रहा, और इस सिलसिले में १॥ करोड़ रुपये गवर्नमेण्टके खर्च हुए। किन्तु इस परिश्रमका फल यह हुआ कि अक्टूबर १९३६ में उक्त कम्पनीने कोयलेसे पेट्रोल बनानेका काम व्यावसायिक पैमानेपर शुरू कर दिया। इंगलैण्ड-जैसे समृद्धिशाली देशमें-भी गवर्नमेण्टकी मददके बिना इस तरहके अनुसन्धान-कार्य पूरे नहीं होते, तो भारत-जैसे गरीब मुलकमें तो गवर्नमेण्टकी ओरसे प्रोत्साहनकी और भी ज्यादा जरूरत है।

इस स्थानपर इस बातका जिक्र कर देना अनुपयुक्त न होगा कि पूरे १९ वर्ष तक जर्मनीवालोंने करोड़ों रुपये खर्च करके कृत्रिम नीलके सम्बन्धमें अनुसन्धान किये थे। और आखिरमें उन्हें कितनी जबर्दस्त सफलता मिली, उसका अन्दाज भारतके गांव-गांवमें उड़ने हुए नीलके गोदामोंकी संख्याको देखकर लगाया जा सकता है।

इटलीमें मोटरके इञ्जिनमें जलानेके लिए वहाँके दलदलमें पायी जानेवाली गैसोंका इस्तेमाल किया जा रहा है। प्रोपेन व्यूटेन आदि गैसों इन दलदलोंमें बहुतायतसे मिलती हैं। इन्हें दबाव डालकर द्रव-रूपमें परिणत कर लेते हैं, फिर

बोतलोंमें भरकर ये इञ्जनमें जलानेके काममें लाये जाते हैं।

बेल्जियन कांगोमें, जहाँ तेलहन बहुतायतसे पैदा होता है, वनस्पति तेलसे पेट्रोल-जैसे ईंधन मोटरके इञ्जनमें जलानेके लिए तैयार किये जा रहे हैं।

एकाध देशोंमें पिसे हुए पत्थरके कोयलेमें लकड़ीका बुरादा मिलाकर उससे इञ्जनोंके लिए ईंधनका काम लेनेकी कोशिश की जा रही है।

इटलीमें अमोनिया गैसको द्रव-रूपमें परिणत करके इञ्जनमें जलाया जा रहा है। इस तरीकेमें एक खास गुण यह है कि अमोनिया गैस तैयार करनेके लिए कोयला, तेल वगैरह कुछ नहीं चाहिए। विद्युत् मशीन और आसमानकी हवा। बस, इन दोनों चीजोंकी मददसे आसानीके साथ अमोनिया गैस तैयार की जा सकती है।

इस तरह हमने देखा है कि सभी देशोंने अपने-अपने तरीकेपर उद्योग-सम्बन्धी शक्ति-समस्याको हल करनेकी कोशिश की है। हमारे देशमें भी प्राकृतिक साधनोंकी कमी नहीं है। प्रचुर मात्रामें कोयलेकी खानें और ऊँचे-ऊँचे पानीके झरने मौजूद हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारोंके साथ सहयोग करके इस प्रश्नको ईमानदारीके साथ हल करें।

यदि सस्ते दामपर मशीनोंके लिए सहायक-शक्ति पैदा की जा सकी, तो तरह-तरहके नये-नये उद्योग-धन्धोंको पनपते देर न लगेगी। उद्योग-व्यवसायके पनपनेके लिए यह अगुआ अवसर है। और हमें यह अवसर खोना न चाहिए।



अमेरिकन अछूतोंकी हीरक-जयन्ती

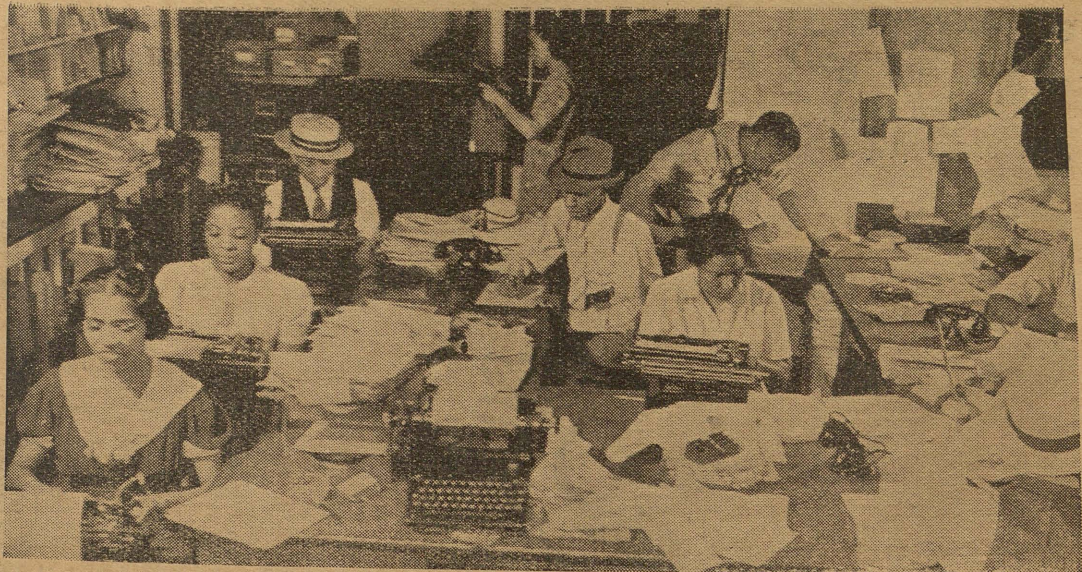
डा० चन्द्रशेखर, एम० ए० डी० लिट्०

किटी और पीटर न्यूयार्क के एक उद्यान में खेल रहे हैं। मैं उन्हें बराबर देखता रहा हूँ, पर आज उनकी नयी पोशाकें मनको लुभावनी लग रही हैं। किटी और पीटर के पास दूसरे हड्डी बच्चे भी हैं और उन सबने आज नयी पोशाकें धारण की हैं। उन्होंने अभी लुका-छिपी का खेल खेला है और अब एक नये खेलकी तैयारी कर रहे हैं, जिसे वे 'कुत्ता-बिड़्डी का खेल' कहते हैं। मैंने उनमें दिलचस्पी ली है और पार्क की एक बेंच पर बैठे-बैठे मैं यह सब दृश्य देख रहा हूँ। पुस्तकालय में बैठे-बैठे जी उब्रा, तो बाहर निकलकर इस पार्क में आया और यहाँ बैठकर मैं यह सब देख रहा हूँ कि फेनी बर्जनिथा धधरसे आती दिखाई पड़ी। अरे ! आज तो इसे भी खूब सज्जकर निकलनेकी लालसा हुई है। फेनीको मैं कई सालसे जानता हूँ, लेकिन मेरा खयाल है, आजका-सा उत्साह मैंने उसमें कभी न देखा था। उसने आते ही अभिवादन किया और फिर मेरे पास ही बैठ गयी। उसके हाथके एक बण्डलको मैंने अब देखा। मेरे पूछनेपर उसने बताया कि अब्राहम लिङ्गनकी मुख्य-

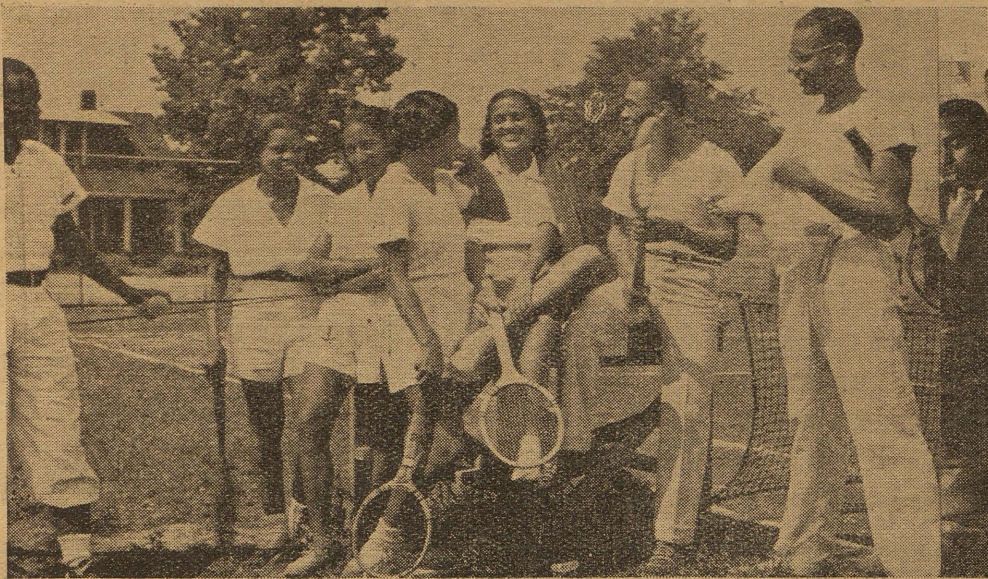
मुख्य घटनाओंको लेकर उस महापुरुषका एक छोटा-सा जीवन-चरित मोटे-मोटे अक्षरोंमें छापकर आज हड्डी बच्चोंमें वितरित किया जायगा। उसी महापुरुषने हड्डी बच्चोंकी गुलामीके विरुद्ध आन्दोलन करनेमें सफलता पायी थी।

तो आज हड्डी बच्चों—इन अमेरिकन अछूतोंकी हीरक-जयन्ती है। आजसे ७५ साल पहले इसी महीनेमें अब्राहम लिङ्गनने दासताको गैरकानूनी उहरानेवाले कानूनपर हस्ताक्षर किये थे, इसलिये अमेरिकन अछूतोंके लिए आज पर्वका दिन है। किटी और पीटरने आज इसीलिए पोशाक बदली है और कगड़े-लत्तेकी सदा उपेक्षा करनेवाली फेनीके हृदयमें भी आज सज्जकर निकलनेकी लालसा हुई है। लेकिन किटी, पीटर और फेनी ही क्यों, आज समस्त अमेरिकाके हड्डी बच्चोंके लिए पुण्य-दिन है।

मैंने बात की, तो उत्तर देनेमें फेनीका गला भर आया। लिङ्गनका नाम सुनते ही लज्जासे नतमस्तक होते उसकी मुद्रा कुछ ऐसी हो गयी कि स्वयं मेरा भी सिर झुक गया।



हड्डी बच्चोंके एक अखबारी दफ्तरका दृश्य।



नवीन भावापन्न हब्शी स्त्री-पुरुष ।

और क्यों न झुके ? कितनी ही बार मैंने अमेरिकन हब्शियों और अपने देशके अछूतोंकी तुलना की है, और उस तुलनाके बाद कितनी ही बार मैंने अनुभव किया है कि दोनों ही के भाग्य किस प्रकारके अत्याचारोंकी शृङ्खलामें बंधे हैं । दक्षिण भारतमें यदि सर्वर्ण हिन्दू अछूतोंकी छायासे परहेज करते हैं, तो जाति-भेदको न मानने और समानताका दावा करनेवाले संयुक्त राज्य अमेरिकाके ४८ राज्योंके अन्तर्गत एक दर्जन गोरोंके घर न मिलेंगे, जिनमें बैठकर हब्शी खाना खा सकें । इतना ही नहीं, उन्हें ऐसे कितने ही कामोंको करनेकी आज्ञा नहीं है, जिन्हें गोरे कर सकें । वे सभी गाड़ियोंपर नहीं बैठ सकते, सभी पार्कोंमें नहीं घूम सकते और सभी स्कूलों-कालेजोंमें पढ़ नहीं सकते । अब्राहम लिङ्कनने कानूनी तौरपर दासताकी जड़ोंसे उन्हें मुक्त कर दिया है, पर आज भी आत्म-विकासका मार्ग उनके लिए कम अवरुद्ध नहीं है । और एक समय तो ऐसा था, जबकि हब्शी होना ही पाप था । जिस तरह भारतमें अछूत होना संसारकी सारी घृणाओंको लेकर जन्म लेना है, उसी प्रकार हब्शी रोता हुआ, कर्मको कोसता हुआ कहता है :—

To be a negro like this.

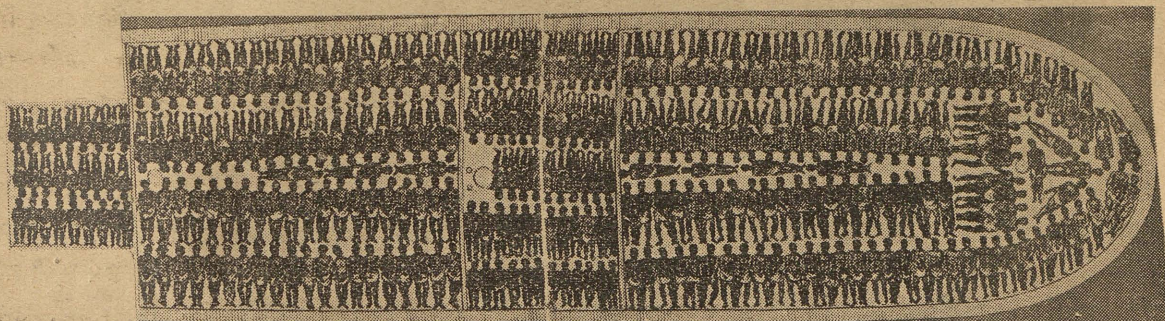
Alas ! Lord God what will have we done.

यह एक निग्रो कवि कोटार्सका कृष्ण उद्गार है, जिसमें सारी निग्रो जातिकी मर्म-पीड़ा रो उठी है । पूंजीवादी सभ्यताके फलस्वरूप जिस श्रेणी-भेदकी स्थापना हुई, उसमें युगों तक मनुष्यने मनुष्यको पशुओंसे भी जवन्य अवस्थाओंमें रखा है और मजा यह है कि इसको उसने अपने नैसर्गिक अधिकारोंमें माना है । हब्शियोंके क्रय-विक्रयकी कहानी सभ्यता, बल्कि असभ्यताके इतिहासकी सबसे कृष्ण और साथ ही घृणित कलङ्कगाथा है । रङ्गीन जातियोंपर होनेवाले अत्याचारोंका यह एक अङ्ग है, जिसने सदियों तक संसारमें दासता चलायी । और अचरजकी बात है कि बड़े बड़े विद्वान्, बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ न केवल ऐसी दासताका विरोध नहीं करते रहे हैं, बल्कि इस प्रथाके कट्टर समर्थकोंमें रहे हैं । अमेरिका और ब्रिटेनके अठारहवीं शताब्दीके इतिहास और साहित्यमें ऐसे प्रमाणोंकी कमी नहीं है, जो यह सिद्ध कर देते हैं कि कैसे-कैसे अनोखे तर्कों और युक्तियोंसे इस प्रणालीका समर्थन किया जाता रहा है ।

इंग्लैण्डके प्रधान मन्त्री चैथमने तो एक बार अत्यन्त

गर्वके साथ कहा था कि “अफ्रीकाकी विजयसे गुलामोंकी खरीद-फरोख्तका सारा अधिकार हमें मिल गया है।” चैथमकी यह नीति कुछ नयी नहीं थी। अठारहवीं शताब्दीमें गुलामोंकी खरीद-बिक्रीका रोजगार खूब तेजीपर था और गुलाम राष्ट्रोंकी राष्ट्रीय सम्पत्ति समझे जाने लगे थे। अमेरिकाके पुराने सरकारी कागजोंके आधारपर कहा जाता है कि १६८० और १७०० के बीच—२० वर्षोंमें प्रायः ३ लाख गुलामोंको अंगरेजोंने अमेरिका पहुंचाया। उस समय जो सन्धियां होती थीं, उनपर विचार करते समय राजनीतिक प्रश्नोंके साथ-साथ गुलामोंके क्रय-विक्रयके रोजगारका भी ध्यान रखा जाता था। मूत्रेंटकी जो सन्धि १७१३ में हुई थी, उसमें स्पेनसे इस अधिकारके ले लेनेके लिए ब्रिटेनमें खुशियां मनायी गयी थीं। सत्राट् जार्ज तृतीयके

उत्का इस प्रकार ठूस-ठूसकर भरना भी कानून द्वारा जायज करा दिया गया था। कानूनन एक दासके लिए ६×१ फीट ४ इंच तथा दासीके लिये ६×१ फीट २ इंच जगह आवश्यक समझी गयी थी। जहाजोंमें सफाईकी इतनी अधिक उपेक्षा की जाती थी कि दासोंवाले जहाजोंकी दुर्गन्धि आधे मीलसे ही उठती थी। रास्ते-भर गुलाम उबकाई, मतली आदि कितने ही रोगोंसे परेशान रहते। सभी दास सुरक्षित किनारे तक पहुंच भी नहीं सकते थे, क्योंकि अनुमानतः प्रति पांच गुलाम पीछे एककी मृत्यु रास्तेमें हो ही जाती थी। एक इतिहासकारने गुलामोंको ढोनेवाले इन जहाजोंकी दुर्दशाओंका वर्णन करते हुए बड़ी मार्मिक बातें कही हैं। उसने लिखा है :—“जहाजोंमें गुलाम इस प्रकार ठूस-ठूसकर भर दिये जाते थे कि वे करवट भी न ले सकते थे। वे शरीर या सिर तक न



गुलाम ढोनेवाला एक जहाज—गुलाम किस प्रकार ठूसकर जहाजमें भरे गये हैं।

लम्बे शासन-कालमें ब्रिटेनका यह दास-व्यापार खूब चमक उठा था।

गुलामोंके क्रय-विक्रयके इस रोजगारकी व्यापकता बतानेवाले कुछ आंकड़े हाहाकार मचानेवाले हैं। आंकड़े यों हैं :—

१६६६ से १७६६ तक—अंगरेजोंने ब्रिटिश-फ्रेञ्च और स्पेनिश-अमेरिकन उपनिवेशोंमें तीस लाख हब्शी गुलाम बेचे। इनमें करीब २॥ लाख दास जहाजोंमें ही भर गये। क्योंकि दासोंको जिस प्रकार जहाजोंमें ठूस-ठूसकर भर दिया जाता था, उसमें वे आरामसे तो क्या, कठिनाईसे भी एक किनारेसे दूसरे किनारे तक सुरक्षित नहीं पहुंच सकते थे। ऊपर-नीचे, उल्टे-सीधे, किसी भी प्रकार दासोंको जहाजोंमें ठूस दिया जाता था। और मजा यह है कि जहाजोंमें

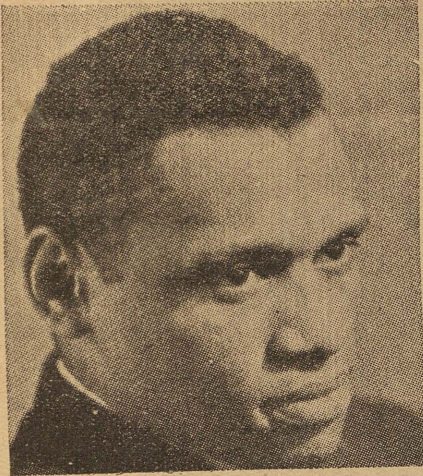
हिला सकते थे। क्योंकि उनके पांच और सिर बंधे रहते थे। कितनों ही की मृत्यु दम घुटनेसे हो जाती और कितने ही यन्त्रणाओं और मानसिक व्यथासे पागल हो जाते थे। इस व्यग्र पालनमें वे एक-दूसरेको मार डालते थे कि थोड़ी-सी जगह तो मिल सके। कोई भी दास अपनी बगलके दासको मार डालनेके लिए उत्सुक रहता था।”

१६४० से १७८६ तक ब्रिटिश, अमेरिकन उपनिवेशोंमें २१ लाख दास बिके।

१७१७ और १७९६ के भीतर करीब ३९ लाख दास अमेरिकन उपनिवेशोंमें आये।

१७९२ और १७६२ के भीतर केवल जमाइकामें ७१११९ गुलाम पहुंचाये गये।

१७७६ से १८०० तक प्रति वर्ष ७० हजार गुलाम



पाल रावेसन जो दुनियाका सुप्रसिद्ध
हब्शी कलाकार है।

अमेरिकन उप-
निवेशोंमें पहुंचाये
जाते थे। इस
प्रकार १८॥
लाखके लाभा
दास पहुंचाये गये।

इस प्रकार
गुलामोंका यह
रोजगार विशाल
पैमानेपर चलाया
जाता था, जिसमें
कितने ही राष्ट्रों-
की दिलचस्पी
थी। आश्चर्य
होता है कि
बड़े-बड़े विचारकों

तथा राजनीतिज्ञोंने भी इस घृणित व्यापारको जारी रखा
और इसके निषेधके लिए होनेवाले प्रयत्नोंको नष्ट करनेके लिए
युद्ध छाननेकी कोशिशें की थीं। ब्रिटिश पार्लमेण्ट तथा
अमेरिकामें यह प्रश्न कानो दिनों तक एक विकट रूपमें
उपस्थित रहा।

१७९० में तम्बाकू, चादल, रुई और नीलकी खेतीकी वृद्धि
रुक गयी और तब गुलामोंकी संख्यामें भी कमी पड़ गयी।
दक्षिण अमेरिकाने यह सोचकर कि अब उसे गुलामोंकी
आवश्यकता नहीं है, सन् १८०० ई० में दासोंके
आयातपर प्रतिबन्ध लगा दिया। रुईकी खेती उन दिनों
हबिश्योंने ही विशाल पैमानेपर सम्भव बना दी थी और
आज भी उनके कारण ही उसका यह रूप है। पाल रावेसन
संसारका ख्याति-प्राप्त कलावन्त है। इस हब्शीने सारे
संसारमें अपनी कलासे लाखों-करोड़ों प्राणियोंको अब तक
अमृतपान कराया है। जब वह गाता है :—

Some one had to pick the cotton.
Some one had to plant the corn.
Some one had to slake and be able to sing.
That's why darkies were born.

तब हब्शी जीवनको चित्रित करनेवाले उसके नन्हें-नन्हें
गीतोंको मधुर और व्यथापूर्ण वार्णामें सुनकर इस काले
कलावन्तर लाखों गोरोंके प्राण सिहर उठते हैं।

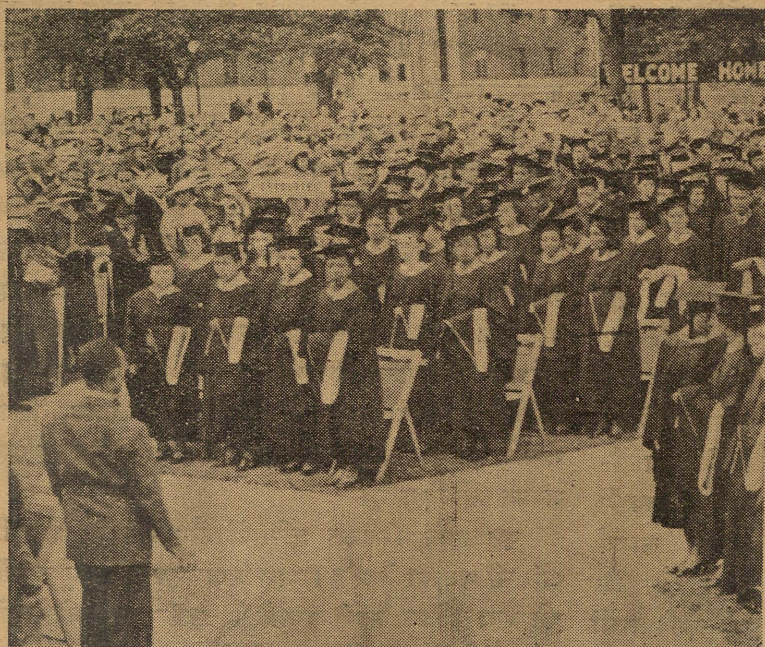
किन्तु पाल रावेसन ही नहीं, नियो जातिने काण्टेल्लो
मेरियन एण्डर्सन, डब्ल्यू० सी० हैण्डी, बेजनर, एडवर्ड
एलिङ्गटन-जैसे कलाकार पैदा किये हैं। चित्रकलामें भी
उन्होंने बड़ी ख्याति पायी है, पर अमेरिकामें होनेवाली
अनेक कला-प्रदर्शनियोंमें उन्हें अपने चित्र रखनेकी आज्ञा
नहीं मिल पाती। लास ऐञ्जिल्सका पाल विलियम्स एक
अनोखा शिल्पकला-विशारद है। पर ग्रेस मूर-जैसी कुछ
अभिनेत्रियों तथा कुछ दूसरे व्यक्तियोंको छंडकर कितने
गोरोंने इस हब्शीकी अनोखी प्रतिभाको दिकसित होनेका
अवसर नहीं दिया है।

एक बातमें अमेरिकन हबिश्यों और भारतके अछूतोंमें
और भी अनोखा मेल है। भारतके कट्टर सवर्ण हिन्दू अछूतों-
को जैसा कुत्सित प्राणी समझते हैं, उसी प्रकार अमेरिकाके
हबिश्योंको वहाँके गोरें समझते हैं। इतना ही नहीं, जिस
प्रकार यहाँके अछूतोंमें भी अनेक जातियाँ हैं और उनमें भी
परस्पर असह्यता है, उसी प्रकार अमेरिकन अछूतों—
हबिश्योंमें भी जाति-भेद-सा ही कुछ है। हबिश्योंकी जो
समितियाँ हैं, उनके सदस्योंका चुनाव रङ्गको लेकर होता है।

कम काले हब्शी
अधिक गहरे
काले रङ्गके
हब्शीको हर-
गिज अपनी
समितियोंमें पांव न
रखने देंगे।
उनमें सामाजिक
भावना तो बड़ी
प्रबल हो गयी
है और आधु-
निक सभ्यताके
कितने ही रोग
उनमें आ गये
हैं। पर यह जो



जैमी जोन्स जिसने अपने मधुर सङ्गीतसे
संसारमें ख्याति पायी है।



यूनिवर्सिटीकी नवीन हव्शी ग्रेजुएट महिलायें ।

अपनेमें ही भेद रखनेकी प्रवृत्ति उनमें गोरोंकी देखा-देखी आ गयी है, उससे उनके सङ्गठन और विकासका मार्ग बड़ा ही अवरुद्ध हो सकता है। शिकागोमें हव्शियोंकी एक संस्था है, जिसमें हलके काले रङ्गके ही हव्शी सम्मिलित हो सकते हैं। लेकिन केवल रङ्ग ही आवश्यक नहीं है, उनकी आर्थिक अवस्था भी अच्छी होनी चाहिए। कहा जाता है कि उसके अधिकांश सदस्योंके पास २५०० डालर वार्षिक आयका होना आवश्यक है। इस प्रकारकी भावनाके प्रमाण और भी पाये जा रहे हैं, जिनसे अछूतोंमें ही श्रेणी-भेद होता दिखाई पड़ता है, और इसकी भयानकता दो बातोंमें है, क्योंकि एक तो उनमें आपसमें ही रङ्गका भेद है; दूसरे पूंजीके आधारपर उनमें पूंजीवादियों और दरिद्रों—दो श्रेणियोंका जन्म होता जा रहा है।

अब्राहम लिङ्कनने जिस समय हव्शी गुलामोंको मुक्त किया था, उस समय उनकी अवस्था ४०,००,००० थी और अब

उनकी संख्या १४,०००,००० है। अमेरिकामें इस विशाल संख्याने एक अजब अलग-संख्यक प्रश्न रख छोड़ा है। और यह संख्या तथा इसके प्रति किये जानेवाले व्यवहार बताते हैं कि अमेरिकीनोंका यह दावा कितना गलत है कि वे सभी मनुष्योंको समान और स्वाधीन समझते हैं। कानूनकी नजरमें हव्शी स्वाधीन भले ही हों, पर आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सभी दृष्टियोंसे तो आज भी वे स्वाधीन नहीं हैं।

लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि जब कहीं उन्हें सुअवसर मिले हैं, उन्होंने काफी उन्नतिशीलताका परिचय दिया है और प्रमाणित कर दिया है कि इस प्रकारके आत्मविकासके अवसरोंको हव्शियोंके लिए असम्भव बनाना

रङ्गीन जातियोंके प्रति कितना भीषण अन्याय—कितना क्रूर और कुत्सित व्यवसाय है। भारतीय अछूतोंकी समस्यापर भी इससे प्रकाश पड़ता है। दोनोंको समस्यायें अनेक अंशोंमें समान हैं। उनके प्रति होनेवाले अत्याचारों तथा उनके प्रति-कारके साधनों एवं उनकी प्रगतिशील सम्भावनाओंमें भी काफी समानतायें हैं।

और इसीलिए आज हव्शियोंने अपनी स्वाधीनताकी हीरक-जयन्ती मनायी है। किटी और पीटर आज इसीलिए मुक्त पक्षि-शावकोंकी भांति फुदकते फिरते हैं और फेनी इसीलिए आज सजकर बाहर आयी है! पर वह सोचती है कि जब इन ठुकराये हुए उपेक्षित अछूतोंकी आज भी यह अवस्था है, तब आजसे ७५ साल पहले इनकी अवस्था कैसी रही होगी—कितनी कुत्सित, लाञ्छित और दयनीय!



क्या हम अधिक सच्चरित्र हैं?

श्री कस्तूरमल बांठिया, बी० काम०

हम पाश्चात्य देशवासियोंको आज असच्चरित्र और पतित कहते नहीं अघाते। जब भी किसी ऐसे सामाजिक सुधारका प्रयत्न किया जाता है, जिसका उद्भव पाश्चात्य विचार-प्रणालीसे परिपुष्ट हुआ हो, तो केवल इसी बातकी दुहाई देकर उसका घोर विरोध किया जाता है कि ऐसे सुधारोंसे हमारा पाश्चात्योंका-सा नैतिक पतन हो जायेगा। इनसे भारतवर्षका सिवा बिगाड़के कुछ भी भला नहीं होगा। क्या हमारा पाश्चात्योंके प्रति यह लाञ्छन दरहकीकत ही सत्य है? क्या हमारा भारतीय समाज उनकी अपेक्षा दरहकीकत ही सच्चरित्र है? प्रत्येक निष्पक्ष विचारशील व्यक्तिके हृदयमें ये शङ्कायें उठती हैं। आज इस लेखमें हम इसी लाञ्छनका कुछ विचार करना चाहते हैं।

यह विज्ञानवाजीका युग है। तिलका ताड़ बनाना ही इस युगका धर्म है। पाश्चात्य अखबारोंमें आये दिन निकलनेवाले दाम्भ्य-विच्छेद आदिके विवरणोंको पढ़कर हर किसीकी यह धारणा होना निश्चित है, जैसी कि हम लोगोंकी हो गयी है कि पाश्चात्य लोग हमसे पतित और असच्चरित्र हैं। क्योंकि हमारे यहां अखबारवाजीका सौभाग्यसे कहो या दुर्भाग्यसे, अभी तक भी इतना प्रचार नहीं हो पाया है, यही नहीं; बल्कि पाश्चात्य राष्ट्रोंकी अपेक्षा हमारे इस भारतवर्षका क्षेत्रफल इतना बड़ा और विस्तृत है और जन-संख्या इतनी घनी है कि इसमें होनेवाली आये दिनकी ऐसी ही घटनायें हमारे पढ़ने या सुननेमें मुश्किलसे ही आती हैं, इसीलिए हम अपने-आपको अधिक पवित्र और सदाचारी कहनेकी भी हिमाकत कर सकते हैं।

क्या हम अधिक सदाचारी और पवित्र हैं? आइये, इस प्रश्नकी हम कुछ छान-बीन करें। इस छान-बीनकी वर्तमान प्रणाली प्रत्येक देशके इस सम्बन्धके एकत्रित अङ्कोंकी तुलना करना है। परन्तु हम इस प्रणालीसे दोनों समाजोंकी तुलना कर ऐसे नाजुक विषयोंके मन्तव्योंको स्थिर करना ठीक नहीं समझते। इसका प्रधान कारण यह है कि अनुसन्धानके बिना उद्धृत किये हुए अङ्क मनचाही बातको पुष्ट करनेके लिए

प्रयुक्त किये जा सकते हैं। इस बातसे हर एक अङ्क-विज्ञानका जाननेवाला अच्छी तरह परिचित है।

अङ्कोंके अतिरिक्त भी तुलनाका एक और साधन है, जिससे भिन्न-भिन्न समाजोंका तुलनात्मक सांस्कृतिक इतिहास सङ्कलित किया गया है। वह साधन है तत्कालीन साहित्य। साहित्य जीवनकी समीक्षा है। मनुष्य जातिकी सञ्चित ज्ञान-राशिका कोष है। मनुष्यका और मनुष्य जातिका भाषाबद्ध या अक्षरव्यक्त ज्ञान है। इसी साहित्यकी दुहाई देकर ही तो आज हम पाश्चात्योंसे अपने पूर्वजोंको महान् उन्नत घोषित कर रहे हैं। यही नहीं, पाश्चात्योंके प्रकाशित साहित्यको प्रमाण मानकर ही हम उन्हें पतित और असच्चरित्र भी कह रहे हैं।

जिस समय हम अपनेको पाश्चात्योंसे अधिक चरित्रवान् या सच्चरित्र कहते हैं, तो हमारा लक्ष्य यौन-आचरण ही होता है। इसीलिए हम अन्य किसी भी तरहके आचरणका यहां अनुसन्धान नहीं कर रहे हैं। इस विवेचनको पढ़ते समय हमें यह बात खासकर ध्यानमें रखनेकी है। यौन-आचरणमें भी हम इस बातका विचार नहीं करेंगे कि वह कैसा होना चाहिए। हमारा लक्ष्य सिर्फ यह है कि वह प्राचीन कालमें कैसा था और आज कैसा है? हम अपने ही सदाचारका इतिहास टटोलकर यह देखना चाहते हैं कि हम इस विषयमें अपने पाश्चात्य भाइयोंसे किस तरह भिन्न आचरण कर चुके हैं और आज भी करते हैं।

इसलिए आइये, हम अपना प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य टटोलें। उसमें भी खासकर लौकिक साहित्य; क्योंकि हम पाश्चात्योंके लौकिक साहित्यको पढ़कर ही तो उनको अपनेसे हीनचरित्र मानते और कहते हैं। लोकोत्तर साहित्यसे हमारे चरित्रकी उच्चता और जीवनकी पवित्रता सिद्ध नहीं हो सकती; क्योंकि वह निरा आदर्श है, और इसीलिए जीवनकी यथार्थतासे दूर और असम्भव भी हो जाता है। ऐसे आदर्शपर चलनेवाले कर्तव्यच्युत होते पाये गये हैं। हमारा यह कथन कि लोकोत्तर साहित्य हमारे यथार्थ जीवन-

को शायद ही स्पर्श करता है, कोई अतिशयोक्तियुक्त नहीं है।

हम भारतवासियोंका उत्कर्ष-काल आजसे हजारों वर्ष पहले था, जिसमें वेदादि ज्ञान-भण्डारका उद्भव हुआ। इतिहासज्ञ मानते हैं कि ब्राह्मण-कालसे लेकर यूनानियोंकी चढ़ाई तकके भारतवर्षकी जानकारी यदि किसी एक ग्रन्थमें हो, तो वह महाभारतमें ही है। इसी महाभारतके आवारपर राव बहादुर सी० वी० वैद्यने अपने ग्रन्थ 'महाभारत मीमांसा' में लिखा है कि "राजा और धनी लोगोंकी अनेक स्त्रियां तो होती ही थीं, परन्तु इनके अतिरिक्त इन लोगोंमें वेश-स्त्रियों (रखेलों) के रखनेकी भी रीति थी।" उसी ग्रन्थमें उन्होंने तत्कालीन यूनानी भारतीय इतिहास-लेखकोंसे यह मत भी उद्धृत किया है कि "राजाओंका ऐश-आराम या वैभव इतना बढ़ गया है कि पृथ्वी-भरमें उसका जोड़ नहीं। यह ऐश-आराम बिल्कुल तुले खजाने होता है। क्योंकि राजा जहां जाता है, वहां उसके साथ सोनेकी पालकीमें बैठी हुई वेश-स्त्रियोंकी कतारकी कतार रहती है। अन्तर यह होता है कि जुरूपमें इनकी श्रेणी, रानीके समुदायसे कुछ हटकर चलती है।" निःसन्देह यह चरित्रका आदर्श हमारे आज-कलके माने हुए चरित्रादर्शसे, जिसके साथ हम पाश्चात्योंके चरेत्रकी तुलना करते हैं, बहुत ही नीचा है, यही नहीं, अपितु वह पाश्चात्योंके किसी भी समयके चरित्रादर्शसे ऊंचा नहीं है। महाभारत-कालमें तो पराजितोंकी विवाहिता स्त्रियोंको विजेता अपने अन्तःपुरमें दाखिल करना उचित समझता था और यह रिवाज मान्य था। तभी तो धर्म्य ऋषिने जयद्रथसे द्रौपदी-हरणके समय यह वाक्य कहा था :—

नयं शक्या त्वयानेतुं अविजित्य महारथान्।

धर्म क्षत्रस्य पौराणमवेक्षस्व जयद्रथ ॥ *१

हे जयद्रथ ! महारथियों (पाण्डवों) को जीते बिना तुम द्रौपदीको नहीं ले जा सकते। पुरातन कालसे क्षत्रियोंका जो धर्म चला आ रहा है, उसपर ध्यान दो। इससे यह बात स्पष्ट है कि तब स्त्री-हरण पाप नहीं माना जाता था।

महाभारत-कालसे पीछे सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्यका समय हमारे इतिहास-कालमें स्वर्ण समय है। आइये, इस कालको भी हम साहित्य द्योले। इस सम्राट्के महाअमात्य

* सी० वी० वैद्य-रचित हिन्दी महाभारत मीमांसा पृष्ठ २३४

चाणक्यने एक ओर तो नीति-शास्त्रकी शिक्षा दी है, जो आज तक चाणक्य नीतिके नामसे प्रसिद्ध है, तो दूसरी ओर उसने कौटिल्य नामसे राजतन्त्रकी और वात्स्यायन नामसे काम-सूत्रकी। यह बात सत्य है कि इतिहासज्ञ अभी इस विषयमें एकमत नहीं हैं कि इन तीन भिन्न-भिन्न नामोंवाला व्यक्ति ही उस मौर्य सम्राट्का विचक्षण महाअमात्य था। परन्तु फिर भी, इस बातसे कोई इनकार नहीं करता कि कौटिलीय अर्थशास्त्र और वात्स्यायन कामसूत्र दोनों ही उस समयके प्राचीन ग्रन्थ हैं।

पहले वात्स्यायनके कामसूत्रका ही आप विचार कीजिये। स्वयं ग्रन्थकारने यह स्वीकार किया है कि दत्तकादि आचार्योंने पृथक्-पृथक् अधिकरण लेकर अपना-अपना ग्रन्थ लिखा था। प्रत्येकका लिखा ग्रन्थ काम-शास्त्रका केवल अङ्ग-मात्र था। आचार्य ब्राह्मण्यका ग्रन्थ अति विशाल होनेसे सबके समझनेमें दुरूह था। इसलिये उनके सब विषयोंको संक्षिप्त करके सब विषयोंसे परिपूर्ण सुझ आचार्य वात्स्यायनने इस कामसूत्रकी रचना की। (१ मण्डल. १ पृ. १९ सू.)। अर्थात् उस समयके प्रचलित इस विषयके अनेक ग्रन्थोंमेंसे यह एक ग्रन्थ था। यह विषय उस समय आजकलका-सा गोप्य, चर्चा-अनुपयुक्त, अशुन्दर एवं बीभत्स नहीं माना जाता था। इसीलिए प्रसङ्गवशात् इस ग्रन्थमें भिन्न-भिन्न देश या प्रान्तवासियोंकी यौन-प्रवृत्तियों और प्रकृतियोंका वर्णन भी आचार्यने करना उचित समझा, जिसे पढ़कर यह माननेको कोई भी विवाशरील व्यक्ति तैयार नहीं है कि आजकी पाश्चात्य जनता या स्वयं हम ही उससे अधिक कामातुर, चरित्रभ्रष्ट या असदाचारी हैं।

कामसूत्र लौकिक साहित्य है, इससे तो कोई भी इनकार नहीं कर सकता। और यह भी हम सबको मान्य ही होना चाहिए कि लौकिक साहित्यमें मनुष्यको मनुष्य मानकर ही उसकी विवेचना की जाती है। लोकोत्तर साहित्यकी भांति लौकिक साहित्यमें मनुष्यको देवत्व या राक्षसत्वका बाना प्रदान करनेकी चेष्टा नहीं की जाती। यही कारण है कि लौकिक साहित्यमें मनुष्यकी प्रवृत्तियां राक्षसत्वकी होते हुए भी न तो लोकोत्तर साहित्यकी भांति अतिरञ्जित की जाती हैं और न अतिवृष्य। क्योंकि लौकिक साहित्यका एक-मात्र उद्देश्य मनुष्यको मनुष्य रखते हुए ही सकल मनुष्य

बनाना है। आचार्य वात्स्यायनके मतानुसार वही मनुष्य लौकिक रूपसे सफल है, जिसने धर्म, अर्थ और काम इन तीनों ही वर्गोंको यथाशक्ति सञ्चय और उपभोग किया है। कामको मनुष्यके लिए धर्म और अर्थके समान ही उपयोगी मानकर कामसूत्रकी रचना की गयी थी, जिसमें न केवल दम्पतिके समागमको बतलानेवाले उपायोंका ही एकमात्र विवेचन किया गया है, परन्तु उसमें परदारागमन, वेश्यागमन, पुरुषायितम्, औपरिष्टकम्, पुनर्भूतम्, वाजीकरणम्, वशीकरणम् आदि प्रत्येक विषयका विस्तृत विवेचन किया गया है।

डा० भगवानदासने यद्यपि वात्स्यायन-रचित कामसूत्रका एक बड़ा दोष इन्हीं विषयोंके विवेचनको बताया है; क्योंकि इनका वर्णन करते हुए आचार्यने 'कुर्यात्' 'साधयेत्' 'प्रेषयेत्' आदि यानी 'ऐसा करे' 'ऐसे साधे', 'ऐसे भेजे' आदि विधिवाचक शब्दोंका प्रयोग किया है; परन्तु जिस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए इस ग्रन्थकी रचना की गयी थी, उसे देखते हुए आचार्य यदि इन विषयोंका विवेचन न करते, तो वह इस ग्रन्थकी एक बड़ी भारी त्रुटि होती। डा० भगवानदासका आरोप नीतिशास्त्रकी दृष्टिसे सर्वथा उचित है। परन्तु कामसूत्र तो नीतिशास्त्रका ग्रन्थ नहीं है। उसका लक्ष्य तो काम-सुखकी अभिज्ञता प्राप्त कराना है (१ मं० २ पृ० १३ सू०)। और इसकी प्राप्तिके क्या-क्या और कौन-कौन-से साधन प्रचलित थे और हो सकते हैं, उन सबका ही विवेचन करना अनिवार्य था। विवेचात्मक भावामें ऐसे विषयोंका विवेचन लोगोंमें सदाचार-वृद्धिके लिए ही किया गया है, ऐसा कहकर आचार्यके दोषको परिहार करना नीतिशास्त्रियोंकी ज्यादती ही कही जा सकती है। क्योंकि वेश्यागमन, परदारागमन आदि यदि प्रचलित रिवाज उस समय न होते, तो कौटिलीय अर्थशास्त्रमें न तो 'गणिकाध्यक्ष'का ही विधान बताया जाता और न 'धर्मस्थीय' प्रकरणमें निष्पत्तन, पथ्यानुसरण, हस्व-प्रवास, दीर्घ प्रवास आदि परिस्थितियोंमें दण्ड आदिका आजकलकी ही भांति विधान किया जाता।

आचार्यने कामसूत्रमें इन विषयोंका खाली विवेचन ही नहीं किया है, अपितु यहां तक लिखा है कि किस देशकी व प्रान्तकी स्त्रियों और पुरुषोंका कैसा-कैसा आचरण होता है। और यह शिक्षा दी है कि कामके प्रत्येक साधकको देश-देशकी प्रथाके अनुसार स्त्रियोंको प्रसन्न करना चाहिए। (२ मं० ९

पृ० २० सूत्र)। यह गूढ़ प्रकृति-ज्ञान पुस्तकोंसे ही प्राप्त किया गया था, ऐसा कहना आचार्यको व्यवहार-ज्ञान-शून्य बतानेके समान है, जो उनके लिए किसी तरह प्रयुक्त नहीं हो सकता। यह प्रकृति-ज्ञान किसी एक ही विषयमें निदर्शन किया गया हो, सो भी बात नहीं है। काम-कलाके प्रत्येक अङ्ग—आलिङ्गन, चुम्बन, नखक्षत, दन्तदशन, आसन, प्रहणन सीत्कार, विपरीत रति और औपरिष्टक, सभीके विषयमें यह कहा गया है कि कहां इनके भिन्न-भिन्न प्रकार किन-किन लोगोंमें प्रचारमें हैं। आजके पौर्वीय या पश्चात्य किसी भी समाजमें इनसे अधिक विकृत रूपमें उपर्युक्त किसी भी कामकलाका प्रचार यौन-शास्त्र-मनोवैज्ञानिकोंके अनुसन्धानमें नहीं आया, यह हम हैबलाक पुलिसके सुप्रसिद्ध ग्रन्थकी साक्षीसे कह सकते हैं।

हमारे जिन पूर्वजोंको ऐसे-ऐसे प्रयोगोंके जानने और उन्हें प्रयोग करनेके साधनोंका ज्ञान ग्रन्थ द्वारा और समाज द्वारा भी उपलब्ध था, वे हमसे अधिक सदाचारी कहे जायें, यह अतीतको सुन्दर बताकर वर्तमानसे घृणा पैदा करनेके प्रयत्नके सिवाय और क्या कहा जा सकता है।

लोकोत्तर ज्ञान जिस प्रकार अनुभवगम्य माना जाता है, वैसे ही लौकिक ज्ञान भी अनुभवगम्य है। अनुभवहीन जन ही लोकमें असफल रहते हैं। इस दृष्टिसे जब हम अपने स्वनामधन्य कवियों और लेखकोंकी कृतियोंको और खासकर शृङ्गार-रसिकोंकी वाणियोंको ढूँढ़ते हैं, तो हमें आचार्य द्विवेदीजीकी भांति केवल कालिदासको ही निरंकुश नहीं, परन्तु और कइयोंको भी यही पद प्रदान करना पड़ेगा। क्योंकि शृङ्गार-रसका आलम्बन लेकर इन महाकवियोंने ऐसी-ऐसी भद्दी बातें अपने मान्य ग्रन्थोंमें कही हैं, जो अश्लीलताकी पराकाष्ठाको पहुँच जाती हैं। यदि लेखक अपने कालका प्रतीक माना जाये, तो हमें कहना पड़ेगा कि मेघदूत, ऋतु-संहार, शृङ्गार-शतक, विहारी सतसई आदि प्राचीन और अर्वाचीन शृङ्गार-साहित्य उस जमानेकी प्रवृत्तिको ही प्रतिबिम्बित करते हैं। वह प्रवृत्ति आजकलकी प्रवृत्तिसे हमारी मन्दबुद्धिके अनुसार किसी भी तरह उच्च नहीं कही जा सकती। मनुष्य रहते हुए उसकी जो प्रवृत्तियाँ हुई, वही आज हमारी भी हैं; क्योंकि हम भी मनुष्य हैं।

जब हम भारतीय इतिहासके मध्यकालकी ओर दृष्टिपात

करते हैं, तो वहां भी हमें यह स्पष्ट रूपसे प्रमाण मिलता है कि राजाओंके कई-कई रानियां होती थीं। उनके सिवा उनके अन्तःपुरमें अनेक दासियां भी होती थीं। १ यह बात सच है कि इस युगमें स्त्रियोंके सती होनेका भी रिवाज था। परन्तु यह तो स्त्रियोंके ही चरित्रकी उच्चताको प्रदर्शित कर सकता है, न कि पुरुषोंकी। आज भी तो स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुष ही अधिक असच्चरित्र और स्त्रियोंको पतनके रास्तेमें ढकेलनेवाले हैं। ईसाकी दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दीमें गन्धर्व-विवाह, जो आजकल घृण्य और पतित माना जाता है, प्रायः प्रचलित था। यही नहीं, परन्तु जाति-पांतिकी रोक भी शिथिल हो चली थी। ब्राह्मण क्षत्राणीसे, क्षत्रिय वैश्य-स्त्रीसे व्याह करते थे। यह किसी तरह वर्ज्य न था। २ तब दरबारी महिलाओं और बड़े घरकी स्त्रियोंके आभूषण और बनाव-शृङ्गारकी वस्तुओंकी यह दशा थी कि विषय-भोग और बनावटने सौन्दर्यका गला घोट दिया था। ३

इस कालमें आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कामसूत्रको आधार मानकर कितने ही आचार्योंने भिन्न-भिन्न नामसे काम-कलापर ग्रन्थ निर्माण किये थे। ये सब ग्रन्थ संस्कृतमें हैं, जो उस समयकी भाषा नहीं थी। इससे यह बात साबित होती है कि इनका उद्देश्य अपने आश्रयदाताओंकी काम-तृष्णाओंको बढ़ाना एवं सन्तुष्ट कराना ही था। इसी समयके एक लेखक कोकिलके नामके नकली ग्रन्थोंका विज्ञान दे-देकर आज भी ठा लोग भोले लोगोंको ही नहीं, अपितु कभी-कभी समझदारोंको भी ठग रहे हैं। क्योंकि काम मनुष्य-प्रकृतिका सामान्य स्वभाव है, जिसमें सफल होना प्रत्येक मनुष्य उसी भांति चाहता है, जैसे अन्य क्षेत्रोंमें।

भारतवर्षमें कामसूत्रके खास ग्रन्थोंके अतिरिक्त भी इतना कामुक साहित्य लिखा गया है कि जिसको यदि संग्रह किया जाये, तो हमें अपने यौन-जीवनका क्रमबद्ध इतिहास

सहज ही सुलभ हो सकता है। काव्यमें रस प्रधान माना गया है और रसोंमें शृङ्गार-रस सबका राजा कहा गया है। हमारे यहांके मध्यकालीन कवियोंने अधिकांशमें हिन्दी भाषा-के भण्डारको शृङ्गार-रसिक कविताओंसे लबालब भरा था, और वही अब तक हमारे आशु और अर्वाचीन कवियोंका भी आदर्श रहा है। पिछले ३० वर्षोंमें राष्ट्रीय और अन्य भावुक कविताओंने शृङ्गारी कविताओंकी बाढ़को यद्यपि अवरुद्ध-सा कर दिया है; परन्तु यह इस बातका सबूत नहीं कहा जा सकता कि हमारी प्रवृत्ति अब शृङ्गार-रस-विमुख हो गयी है या हम पहलेसे कम कामसेवी हैं। लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण और उनकी प्रेमिका राधिकाका आलम्बन लेकर इन शृङ्गार-रस-कवियोंने नारीको मातृत्वके महान् पदसे नीचे गिराकर मनुष्यके आमोद-प्रमोदकी एकमात्र वस्तु बना दी है। जहां नायक यानी पुरुषके उन लोगोंने पति, उप-पति और वैसिक यही तीन मुख्य भेद और अनुकूल, दक्षिण, छष्ट, शठ, अनभिज्ञ, वचन-चतुर और क्रिया-चतुर आदि सात उपभेद किये हैं, वहां नारी यानी नायिकाके भेदों और उपभेदोंकी कुछ सीमा ही नहीं है। नारीके अङ्ग-उगाङ्ग ही क्या, अदा, भ्रूक्षेप, सीत्कार आदि ऐसी कोई कल्पनातीत बात ही नहीं रह पायी है कि जिसका इन शृङ्गार-रसाचार्योंने काम-रसमय वर्णन नहीं किया हो। किसी-किसी कविने तो अपनी नारी-रमण-लीलाका भी वर्णन इस स्पष्टताके साथ किया है कि वह अश्लीलताको भी माया कर गया है।

यही कारण है कि संयमकी पवित्रताको सम्पूर्णरूपेण मान देते हुए भी जब आधुनिक मनुष्य (स्त्री और पुरुष) से अप्राकृतिक और खोखली पवित्रताका समाजमें जबरन पालन कराया जाता है, तो स्वभावसे ही वह कह उठता है कि यदि पवित्रताके माने सिर्फ यह हों कि यौन-क्षेत्रमें हम रोजगारी उपवास करनेवालोंके हथकण्डोंकी प्रतिद्वन्द्विता-मात्र करें या अपनी शक्तियोंको सिर्फ नामके संयमके लिए व्यय करते रहें, तो यह पवित्रताका आदर्श कोई उच्च और अनुकरणीय नहीं है। यदि यह उस रूढ़िके प्रति अपने आपको बलि देना ही हो कि जिसे तोड़नेका हममें जरा भी साहस और शौर्य नहीं है, तो यह पवित्रता आदर्श नहीं, अपितु आदर्शभास ही है। यदि यह स्त्रीका पुरुषपर या पुरुषका स्त्रीपर जबरन दबाव डालना है, तो ऐसी पवित्रता अन्याय ही है और विरोधके

१—एम० ए० यूयुफ अली-कृत मध्यकालीन भारतकी सामाजिक व आर्थिक अवस्था, पृष्ठ १७

२—एम० ए० यूयुफ अली-कृत मध्यकालीन भारतकी सामाजिक व आर्थिक अवस्था, पृष्ठ ३९

३—एम० ए० यूयुफ अली-कृत मध्यकालीन भारतकी सामाजिक व आर्थिक अवस्था, पृष्ठ ४३

उकसानेवाली है। यदि यह पवित्रता यौन-मैथुनको दबाकर अयौन-मैथुन द्वारा शान्त की जाती है, तो वह दिखाऊ और मिथ्या धारणा ही है। यदि यह रूढ़िका निरा बाहरी पालन-मात्र है और वास्तविक रूपमें नहीं बर्ती जा रही है, तो वह वृण्य, विभीषिका ही है। इसी पवित्रताके प्रति आज हमारे भारतवर्षमें भी बाधित उठी हुई है, जिसे जबरन दबाया जा रहा है। पश्चिम तो इस उक्तिके अनुसार ठीक उसी तरह बदनाम किया जा रहा है कि जैसे किसी कुत्तेको पागल बताकर हर कोई लात लगाता है। न हम दरहकीकत अधिक पवित्र हैं और न पश्चिम अधिक पतित। मानवीय प्रकृतियाँ हमारी

समान हैं और जब तक हम मनुष्य रहेंगे, समान ही रहेंगी। अपवादोंसे तो यही नियम पुष्ट होता है। डा० आइवन ब्लॉक (Dr. Ivan Block) ने शोपनहार (Schopenhaver) का समर्थन करते हुए ठीक ही तो कहा है कि—“Vast numbers of men live de jure monogamously, but de facto polygamously.” अर्थात् अधिकांश पुरुष कानूनकी दृष्टिमें तो एक स्त्री व्रती होते हैं, परन्तु वास्तविक रूपसे वे दुपत्नीक हैं। सदाचार या पवित्रता पुरुषोंके लिए नहीं, परन्तु स्त्रियोंके लिए ही है। क्योंकि स्त्री आज भी पुरुषकी सम्पत्ति और भोग्य वस्तु मानी जाती है।

मेरा विवाहित जीवन

क्या मैंने विवाह किया था, भाई! किया भी था और नहीं भी किया था। हाथरे दुर्भाग्य! मेरी किस्मतमें लिखा था कि मेरा विवाहित जीवन सुखी नहीं होगा, इसीलिए इतनी जल्दी विवाह करनेकी धुन मेरे सिरपर सवार हो गयी थी। जिस प्रेरणासे मुझे विवाह करनेकी इतनी प्रबल इच्छा हुई, वह बहुत साधारण है। मैंने एक पुराने कपड़े बेचनेवाली दूकानसे एक पुराना कोट खरीदकर पहन लिया था। घर आते समय मैंने देखा कि मालसे लदी एक बैलगाड़ी ट्राम-लाइनके ऊपर आकर अटक गयी है। गाड़ीवानके बहुत कोशिश करनेपर भी वह अपनी जगहसे जरा भी टससे मस नहीं होती थी। हम सब तो कामरेड हैं, भाई-भाई हैं। इसी भाईचारेकी बात याद कर मैंने अपने मनमें सोचा, अपने गाड़ीवान भाईकी इस आफतमें मदद करनी चाहिए। मैं अपने दोनों आस्तीनोंको चढ़ा, सारा जोर लगाकर गाड़ीको ढेलने लगा। गाड़ीके चक्के चर-चर आवाजके साथ आगे बढ़ने लगे। गाड़ी लीकसे निकलकर चल पड़ी।

गाड़ीके चक्के आगे बढ़े, गाड़ी भी चली; पर साथ ही मेरे नये ओवरकोटके बटन भी अपनी जगह छोड़ चल बसे। गाड़ीवान भाईने अपनी प्रगाढ़ कृतज्ञता ज्ञापन करनेके लिए मेरा हाथ पकड़कर धन्यवाद दिया। पर उसका धन्यवाद

स्वीकार करनेकी अपेक्षा मुझे उस समय ज्यादा खुशी हुई, जब उसने मेरा हाथ छोड़ दिया। क्योंकि अपने कोटको शरीरपर रखनेके लिए मेरे दोनों हाथोंकी बड़ी जरूरत थी।

अब मैं शर्मके मारे दौड़ते हुए घरकी ओर चला। मेरे दौड़कर जानेसे रास्तेमें जिन लोगोंको मुझसे धक्का लगता था, वे मेरा मजाक उड़ाते हुए कहते—जरा और तेज दौड़ते हुए जाओ, भाई! नहीं तो किसी टेढ़ेसे पाला पड़ जायगा, तो मजा चखा देगा। मैं तो शर्मके मारे जमीनमें गड़ा जा रहा था। इसलिए मेरे दोनों पैर जितनी तेजीसे मुझे ले भाग सकते थे, उतनी तेजीसे मैं दौड़ने लगा। आखिर बिलकुल बेदम होकर अपने घर पहुंचा और अन्दर जाकर दरवाजा बन्द कर दिया।

उसके बाद मैं अपने कोटके टूटे बटनोंसे रिक्त हुए स्थानोंकी पूर्तिके लिए चेष्टा करने बैठा। यह बड़े झमेलेका काम था। कहाँसे सई लाऊँ, कहाँसे तागा लाऊँ। हार मानकर बैठ गया और सोचने लगा—हाय मेरा भाग्य! मेरा अपना कोई ऐसा नहीं, जो मेरे कोटके इन टूटे बटनोंको लगा सके। उस समय मेरे मस्तिष्कमें विवाह करनेकी प्रबल इच्छा विद्युत्-गतिसे प्रवाहित होने लगी—विवाह होनेपर ही मेरी सारी समस्याएँ हल हो सकती हैं।

अब सुनिये, उसके बाद क्या हुआ ।

हमारे कारखानेके पास एक स्त्री रहती थी । वह फल बेचती थी । वह बड़ी हष्ट-पुष्ट और सुन्दर युवती थी । उसे देखकर मेरी आंखें जुड़ा जाती थीं । वह मनमोहिनी थी या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता; पर वह नयन-मोहिनी अवश्य थी । उसका नाम था—डोरिया सेमेनोगुना । और सच कहनेमें शर्म किस बातकी—मैं स्वीकार करता हूँ कि जब कभी उससे मेरी मुलाकात होती, तब मैं उससे दो-चार बातें भी कर लिया करता था और फुरसत मिलनेपर मैं खुद उसकी दूकानके सामने खड़ा हो, बड़ी देर तक बातें करता ।

इसी तरह मेरे मनमें विवाह करनेका सङ्कल्प उठा । एक नया कोट बनवाकर पहना । वालोंको संवार, ब्रश किया । अपने दोनों हाथोंको अच्छी तरह साफ किया । उसके बाद कम्पित हृदयसे द्रुतगतिसे डोरियाकी दूकानकी ओर चला ।

कुछ देर तक इधर-उधरकी बातें करनेके बाद मैंने कहा—अच्छा बन्धु, तुम्हें अपने कामसे कब फुरसत मिलेगी ?

डोरियाने एक धूर्त कुटिल मुस्कानके साथ कहा—जरूरत पड़नेपर जब चाहे फुरसत मिल सकती है ।

“तुमसे मेरा एक बहुत जरूरी काम है । जो युवतियां मेरे गले पड़ना चाहती हैं, मैं उनमें किसीको भी पसन्द नहीं करता । मगर तुममें एक ऐसी खूबी है, जिससे मेरा मन बराबर तुम्हारी ही ओर खिंचता है ।”

जब डोरियाने देखा कि मैं सचमुच उसकी ओर आकर्षित हो गया हूँ, तब उसने अपने मनके असली भावको छिपाते हुए चालबाजीसे कहा—“मैं तो तुम्हें खुशी रखनेके लिए हर-दम तैयार हूँ ।”

“तब फिर क्या, चलो ।”

उसके दूसरे ही दिन हम दोनोंके विवाहकी रजिस्ट्री हो गयी ।

मेरी नववधू मेरी गृहलक्ष्मीके रूपमें मेरा घर बसानेके लिए आयी । आते समय वह अपने साथ एक बड़ी गठरी ले आयी, जिसमें कितनी ही बिछौनेकी चादरें और दरवाजे और खिड़कियोंके पर्दे थे । और ले आयी गमलेमें बैठाया हरे पत्तों-वाला एक फूलका पौधा । वह मेरे घरकी खिड़कीकी शोभा बढ़ानेके लिए लाया गया । संक्षेपमें यह कहना है कि वह अपने साथ जो देहज ले आयी, वह परी-रानियोंके ही उपयुक्त था ।

दूसरे दिन सबेरे जब मैं सोकर उठा, तो देखा कि खानेकी टेबुलको खूब करीनेके साथ सजाया गया है । यह देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई । मैंने अपने मनमें सोचा कि मेरे मुंह-हाथ धोकर आते-आते, चाय निश्चय तैयार मिलेगी । उसी समय मुझे मालूम हुआ कि विवाह कितना सुखमय होता है ।

पारिवारिक जीवनका सुख-स्वाच्छन्द्य एकमात्र कविकी कल्पना अथवा आकाश-कुसुम नहीं है, यह अनुभव कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । मैंने बड़े आरामसे पलंगपर दो-चार बार करवटे बदलीं । उसके बाद विस्तरको छोड़कर उठा, एक अंगड़ाई ली, आंखोंको मीचकर नींद और आलसको दूर किया । फिर देखा, जलपानकी टेबुलके पास बैठा एक दस वर्षका छोकरा भूखसे तड़फड़ाता हुआ जल्दी-जल्दी एक सेव काटकर खा रहा है ।

मैंने अपनी प्रियसी गृहिणीसे पूछा—अरे, यह छोकरा कौन है ? शायद तुम्हारे किसी रिश्तेदार या आत्मीयने इसे तुम्हारे विवाहके उपलक्ष्यमें उपहार देकर भेजा है । इससे तो उनकी खुबुदिका परिचय मिलता है ।

मेरी प्रियाने बीचमें ही मेरी बात काटकर कहा—अरे नहीं, नहीं, यह बात नहीं है । यह मेरा लड़का है, यह बचपनसे मेरी माँके साथ रहता था ।

सुनते ही मेरा खून खौल उठा । क्रोधसे उत्तेजित होकर मैंने कहा—यह बात ! तुमने इसे अब तक छिपा क्यों रखा था ? पहले मुझे क्यों नहीं बतलाया ? मेरी गर्दनपर चढ़ बैठनेके पहले मुझे इसकी खबर क्यों नहीं दी गयी ?

उसने भी झनझनाते हुए स्वरमें कहा—क्या तुमने इसके बारेमें मुझसे पूछा था ? या मुझे कुछ कहनेके लिए मौका दिया था ? चट मंगनी और पट ब्याहकी तरह तो मेरा-तुम्हारा व्याह हुआ । खैर, मेरे लड़केको देखकर तुम्हें इतना गर्म होनेकी जरूरत नहीं । क्योंकि मेरा पूर्व-पति अपने इस बच्चेके लिए हर महीने रुपये भेजता है ।

पूर्व-पति ! सुनकर मेरा मिजाज और भी गर्म हो गया । पर गुस्सेको पीकर रह गया । कुछ बोला नहीं । क्रोधसे जर्जरित हो चुपचाप मैं अपना काम करने बाहर चला गया ।

शामको जब मैं कामपरसे घर लौटा, तो जो कुछ देखा, उससे मेरी आंखोंको विश्वास नहीं हुआ । मेरी आंखोंने देखा, भोजनकी टेबुलपर एक नहीं, दो लड़के बैठे हैं । आश्चर्यसे मैं

अवाकू हो गया। यह दूसरा लड़का कौन है, यह पूछनेके लिए मेरी प्रेयसीने मुझे मौका नहीं दिया। वह आप ही आप कहने लगी—देखो, यह मेरा मंझला लड़का है। यह भी अब तक अपनी नानीके यहां था। इतने दिनोंके बाद मैं इसे अपने यहां ले आयी हूँ। इसके लिए भी तुम्हें किसी तरहकी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं; क्योंकि मेरा दूसरा पति—इसका पिता—इसके लिए हर महीने खर्च भेजता है।

क्रोधके मारे मैं जलभुन उठा। अपने सिरपर टोपीको दबाकर रखा और अपने क्रमशः वर्द्धमान परिवारको ओर न देखते हुए, अपने दुःखकी बात सुनानेके लिए अपने मित्र मितियाके घरकी ओर निकल पड़ा।

मितियाने मुझे देखते ही अपने दोनों हाथोंको मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा—आओ दोस्त, सुना है तुमने शादी की है। बड़ी खुशीकी बात! आओ मैं तुम्हें बधाई दूँ और चलो इस उपलक्ष्यमें एक साथ बैठकर खायें-पियें।

पर मैंने उसकी बधाईकी ओर तनिक भी ध्यान न देकर व्यग्रतासे कहा—मितिया, तुम मेरी रक्षा करो भाई। मैं एक बड़ी आफतमें फँस गया हूँ।

उसके बाद मेरे मनमें जो बातें उठ रही थीं, उन्हें बेधड़क कह सुनाया।

उसने मेरी बातें बड़े ध्यानसे सुनीं। एक बार सिर हिलाया और मेरे कन्धेपर एक हल्की चपत लगाते हुए कहा—“तब तो इस हरामजादी औरतने तुम्हें अच्छी तरह ठग लिया। तुम्हें बिल्कुल बेवकूफ बना दिया है। जो रास्ता उसने तुम्हें दिखलाया है, अगर तुम भी उसे वही रास्ता नहीं दिखलाओगे, तो वह तुम्हारे सिरपर आध दर्जन बच्चोंका बोझ लाकर लाद देगी।”

“तुम्हारी बात तो मैं समझ नहीं सका। तुम्हारे कहनेका मतलब क्या है? क्या मैं उसे रोज दो-चार घूसे लगाना शुरू कर दूँ?”

“ना, ना, ऐसा करोगे, तो कानूनकी चपेटमें आ जाओगे। कानूनके खिलाफ चलना अच्छा नहीं होगा। तुम इस बातकी कोशिश करो कि वह शैतान भागकर आप ही आप अपने बोरिया-बंधना ले जहांसे आयी है, वहीं चली जाये। उसने तुम्हारे सिरपर अपने दो शहजादोंको बैठाकर तुम्हें ठगा है, तो तुम भी उसके साथ वही बर्ताव करो।”

“मगर मुझे लड़के कहां मिलेंगे?”

मितिया ठाकर हंसा। बोला—“मालूम होता है, तुम्हारे दिमागमें कुछ रह नहीं गया है। जाओ, थोड़ी देर आराम करो। तुम्हारे लिए दो लड़के अभी ठीक किये देता हूँ।”

इसके बाद मितिया बाहर चला गया और एक घण्टेके बाद अपने साथ दो लड़के लिये वापस लौटा। उनमेंसे एकके सिरपर टोपी थी। उसमें एक बैज लगा था। उसके बदनमें जो कोट था, उसमें सैकड़ों छेद थे। दूसरा एक लड़कीका जैकेट पहने था, जो उसके घुटनों तक लटक रहा था। पैरोंमें मोजे नहीं थे और जूतेके बंदे गेलोश थे, जो जूतेके ऊपर पहने जाते हैं। दोनों ही धूल-मिट्टी लपेटे थे। उनके चेहरे काले थे, जैसे कहीं कालिख पोत ली हो।

मितियाने कहा—यह देखो, कैसे बढ़िया दोनों नमूने कुरस्की स्टेशनसे ले आया हूँ। मैंने रास्तेमें ही इन दोनोंको तालीम दे दी है कि इन्हें क्या करना होगा। ये तुम्हें ‘पापा’ कहकर पुकारेंगे। जिसके सिरपर टोपी है, उसका नाम है मिचका और दूसरेका नाम है, सेयानका।

मिचकाने आगे आकर मुझसे कहा—यह लेन-देनका सामला है, जब तक तुम हमें पेट-भर खानेको दोगे, तब तक हम तुम्हें पापा कहेंगे, हमें कपड़े-वपड़ेकी उतनी चाह नहीं, मगर दो-दो सिगरेट हमें रोज देने होंगे।

मैं उन्हें अपने घर ले गया। उनकी सूरत देखते ही मेरी प्रेयसीको तो जैसे मूर्च्छा आने लगी। उन खूबसूरत चेहरोंका जुलूस देखकर उसका खून सूख गया। पछाड़ खाकर वह पलंगपर जा गिरी—ये किस देशके रहनेवाले हैं? इन अजीब चिड़ियोंको तुम कहाँसे पकड़ ले आये?

मैंने बड़े शान्त भावसे प्रेयसीसे कहा—क्यों? तुम इस तरह चकरा क्यों रही हो? ये दोनों मेरी पहली दो स्त्रियोंके लड़के हैं। अब तक ये अपनी दादीके यहां रहते थे।

यह सुनकर मेरी प्रेयसी क्रोधके मारे आग-बबूला हो उठी और टेबुलपरसे एक-एक करके सब शीशेके गिलासोंको जमीनपर फेंक-फेंककर फोड़ने लगी। जितने जोरसे वह चिल्ला सकती थी, उतने जोरसे चिल्लाकर उसने कहा—ऐसे जङ्गली जानवरोंको, ऐसे मैले-कुचैले छोकरोँको मेरे घरमें लाकर जमा कर रहे हो?

श्रीमतीजी एक ही छुरमें अनाप-शनाप बकती चली जा रही थीं। थोड़ी देर बाद जब जरा दम लेनेके लिए रुकीं, तब मौका पाकर मैंने कहा—तो मैं क्या करूं, तुम्ही बताओ। मेरी तो इतनी आमदनी नहीं है कि दो-दो जगह खर्च चलाऊं। और चाहे जो हो, फिर भी, ये तो मेरे रक्त-मांससे ही जन्मे हैं। इन्हें कैसे छोड़ दूँ।

इधर हम दोनोंमें कथनोपकथन हो रहा था, उधर मिचका और सेयानका हमारी बातोंकी ओर जरा भी ध्यान न देकर टेबुलपर रखी खानेकी चीजोंपर हाथ साफ करनेमें लगे थे। यह देखकर मेरी प्रेयसीका पारा एकदम गर्म हो गया। दोनों हाथोंसे अपना सिर धुनती हुई वह बिस्तरेपर जा गिरीं और एक घण्टे तक पड़ी-पड़ी चिल्लाती, बड़बड़ाती रही। उसके बाद उसने फिर होश संभाला और मुझे अपने पास बुलाकर कहा—देखो, तुम दो स्त्रियोंके पति हो, और मैं दो पतियोंकी स्त्री हूँ, तब हम दोनोंके लिए यह मुनासिब नहीं है कि अपने आराम और चैनकी जिन्दगीमें खलल डालें। मैं अपने दोनों लड़कोंको इनकी नानीके पास भेज देती हूँ और तुम अपने दोनों लड़कोंको इनकी दादीके पास भेज दो।

मैंने अपनी विजयपर मन-ही-मन हर्षोत्फुल्ल होकर कहा—ओहो ! अब तो और छुर बोलने लगा। दवाने तो अपना पूरा असर दिखाया।

मैंने अपनी प्रेयसीसे कहा—हां, हां, मैं राजी हूँ।

मैंने मिचका और सेयानकाको आंखोंसे इशारा करते हुए कहा—अरे छोड़ो, लो ये पांच पैसे। सेव खरीदकर खाना, और दौड़कर अपनी दादीके पास चले जाना।

पर मैं अपने उन दोनों सिखाये लड़कोंके गुणसे पूरा परिचित तो था नहीं, वे दोनों मेरी गर्दन पकड़कर जोरसे कहने लगे—चले हो हमीसे चालाकी करने। तुम्हारी सब कार-

साजी खोलकर बतला देंगे। पहले तो हमें पेटभर खिलानेका लालच देकर यहां ले आये और अब पांच पैसे देकर हमें घरसे निकाल रहे हो। यह मत समझ रखो कि तुम इतनी आसानीसे हम लोगोंसे छुट्टी पा जाओगे। इसके बाद मिचकाने मेरी प्रेयसीसे कहा—सुनो बीबी, एक लोहेकी छड़ आगमें गर्म करके लाल कर लो और उसीसे दाग-दागकर इस शैतानको अपने घरसे निकाल दो। यह हम दोनोंको फूसलाकर स्वांग रचनेके लिए यहां ले आया था। हम लोग हर्गिज इसके लड़के नहीं हैं।

मेरी स्त्रीने, जिसने थोड़ी ही देर पहले बड़ी नमीसे अपने-अपने लड़कोंको छोड़ देनेका प्रस्ताव किया था, मिचकाकी बात सुनकर क्रुद्ध बाघिनीकी तरह गरजकर कहा—ओ, ओ-ओ, यह बात है। हमारे मिलनके प्रथम दिनसे ही तुमने मुझे ठगना शुरू कर दिया। अब मैं तुम्हारे घरमें एक क्षण भी नहीं ठहर सकती। मैंने तीन-तीन मर्दोंसे शादी की और छोड़ दिया, पर उनमें कोई भी तुम्हारी तरह खतरनाक आदमी नहीं था।

इसके बाद गुस्सेसे बड़बड़ाते हुए उसने खिड़कीके पर्दे खोल डाले, बिस्तरकी चादर उठा ली और जो-जो चीजें अपने साथ ले आयी थी, उन्हें समेटकर एक गठरी बांधी और उसे बगलमें लटका अपने दोनों लड़कोंके हाथोंको धरे मेरे घरसे बाहर निकल गयी।

मिचका और सेयानका भी उसके पीछे-पीछे चले। वे दोनों जाते समय पीछे मुड़-मुड़कर मुझे जीभ निकालकर और मुंह विचकाकर चिढ़ाते रहे।

इस प्रकार मेरे विवाहित जीवनका एक फूल मुरझाकर मेरी स्मृतिसे गिर गया। *

* एन० ए० कार्पककी एक रूसी कहानी।



विश्व और प्रलय

श्री गिरिजादत्त त्रिपाठी, एम० ए० व्याकरण-न्यायाचार्य

सारा संसार अपने भाग्यका नाटक खेलनेमें मस्त और व्यस्त है। रङ्गस्थलीमें अभिनेताओंके दिलचस्प अभिनयसे चहल-पहल मची है। अभिनय करनेमें इतनी दिलचस्पी है कि इसके सामने कुछ भी नहीं सूझता; लेकिन यह महानाटक ऐसा विचित्र है कि इसका पटाक्षेप होनेके बाद फिर उठेगा या नहीं, इसमें सन्देह ही है। जबसे विधिने इस विश्वको रचा, तबसे न जाने कितनोंका उत्थान हुआ तथा कितने पतनके समुद्रमें विलीन हो गये। वस्तुतः “यह सम्पूर्ण भूमण्डल, जिसकी काया अनवरत शोणित-स्त्रावसे प्रभावित है, एक बहुत विस्तृत बलिवेदी है, जिसपर संसारके सारे प्राणी बलि चड़ाये जायेंगे और वह बलिदान कार्य, सीमा, परिमाण तथा व्यवधानसे रहित होते हुए तब तक जारी रहेगा, जब तक कि अन्तिम निर्णय न हो जाय, जब तक निखिल पाप नष्ट न हो जाय तथा जब तक मृत्युकी भी मौत न हो जाय।”

राष्ट्रके बाद राष्ट्र अपने मजबूत पैरोंपर खड़े हुए और अपनेको खो बैठे। बड़े-बड़े धुरन्धर वीरोंने इस विशाल विश्व-पिण्डको अपने रक्तकी पुनीत धाराओंसे प्रभावित किया, जिनके लिए आज भी इस वसुधाको गर्व है, उनके वीरोचित कर्तव्यपर नाज है। आखिर ये सारी चीजें कहाँ गयीं? किस झझावातने अपने कलुषित क्रोड़में इन्हें स्थान दिया? इन सन्देहात्मक गुत्थियोंको सुलझानेका प्रयत्न बड़े-बड़े आचार्य करते आ रहे हैं, लेकिन कहाँ तक उन्हें सफलता हाथ लगी— यह कहना कठिन है। ये सांसारिक वस्तुयें क्या हैं? इनका कभी नाश होगा या नहीं? इस प्रकारके प्रश्नोंने आजकी दुनियामें एक हलचल मचा रखी है। इन प्रश्नोंके समाधानके लिए हम दार्शनिकोंकी शरणमें जाते हैं, जहाँ तर्क अनुभवको सहकारी बनाकर हमें सन्मार्ग दिखानेका सफल प्रयत्न करता है, और वहाँ हमें परम सन्तोष भी प्राप्त होता है। वे हमारे सामने यह अनुभव-सिद्ध बात रखते हैं कि जिस प्रकार विश्वकी और चीजोंके अस्तित्वपर सन्देह करनेकी गुञ्जायश नहीं है उसी प्रकार प्रलयका अस्तित्व भी बहुत ही जबरदस्त नींवपर खड़ा है।

यह चराचर जगत् व्यावहारिक सत्ताके जटिल बन्धनसे बंधा है। व्यवहार करनेके लिए ‘हम’, ‘तुम’ इत्यादि विभिन्न प्रयोग किये जाते हैं; किन्तु इनमें पारमार्थिकता नहीं। पारमार्थिकता तो केवल अखण्ड सच्चिदानन्द परब्रह्ममें है। किसीका आज नाश होता है, तो किसीका कल। इस प्रकार नियति-चक्रमें पड़कर विश्वकी निखिल वस्तुयें अभाव-रूपमें परिणत हो जाती हैं। यह विश्व-वृक्ष जिस बीजसे उत्पन्न हुआ है, उसीमें अन्ततोगत्वा विलीन हो जायगा; क्योंकि बाह्य जगत्की सत्ता बिल्कुल चिरस्थायिनी नहीं है। इसकी उत्पत्तिके विषयमें अनेक मत हैं। प्रकृतिवादी निरीश्वर सांख्यका यह सिद्धान्त है कि जड़ात्मिका प्रकृतिसे ही महादि क्रमसे संसारकी उत्पत्ति होती है। उस प्रकृतिमें सत्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण रहते हैं, और जब ये तीनों गुण साम्य अवस्थामें रहते हैं, तब वह प्रकृति कही जाती है, और जब गुणोंमें वैषम्य आता है, तब यह संसार निर्मित होता है। यही सिद्धान्त पातञ्जल योगका भी है। नैयायिकोंकी सृष्टि-प्रक्रिया इससे भिन्न है। वे परमाणुको नित्य मानकर परस्पर उनमें अदृष्टवशात् संयोग होनेसे इत्रनुकादि क्रमसे महाअवयवीकी उत्पत्ति मानते हैं। करीब करीब यही व्यवस्था-वैशेषिकोंकी है। सबसे विलक्षण सिद्धान्त है वेदान्तियोंका। वे परब्रह्मका विवर्त × तथा मायाका परिणाम * इस विश्व-वाटिकाको मानते हैं। इसी प्रकार अनेकों मत हैं, जिनका उल्लेख लेखके विस्तार-भयसे नहीं किया जाता है।

× विवर्तकी परिभाषा यह है कि जो अपने कारणसे विषमसत्ताको अपनेमें रखे, वह विवर्त है। ब्रह्मका विवर्त संसार है। ब्रह्ममें नित्यत्व आदि सत्तामें हैं और संसारमें ठीक उसकी उल्टी सत्तामें, इसलिए यह संसार ब्रह्मका विवर्त कहा जाता है।

* परिणाम वह है, जो अपनेमें कारणके समान सत्ताको रखे। जैसे माया अनादि तथा सान्त है, अनित्य है, अज्ञान-रूप है। ठीक इसके अनुकूल ही संसारकी सत्ता है। इसलिए यह संसार मायाका परिणाम कहा जाता है।

यह निर्विवाद सिद्ध है कि जिस चीजकी उत्पत्ति होती है, उसका नाश भी अवश्य ही होता है। प्रकृतिकी गोदमें फूले-फले सभी पदार्थ एक दिन अनन्तकी सुखशयावर सो जायेंगे। इसी नाशको 'प्रलय' शब्दसे भी व्यवहृत करते हैं। प्राचीन आचार्योंने 'प्रलय'का स्वरूप बताया है 'त्रैलोक्यका नाश', अर्थात् सकल कार्योंके नाशको प्रलय कहते हैं और इसी बातको हमारा अनुभव भी पुष्ट करता है। विश्वकी वस्तुओंका स्वरूप भी दो प्रकारका बताया गया है—एक तो वह है, जिसे नित्य कहते हैं और दूसरा वह, जो अनित्यके नामसे पुकारा जाता है। जब सारी अनित्य वस्तुयें अपने बाह्य रूपके नष्ट हो जानेपर अपने कारणमें लीन हो जाती हैं, उसीको प्रलय कहा जाता है। यह प्रलय चार विभागोंमें विभक्त किया गया है—नित्य, प्राकृत, नैमित्तिक तथा आत्यन्तिक। हर एक मनुष्यको भी चार अवस्थाओंका अनुभव करना पड़ता है—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। तृतीय अवस्था जो सुषुप्ति कही गयी है, उसे ही नित्य प्रलय कहते हैं; क्योंकि इस प्रकारके प्रलयका अनुभव मनुष्यको प्रतिदिन हुआ करता है। सारांश यह कि सुषुप्तिकालीन जो प्रलय है, वही नित्य प्रलय कहा जाता है। जब मनुष्य स्वाभाविक प्रवृत्तिसे प्रेरित होकर सोता है, तब वह साधारण शयन स्वप्न कहा जाता है, लेकिन जब वह गाड़ी नींदमें आता, उस समय उसे किसी वस्तुका कोई भी ज्ञान नहीं होता है और वही सुषुप्तिके नामसे पुकारा जाता है। सुषुप्तिके बाद उठनेपर मनुष्यको यह ज्ञान होता है—“सुखमहमस्वाप्सं न किञ्चिदवेदिषम्”, अर्थात् सुख-पूर्वक मैं सोया, कुछ भी नहीं जाना। यह एक विवादास्पद विषय है कि सुषुप्ति-कालमें ज्ञान होता है या नहीं। अथवा सकल कामोंका नाश होता है या नहीं। अनुभव तथा उपनिषदोंसे भी यही पता चलता है कि उस कालमें ज्ञान नहीं होता और सारे कर्म लीन हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि अन्तःकरण रहनेसे ही किसी प्रकारका अनुभव तथा कार्य होता है और अन्तःकरण उस समय अविद्यामें लीन हो जाता है। यद्यपि इस पूर्वोक्त विषयको सिद्ध करनेके लिए अनुभव तथा उपनिषद प्रमाणके लिए रखे जाते हैं, तथापि यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि सुषुप्ति-कालमें सकल कार्योंका नाश हो जाता है, तो इसी नियमसे धर्म, अधर्म तथा स्मरणके कारणीभूत संस्कारका भी नाश हो जायगा, तब सोनेके

बाद उठनेवाले व्यक्तिको सुख-दुःखका स्मरण तथा अनुभव नहीं होना चाहिए। इसका कारण यह है कि सुख-दुःखके प्रति धर्म-अधर्म कारण हैं तथा स्मरणके प्रति संस्कार कारण हैं और उन सबोंका सुषुप्ति-कालमें विलय हो गया है। ऐसी परिस्थितिमें सारे कर्मोंका अवसान ही कुछ घण्टोंमें हो जायगा। इस प्रश्नका समाधान बहुत ही संक्षिप्त शब्दोंमें किया जा सकता है और वह समाधान नहीं है कि उन धर्मादिकोंका नाश नहीं होता है, अपितु कारण-रूपसे अर्थात् अविद्या-रूपसे सब विद्यमान रहते हैं। इसलिए शयनसे जागृत मनुष्यको सुख-दुःखादिके अनुभव होनेमें कोई बाधा नहीं।

इन सब बातोंके रहते एक दूसरी शङ्का यह उत्पन्न होती है कि जब सुषुप्ति-कालमें अन्तःकरणका भी नाश हो जाता है, तब उस हालतमें मरे हुए पुत्र तथा सुषुप्त पुत्रमें क्या भेद हुआ? क्योंकि मृत व्यक्तिके अन्तःकरणादि जिस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह गाड़ी नींद लेते हुए पुत्रका भी अन्तःकरण नष्ट हो जाता है। इस प्रश्नका उत्तर वेदान्तियोंने तीन प्रकारसे दिया है। सर्वप्रथम तो उनका यह कहना है कि अन्तःकरणका नाश हो जाता है, यह कथन ही भ्रम-मात्र है। वस्तुतः अन्तःकरणका नाश नहीं होता; क्योंकि यदि अन्तःकरणका नाश हो जाय, तो कुछ घण्टोंके बाद उसकी उपलब्धि कैसे? एक उत्तर यह है कि अन्तःकरणमें दो शक्तियाँ निरन्तर काम करती हैं—वहली ज्ञानशक्ति और दूसरी क्रिया-शक्ति। सुषुप्ति-कालमें ज्ञान-शक्ति-विशिष्ट अन्तःकरणका नाश तो हो जाता है, लेकिन क्रिया-शक्ति-विशिष्ट अन्तःकरणका नाश नहीं होता। इस क्रिया-शक्तिमें वह शक्ति है, जो प्राणादि क्रियाको जारी रखती है। सुषुप्ति-कालमें प्राणदिकोंकी स्थितिमें उपनिषद् भी साक्षी हैं। वृहदारण्यक तथा छान्दोग्य श्रुतियाँ इस प्रकार इसका समर्थन करती हैं—“यदा एतः स्वप्नं न कञ्चन पश्यति अथास्मिन् प्राणे एकधा भवति अथैनं वाक् सर्वेनोमभिः सहाप्येति”, “सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति।”

इसके बाद दूसरा प्रलय है 'प्राकृत प्रलय'। यह 'प्राकृत' शब्द प्रकृति शब्दसे बना है और इसकी व्युत्पत्ति है 'प्रकृतौ (मायायां) भवः प्राकृतः'। जो प्रलय मायायामें होता है, वह प्राकृत प्रलय है। सौषुप्तिक प्रलय और प्राकृत प्रलयमें इतना अन्तर है कि प्रथममें सुख आदिका विनाश अन्तःकरणमें होता

है और दूसरेमें प्रकृतिमें। कार्य ब्रह्मका जब विनाश होता है, तब सकल कार्य नष्ट हो जाते हैं। जिस व्यक्तिको जब ब्रह्म-साक्षात्कार हो गया और निखिल प्रारब्धकर्म समाप्त हो जानेके कारण विदेह कैवलयात्मक परमपद प्राप्त हो गया, तब तो सत्य-लोकमें निवास करनेवालेको ब्रह्मके साथ एकीभाव हो जाता है। इस बातको श्रुति भी सिद्ध करती है—

ब्रह्मणा सहते सर्वे सम्प्राप्ते प्रति सञ्चरे।

परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् ॥

कार्य-ब्रह्मके नष्ट हो जानेपर सत्यलोक-वासियोंके अखिल स्थावर, जड़म, भौतिक तथा भूतोंका प्रकृतिमें लय होता है, ब्रह्ममें नहीं। इसका कारण यह है कि बाध-रूप जो नाश है, वही ब्रह्ममें रहता है, अन्य नहीं। इसलिए इसको 'प्राकृत प्रलय' कहते हैं।

मायाको वेदान्तियोंने अनादि तथा सान्त माना है। यह माया या अविद्या कबसे चली आती है, यह कहना कठिन है। लेकिन इसका अन्त अनुभव-सिद्ध है। इसी मायाका कौतुक या विलास यह विश्व-रङ्गमञ्च है, जिसपर माया नटी अपना विविध कलापूर्ण अभिनय दिखाती है। यवनिका-पात होनेपर जब वह माया अन्तर्हित हो जाती है, उस समय इस विश्वका सारा खेल बन्द हो जाता है। यही विश्वकी विशद व्याख्या है। इसी मायाको प्रकृति शब्दसे भी व्यवहृत करते हैं और इसका अधिष्ठाता वही परमेश्वर है, जिसकी विभूति सर्वतोव्याप्त है। भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—“मायां तु प्रकृतिं बिद्धि मायिनं तु महेश्वरम्।” इसी मायारूप परिणामि कारणमें सकल कार्योंके नाशको प्राकृत प्रलय कहते हैं। उस मायामें दो शक्तियाँ अनवरत काम करती हैं, एक आवरण-शक्ति और दूसरी विक्षेप-शक्ति। तात्पर्य यह कि अज्ञानमें आवरण तथा विक्षेप उत्पन्न करनेकी शक्ति निहित है। जिस प्रकार अनेक योजन-पर्यन्त विस्तृत सूर्य-मण्डलके सामने एक छोटे मेघ-खण्डके आ जानेसे नयन-रश्मियोंका मार्ग रुक जाता है और यह ज्ञान होता है कि सूर्य-मण्डल छिप गया, उसी प्रकार आवरण-शक्ति परिमित होती हुई भी अपरिमित आत्माको आच्छन्न करती-सी प्रतीत होती है—

“वनचञ्चलं दृष्टिर्नचञ्चलमर्कं यथा मन्यते निष्प्रभं चाति-मूढः। तथा बद्धवद् भाति यो मूढ-दृष्टेः स निलोपलब्धि स्वरूपोऽहमात्मा।”

इसी आवरण-शक्तिके प्रतापसे प्रभावित आत्माको कर्तृत्व, भोक्तृत्व तथा सुख-दुःख-मोहात्मक तुच्छ संसारकी भावना भी होती है। विक्षेप-शक्तिके द्वारा रज्जु विषयक अज्ञान अज्ञानसे आवृत रज्जुवच्चिन्न चैतन्यमें सर्पको उत्पन्न करता है। इसी प्रकार अज्ञान अविद्यासे आच्छन्न आत्मामें विक्षेप-शक्तिकी सहायतासे आकाशादि प्रपञ्चको उद्भूत करता है। इस प्रकारकी प्रपञ्च पैदा करनेकी शक्ति उस अज्ञानको प्राप्त है, “विक्षेपशक्तिर्लिङ्गादि ब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत्।”

इसके अनन्तर तीसरा प्रलय है नैमित्तिक प्रलय। ब्रह्मके दिवसावसान-पर्यन्त जो प्रलय है, उसे ही नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। इसमें सत्यलोक तथा उसके भीतर रहनेवाले कार्योंके अतिरिक्त सकल कार्योंका नाश हो जाता है। चतुर्युग सहस्र परिमित ब्रह्मका दिन माना गया है। इसमें प्रमाण श्रुति है, “चतुर्युग सहस्राणि ब्रह्मणो दिन मुच्यते।” इन दोनों प्रलयोंको सिद्ध करनेके लिए पौराणिक वचन भी मिलते हैं।

‘द्विपराद्धैतनिकान्ते ब्रह्मणः परमेशिनः

तदा प्रकृतयः सप्त कल्प्यन्ते प्रलयाय हि

एष प्राकृतिको राजन् प्रलयो यत्र लीयते’

“एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक्

शेतेऽनन्तासने नित्यमात्मसात्कृत्य चाखिलम्”

आत्यन्तिक प्रलय ब्रह्म-साक्षात्कारके कारण सारे कार्योंके नाशको कहते हैं। जो सम्प्रदाय जीवैक्यवादका समर्थन करता है, उसके मतमें एक ही कालमें सर्व-निवृत्ति रूप मोक्ष हो जाता है और जिस सम्प्रदायका सिद्धान्त है ‘जीवमें नानात्ववाद’, उसके अनुकूल सकल कार्योंका क्रमिक नाश होता है, एक कालमें नहीं। पूर्वोक्त तीनों प्रकारके प्रलयमें तथा अन्तिम प्रलयमें यह अन्तर है कि तीनों प्रलय निखिल कर्मोंके अवसानके कारण होते हैं और तुरीय प्रलय ज्ञानके उदीस होनेसे होता है।

अब यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जिस क्रमसे जगत्का निर्माण हुआ है, उसी क्रमसे इसका नाश होता है या विपरीत क्रमसे? न्याय-सिद्धान्तके अनुकूल तो यही कहना पड़ेगा कि जिस द्वयणुकादि क्रमसे उत्पत्ति होती है, उसी क्रमसे द्वयणुकादि-नाश द्वारा प्रलय भी होता है; लेकिन वेदान्त-सिद्धान्त इसके बिल्कुल विपरीत है। वेदान्तियोंके कहनेका तात्पर्य यह है कि भूत तथा भौतिक

पदार्थोंका नाश कारण-लय-क्रमसे नहीं, अपितु कार्य-लय-क्रमसे होता है। यह सिद्धान्त एक प्रबल युक्तिकी भित्तिपर अवलम्बित है और वह युक्ति यह है कि जिस समय कारणका लय हो रहा है, उस समय किसी आश्रयके न होनेके कारण कार्योकी स्थिति कहाँ होगी; क्योंकि किसी वस्तुकी स्थितिके लिए किसी आश्रयकी आवश्यकता होगी, लेकिन यहां विनश्यदवस्थामें आश्रय कोई रहा नहीं। इसलिए निर्माण-

क्रमसे विपरीत-क्रमसे तत्तत् कार्य-नाशमें उनको उत्पन्न करनेवाले अदृष्ट-नाशको ही कारण मानना पड़ेगा। उपादान कारणके नाशसे कार्योका नाश नहीं हो सकता। सारांश यह कि पृथ्वीका जलमें, जलका तेजमें, तेजका वायुमें, वायुका आकाशमें, आकाशका जीवाहङ्कारमें, जीवाहङ्कारका हिरण्यगर्भाहङ्कारमें और हिरण्यगर्भाहङ्कारका अविद्यामें प्रलय होता है।

आज क्या दीपक जलाऊं ?

प्यार-दीपक-रिक्त-उरमें कौन-सा आलोक लाऊं !

आज तो स्मृति एक जलती जगमगाकर तिमिर जगमें ।

ज्वलित आशाके चिताकण बिखरते हैं हृदय-मगमें ।

तिमिरके इस सिन्धुमें मैं आज ज्वालासे नहाऊं ।

एक चिर-दिनकी पिपासा-ज्वाल धू-धू जल रही है ।

छेड़ जिससे खेल जगती राह अपनी चल रही है ।

जल रहे जो प्राण अविरल गरलसे कैसे बुझाऊं ?

आज तो बस, दीप दुखके तिमिरमें अपने जलाकर ।

पृष्ठ जीवनके भरे जिनसे, पढ़ूं वे करुण अक्षर ।

शेष अब क्या, उर-अमामें, कौन-से दीपक सजाऊं ।

तिमिर-नभमें दाग उरके जल रहे हैं झिलमिलाते ।

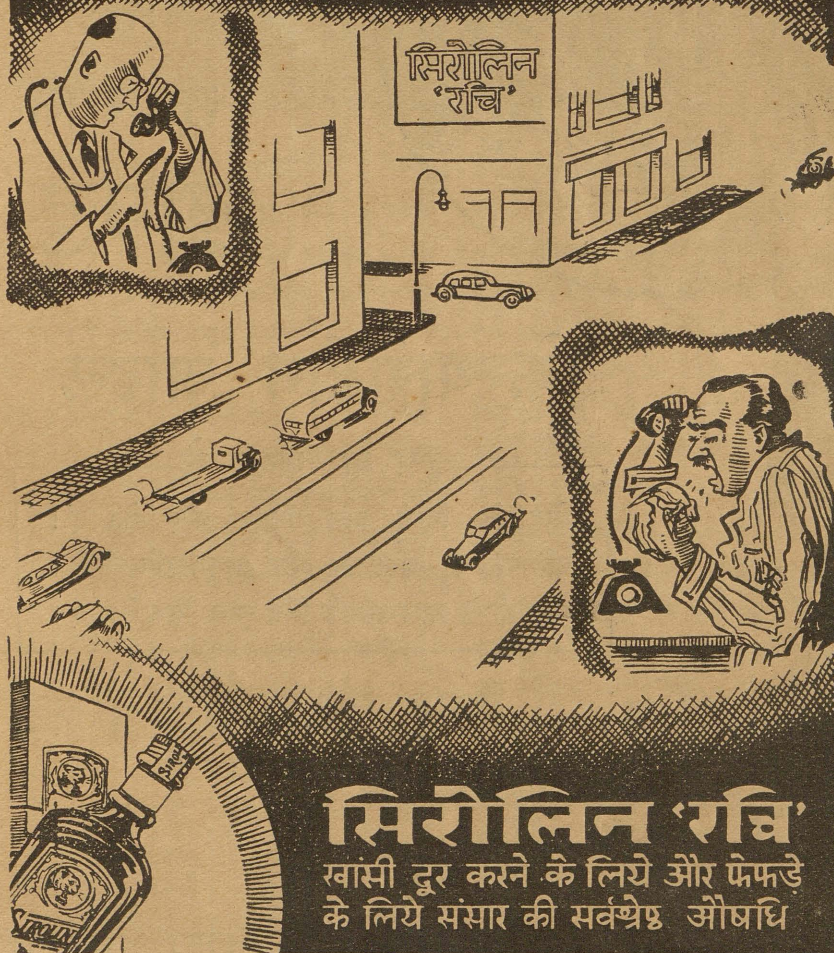
विश्वका उन्माद लेकर, भूम उठते प्राण गाते ।

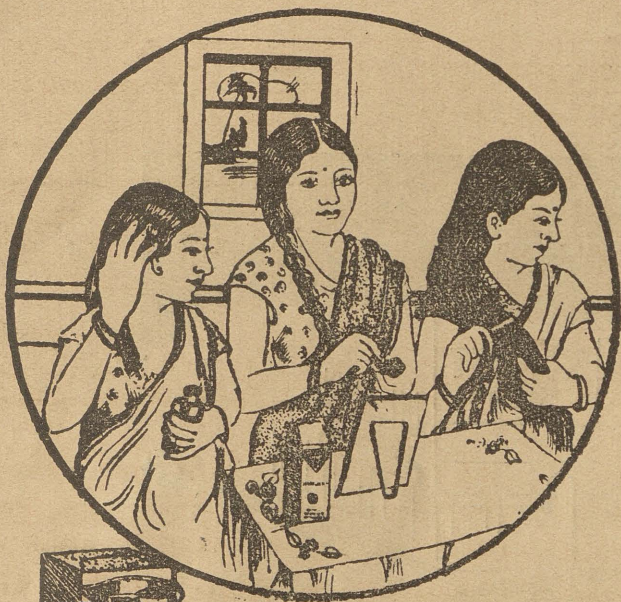
खोजमें उस दूरकी पग प्रलय-पथपर अब बढ़ाऊं ।

—सुमित्राकुमारी सिनहा ।

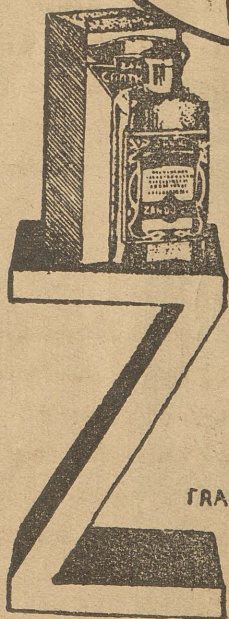


“मैं आपसे कितनी बार कह चुका — सिरोलिन
रचि खाइये, सिरोलिन रचि खाइये, सिरोलिन रचि...





सौभाग्यवती
देवियों के सच्चे हृदय से
प्रशंसित
और
सुगन्धित
झण्डु



केन्थारीडीन आइल

— इस के सेवन से —

सिर के गिरते बाल एकदम बन्द होते हैं।
मस्तिष्क को शीतलता और ताजगी मिलती है।
आज ही से आजमायसके लिये खास सिफारिश है।

TRADE



MARK

झण्डु फा. व. लि. बम्बई १४

बंगल के एजेंट :—

जाल्स ट्रेडिङ्ग स्टोर्स, १७९ हरिसन रोड और नं० ५४ इजरा स्ट्रीट, कलकत्ता ।

बिहार के सोल एजेंटस :—

गांधी ब्रजलाल मनिलाल, मुरादपुर पटना, आंखके अस्पतालके सामने (बांकीपुर)



संसारका इतिहास प्रतीकोंमें

बाजारमें बिकनेवाली वस्तुओंके लिए ट्रेड मार्क करानेकी बात आज बहुत प्रचलित हो गयी है, और इसका उद्देश्य यही है कि ट्रेड मार्क कराके हमारे दिमागमें यह विश्वास भरनेकी कोशिश की जाती है कि अमुक वस्तुको ही खरीदना चाहिए, क्योंकि अमुक वस्तुके मुकाबले कोई दूसरी वस्तु नहीं है। यह प्रचार तथा अपनी वस्तुको सुरक्षित रखनेका एक साधन है, पर बहुत कम लोग इस बातको महसूस करते हैं कि व्यापार ही नहीं, राजनीति, धर्म तथा दूसरे कितने ही विषयोंमें सदासे ऐसे प्रतीकों (Symbols) का प्रयोग होता आया है और वे प्रतीक विभिन्न युग-धर्मोंके परिचायकके रूपमें इतिहासमें होते आये हैं।

ग्रीक सभ्यताके प्रारम्भिक दिनोंकी बात है, जब किसी बैजके दो टुकड़े कर दिये जाते थे और फिर एक साथ ही उन्हें खूब बैठकर न्यायाधीशोंको पहननेके लिए दिया जाता था। उस समय वह बैज न्यायका प्रतीक माना जाता था।

दो हजार वर्ष पहले कास ईसाइयतका चिह्न माना जाता था और आज सर्वत्र यह प्रतीक स्वीकृत है। ईसाइयतसे सम्बद्ध कुछ दूसरे प्रतीक भी हैं। जैसे गड़ेरिया, मछली अथवा मेमनेका उल्लेख ईसाके लिए किया जाता है। स्वस्तिका हिन्दुओंका पुराना प्रतीक है और इस्लामके लिए दूजका चांद। न्यायके लिए तुला, आशाके लिए लड्डू, शान्तिके लिए जैतूनकी नन्हीं-नन्हीं टहनियोंका गुच्छा और ईमानदारीके लिए कुत्ते युगोंसे प्रतीक-रूपमें चले आये हैं।

इस प्रकार जिन प्रतीकोंका व्यवहार होता आया हो,

उनको वैज्ञानिक रूप देनेकी प्रवृत्ति अस्वाभाविक नहीं हो सकती। लगभग १६०० ई० में पेहनियाके सीजर दीपाने एक पुस्तक (Econologia) निकाली, जिसमें उन दिनों प्रचलित विभिन्न प्रतीकोंके सम्बन्धमें उसने खोजपूर्ण बड़ी मनोरञ्जक बातें एकत्र की हैं। अनेक प्रतीकोंके लकड़ीके बने हुए चिह्नोंको भी उसने छापा। उसने मानवीय गुणों और दुर्गुणोंके लिए कुछ नये प्रतीकोंको भी प्रचलित करनेका प्रयत्न किया है। ईष्योंके लिए लड़नेवाले मेदों, उद्योगशीलताके लिए मधु-छत्तोंका प्रचलन उसीने किया।

प्राचीन कालमें अनेक प्रतीकोंके चलाये जानेके और भी कारण हैं, जिनमें लिखने-पढ़नेकी कलाका अभाव प्रमुख है। जब अक्षरोंका ज्ञान न हो, तब चिह्नोंका प्रयोग आवश्यक हो जाता है, और सच पूछिये तो अक्षर भी क्या हैं? विभिन्न उच्चारणोंके लिए विभिन्न प्रतीक ही तो? मिश्र और चीनकी वर्णमाला और रेंड इण्डियनोंके अक्षर तो अब भी बहुत कुछ चिह्न-मात्र ही हैं। अफ्रीका तथा संसारके सभी भागोंके आदिम वासियोंमें गोदना गोदाने तथा शरीरपर तरह-तरहके चिह्नोंके बनानेका प्रयोग केवल सौन्दर्य-साधनके लिए ही नहीं होता था, बल्कि प्रेतात्माओं तथा अनेक प्रकारकी दैविक दुर्घटनाओंको रोकनेके लिए भी वे ऐसा करते थे और आज भी पिछड़ी हुई जातियोंमें इसका प्रचार किसी-न-किसी रूपमें सर्वत्र पाया जाता है।

और सच तो यह है कि जब सभ्यताका विकास हुआ बताया जाता है, इस प्रकारके प्रतीकोंका व्यवहार कुछ कम नहीं है। पहले अगर भूत-प्रेतादिसे सम्बद्ध प्रतीक चलते थे,

तो आज राजनीतिमें उनका प्रवेश हुआ है। पन्द्रहवीं शताब्दीमें लाल और श्वेत गुलाब क्रमशः यार्क और लड्डेस्टर परिवारोंके प्रतीक थे और इनके लिए भीषण युद्ध भी हो चुका है, तो उसी समय जर्मनीके विद्रोही किसानोंकी भावनाओंके लिए एक जूतेका प्रतीक चल गया था। फ्रान्सीसी राज्य-क्रान्तिके समय यदि लम्बे लम्बे पायजामे क्रान्तिकारियोंके प्रतीक थे, तो लाल, सफेद, हरी, नीली कमीजें आज चलती हैं और ये विभिन्न रङ्गोंकी कमीजें विभिन्न देशोंकी पार्टियों और उनके सिद्धान्तोंके प्रतीकके रूपमें स्वीकार की जाती हैं। फ्रान्सके प्रजातन्त्रवादियोंने एक नये ढङ्गकी टोपी निकाल रखी थी, जिसे वहाँके रिपब्लिकन आज भी धारण करते हैं। १८४८ में जर्मन विद्रोहियोंने एक नयी हैट निकाली थी, जिसे 'हेकर हैट' कहते थे। पिछली शताब्दीके मध्यमें स्वेडेनमें युद्ध-और शान्ति-वादियोंने नये-नये हैट और टोपियोंको पहनना शुरू किया था, जिन्हें देखते ही उनके राजनीतिक विचारोंका पता चल जाता था। कामरेलेके अनुयायियोंके कटे-छंटे केश उनकी विचार-धाराके स्वको प्रकट करते थे।

गुप्त समितियां जितनी हैं, उनके अपने-अपने प्रतीक हैं। फ्री मैसन्सन्स गुप्त समितिने एक वर्गमें उसे विभाजित करनेवाली रेखायें अपनायी हैं। जापानकी ब्लैकडू गन सोसायटीका चिह्न काला सर्प, माफिया दलने काला हाथ तथा कृष्णाक्स-क्लानने खोपड़ियों तथा हड्डिके टुकड़ोंको अपना प्रतीक माना है।

सदासे चले आये हुए झण्डे भी प्रतीक-स्वरूप ही रहे हैं। सीजरने गुद्धकी शकल झण्डेपर रखी थी और इसे उसने शक्ति-सूचक बताया था। अभी कुछ ही दिन पहले जर्मनीके दो दलोंके जर्मनीके लिए दो झण्डे थे। प्रतिगामियोंने काला, सफेद और लाल तथा प्रगतिशील प्रजातन्त्रियोंने काला, लाल और सुनहरा झण्डा अपनाया था। १८४८ के क्रान्तिकारियोंने 'वृहत्तर जर्मनी'की जो कल्पना की थी, उनके झण्डेका भी यही रूप था, पर हिटलरके नये 'राष्ट्रीय साम्यवाद'के स्वस्तिका झण्डेके सामने जर्मनीके उक्त दोनों दलोंके लाल, काले, सफेद और सुनहरे झण्डोंके सभी रङ्ग उड़ गये। एक जर्मन लेखक गुडोलीस्टने १९१० में नात्सियोंके स्वस्तिका झण्डेके सम्बन्धमें खोज करके लिखते हुए इसे प्राचीन जर्मन चिह्न बताया था। पर यह सरासर गलत है।

क्योंकि नवीन पाषाण कालसे ही यूरोपमें ट्रान्सेल्वेनिया और बेसराबिया तथा ईसाकी तीन शताब्दी पूर्व भारत, श्याम और मलायाके झण्डोंपर यह प्रतीक चलता था। बुद्ध-धर्मके अनुयायियोंने तो इस स्वस्तिका चिह्नकी व्याख्या भी की थी। यार्थी ओरसे शुरू होनेपर इसे उत्थान, जन्म और भाग्यका परिचायक बताया था और दाहिनी ओरसे प्रारम्भ होनेपर पतन, विलोप और मृत्युका परिचायक—जैसी कि जर्मन स्वस्तिका है। लेकिन डेनोंके लिए स्वस्तिका चिह्नके जर्मन अर्थको समझना कठिन होता है, क्योंकि वे चिरकालसे इसे शराबका ट्रेडमार्क समझते आये हैं।

सोवियट रूसके झण्डेपर हंसिया, हथौड़ाके चिह्न बिल्कुल स्पष्ट हैं। वे खेतों और कारखानोंमें काम करनेवालोंके प्रतीक हैं। इटलीके झण्डेके फावड़े तथा उनके साथ १२ अथवा २४ लकीरें प्राचीन रोमन चिह्न हैं, जिनका प्रयोग रोमन न्यायाधीश करते थे। उन्हें मृत्यु-दण्ड देनेका अधिकार था। यह चिह्न रोमनोंने पहले शक्तिको प्रतीक-रूपमें अपनाया था। भारतके प्राचीन लाल झण्डेकी व्याख्यायें प्राचीन हिन्दू धर्म-ग्रन्थोंमें हैं और वर्तमान तिरङ्गे झण्डेके रङ्गों तथा उसपर बने रहने-वाले चर्खेकी व्याख्या कई बार हो चुकी है। गांधी टोपी भारतमें एक खास विचारधाराका प्रतीक बन गयी है।

ब्रिटेनके लिए 'सिंह'का प्रतीक युगोंसे चला आया है। और 'ब्रिटिश सिंह'को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है। अब तक हजारों वक्तृताओं और लाखों व्यङ्गचित्रोंमें इसका प्रसङ्ग आ चुका है।

इस प्रकार राष्ट्रों और विचार-धाराओंके प्रचारक अपने प्रचारके लिए विभिन्न प्रतीकोंका व्यवहार करते हैं और ये प्रतीक काफ़ी शक्तिशाली होते हैं। लाखों इनकी रक्षाके लिए जान हथेलीपर लिये घूमते हैं।

पशुओंपर मुकदमे और दण्ड

पशुओंपर मुकदमे ! यह सुनकर आज लोग विश्वास नहीं करेंगे, पर अभी कुछ दिनों पहले पशुओंपर उनके अपराधोंके लिए मुकदमे चलते थे और अपराध प्रमाणित होनेपर उन्हें दण्ड भी दिये जाते थे। इंग्लैण्डमें भी एक कानून था, जिसके अनुसार अपराध करनेवाले पशु सरकारके लिए जव्त कर लिये जाते थे। साम्राज्ञी विक्टोरियाके शासन-कालमें अपराधी

पशुओंको जन्त कर बेच दिया जाता था और उनसे जो पैसे मिलते थे, गरीब सहायक फण्डमें दिये जाते थे। दूसरे यूरोपीय देशोंमें भी अपराधोंके लिए पशुओंपर मुकदमे चलाये जाते थे और प्रमाणित होनेपर या तो फांसीपर लटका दिये जाते थे अथवा जीते ही जमीनके नीचे गाड़ दिये जाते थे।

चिड़ियों, कीड़े-मकोड़ों और विभिन्न पशुओंपर दो सौ साल पहले तक इस प्रकार मुकदमे चलते थे। कानूनके इतिहासमें कीड़े-मकोड़ों और जानवरोंपर चलनेवाले ये मुकदमे काफी सनसनीखेज हुआ करते थे। कल्पना कीजिये कि १३१३ में फलाईमें क्या हुआ था। एक शूकरीने सड़कपर चलते हुए एक अबोध बालककी हत्या कर डाली। शूकरी पकड़ी गयी और उसपर बाकायदे मुकदमा चलाया गया। छनवाई हुई और शूकरी हत्यारिणी प्रमाणित हुई। इसके बाद दण्ड-व्यवस्था की गयी। प्राचीन कालके नियम “आंख-के लिए आंख और दांतके लिए दांत”के अनुसार निश्चय किया गया कि पहले शूकरीके सिर और पांवमें चोट लगायी जाय और तब हत्याके अपराधमें उसे फांसी दे दी जाय। इसके बाद पेरिससे फांसी देनेवालेको बुलाकर नये दस्तावेज दिये जाते हैं और तब मर्दाना पोशाक पहनाकर शूकरीको सार्वजनिक स्थानपर ले जाकर फांसी दी जाती है।

आर्थर ट्रेनने अपनी पुस्तक (On the Trail of the Bad Men) में ऐसी अनेक मनोरञ्जक घटनाओंका वर्णन किया है।

बमोंके भीतर जापानी वीर

युद्ध-क्षेत्रमें जापानियोंकी वीरता और चातुरी-भरे कार्योंको कितनी ही कहानियां प्रचलित हैं। कभी-कभी जापानी वीरोंने अपना शरीर बिजलीके तारोंपर फेंक उन्हें बेकाम किया है, तो कभी शत्रु-दलमें स्वयं बमकी तरह गिरे हैं।

अब युद्ध-सम्बन्धी उनकी एक नयी प्रणालीका पता चला है। इस प्रणालीके अनुसार बम बरसानेवाले वायुयानोंसे जो बम गिरेंगे, उनके साथ जापानी वीर भी नीचे गिरेंगे। ये बम खास प्रकारके बनाये गये हैं, जिनका वजन ८५० पौण्डसे २२०० पौण्ड तक है। उन्हें कहा तो बम ही जाता है, पर बमोंकी अपेक्षा वे और भी बहुत कुछ हैं। उनकी बनावट छोटे-छोटे वायुयानोंकी तरह ही है, जिनमें एक आदमीके बैठनेके लिए जगह रहती है।

इस प्रकारके बमके भीतर लड़ाका पेटके बल से जाता है और गिरते हुए बमके एक छिद्रसे आकाश-मार्गको देखते हुए उसका सञ्चालन करता है। एक यन्त्र उसके हाथमें रहता है, जिससे वह जिधर और जिस गतिसे चाहे, बमका सञ्चालन कर सकता है। वायुयानसे जब यह बम नीचे छोड़ा जाता है, तो उसके भीतरका व्यक्ति भी बमके साथ-साथ चलता है। बम जब लक्ष्यसे ३०० फीटकी दूरीपर रहता है, तभी वह एक ऐसी मशीन दबा देता है कि बमके जिस भागमें वह रहता है, उससे बमका हिस्सा अलग होकर उसमें भरी हुई गतिके साथ नीचे जाता है और बमके भीतरका मनुष्य पैराशूटके सहारे आकाशकी ओर एक धड़ाके साथ उछल पड़ता है। अगर बमके भीतरके मनुष्यको समुद्रपर बमसे अलग हो जाना पड़े, तो उसके साथ रबरका जीवन-रक्षक बेल्ट रहता है, जिसे समुद्रमें गिरते ही एक छोटी-सी नावका रूप दिया जा सकता है।

स्वभावतः इस प्रकारकी बम-वर्षाके लिए ऐसे साहसी वीरोंकी आवश्यकता है, जो जान हथेलीपर लेकर बमोंके भीतर उड़ सकें। उन्हें २२० मील प्रति घण्टेके वेगसे १६,००० फीटकी ऊंचाईसे उड़ना पड़ता है, जिससे ३२ सेकण्डमें वायुयान छोड़नेके बाद बम अपने लक्ष्यपर गिर सकें।

इस प्रकारके बमोंकी अगर यह भीषणता है कि इनके भीतर उड़नेवालेकी जान हमेशा जोखिममें है, तो इससे यह लाभ भी है कि इनका सञ्चालन नियन्त्रणमें रहता है, अतः चाहें तो शान्त जनतापर इसके प्रहारको रोक भी सकते हैं। बम-वर्षा सम्बन्धी आविष्कारोंमें यह एक अनोखा आविष्कार है।

क्लूपेट्राको समाधि

क्लूपेट्राके जीवनके सम्बन्धमें तो कितनी ही कहानियां प्रचलित हैं, पर उसकी समाधिके बारेमें बहुत दिनों तक रहस्य बना रहा। नेपोलियनने जब मिश्रपर चढ़ाई की, तो उसकी सेनामें ऐसे भी कुछ सैनिक थे, जो भूगर्भ-विद्यामें भी दिल-चस्पी रखते थे। अतः उन्होंने समय पाकर कुछ समाधियोंको खोदा और उनमें पायी जानेवाली वस्तुओंको पेरिस भेजा। ये सारी चीजें नेशनल लाइब्रेरीमें रखी गयीं और नेपोलियनके पतनके बाद तक पड़ी रहीं।

नेपोलियनके पतनके बाद उक्त लाइब्रेरीमें एक नये डायरेक्टरकी नियुक्ति हुई, जो पुस्तकोंकी भांति ही शराबका भी प्रेमी

था। डाइरेक्टर अपने लिए शराब मंगाता, तो लाइब्रेरी के कमरेमें ही रखता। लेकिन उसे पता चला कि कमरेमें सीड़के कारण शराबके खराब हो जानेका डर है। अतः उसने मिश्रसे भेजी गयी लकड़ियोंमेंसे एक निकाली, जिसपर एक पत्थर लगा हुआ था। उसने पत्थरकी लिखावट पढ़ी, तो उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उसने देखा कि क्लूपेट्राके ताबूतमें लगा हुआ यह पत्थर है।

अब क्लूपेट्राके ताबूतकी तलाश होने लगी और वह दूसरे गन्दे ढेरोंमें पड़ी पायी गयी। इसपर बातको गुप्त ही रखा गया, क्योंकि इसके खुलते ही सनसनी फैल जाती। इसलिए रातोंरात नेशनल लाइब्रेरीके बगीचेमें एक कब्र खोदी गयी और क्लूपेट्राको वहीं गाड़ा गया।

आधी शताब्दी तक यह रहस्य किसीको मालूम न हो सका और इसके बाद भी बहुतोंको मालूम नहीं हुआ। लाइब्रेरीके इस नन्हें-से बगीचेसे प्रतिदिन हजारों आदमी गुजरते हैं, पर उन्हें इस बातका गुमान भी नहीं होता कि पासमें ही संसारकी किसी समयकी सर्वश्रेष्ठ छन्दरी अपने देशसे इतनी दूर सदाके लिए अनन्त निद्रामें सो रही है।

“हम मूर्ख हैं”—तलाककी एक प्रथा

तलाककी कितनी ही प्रथायें प्रचलित हैं, जिनमें सबसे आसान है तलाक-सम्बन्धी वह मुस्लिम कानून, जिसके अनुसार तीन बार “तलाक, तलाक, तलाक” कहते ही तलाक जायज हो जाती है। इसके साथ ही देहामीमें तलाक देना बड़ी ही आसान बात है। सच पूछिये तो वहां इसकी विशेष आवश्यकता भी नहीं पड़ती। और ऐसा किसी धार्मिक बन्धन और लोगोंके विचार-वैचित्र्यके कारण नहीं, वरन् वहांपर प्रचलित एक स्थानीय रिवाजके कारण होता है।

जब किसी दम्पतिमें अनबन हो जाती है, तो स्थानीय रिवाजके अनुसार वे एक कमरेमें दीवालकी ओर मुंह करके दो कोनोंमें अलग-अलग खड़े होते हैं। कुछ समय तक तो दोनों चुप रहते हैं, लेकिन इसके बाद पति अपनी पूरी ताकत-के साथ चिलाकर कहता है कि ‘मैं मूर्ख हूं, मैं मूर्ख हूं, मैं मूर्ख हूं।’ इसके बाद स्त्रीकी बारी आती है और वह भी इसी प्रकार जोरसे प्रत्युत्तरमें तीन बार कहती है कि ‘मैं मूर्ख हूं, मैं मूर्ख हूं, मैं मूर्ख हूं।’

इसके बाद दोनों प्राणी दीवालकी तरफसे अपना मुंह फेर लेते हैं और एक-दूसरेके सम्मुख होकर यह कहते हुए कि ‘हम मूर्ख हैं, हम मूर्ख हैं, हम मूर्ख हैं’, वे कमरेके मध्य-भागमें आकर मिल जाते हैं। बस इसी प्रकार वहां दम्पति तलाककी स्वीकारोक्ति करते हैं। इसके बाद दोनों अपने इच्छानुसार जो चाहें, करनेके लिए स्वतन्त्र हो जाते हैं।

वहांपर हजारों वर्षोंसे यह प्रथा प्रचलित है और इस रहस्यपूर्ण तलाक-विधिका परिणाम यह होता है कि वे उस कमरेसे अपने तमाम झगड़े तथा मनोमालिन्यको भूलकर हंसते हुए निकलते हैं।

कुछ नयी और विचित्र बातें

स्प्रिंगडेल (पनामा) के वैज्ञानिक जार्ज स्पेन्सरने अपनी गाड़ियोंके लिए ऐसे टायर बनाये हैं, जो चलनेपर उसका नाम और पता लिखते चलते हैं। टायरोंपर उसका नाम और पता खुदा हुआ है और पीछेके चक्कोंके पास स्याही भरी हुई है, जो चलते समय टायरोंमें उस स्थानपर आ जाती है, जहां नाम और पते खुदे हुए हैं।

क्लीवलैण्ड (ओहियो) के एक ६४ वर्षीय व्यक्तिने ४० सालसे संसारकी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंसे काटकर लगभग ५०,००० चित्रोंका एक संग्रह तैयार किया है। इन चित्रोंमें १८९० से अब तकका संसारका इतिहास मौजूद है।

मलेश्टोन नेशनल पार्क, योमिङ्ग (अमेरिका) के सी० ए० हेमिल्टन नामक एक व्यापारीने लिंविंग्स्टन योमिङ्ग बैट्टके नाम दिये हुए अपने २३ सालके चेकोंको अपनी दूकानकी दीवालेंपर चस्पा कर दिये हैं। ये चेक सब मिलाकर १,८५९,१०९,६० डालरके हैं।

हेफार्क, केलीफोर्नियाके लेवर्नलाफ केन्फी नामक व्यक्तिने अमेरिकाके ४८ राज्योंके गवर्नरोंकी नेकटाइयोंको एकत्र करना शुरू किया है। इन सबको मिलाकर वह एक पोशाक तैयार करना चाहता है। पोशाकमें जितनी टाइयां लॉंगी, उनपर उन गवर्नरों तथा राज्योंका नाम लिखा रहेगा, जिनसे वे मिली हैं।

* * *

विजिटिङ्ग कार्डका प्रचलन सबसे पहले इटलीमें १५७० ई० में हुआ बताया जाता है। उन दिनों कार्ड रङ्ग-बिरङ्गे

और आजकी अपेक्षा बड़े आकारके होते थे। उनपर तरह-तरहकी तस्वीरें बनी होती थीं।

सङ्गीतज्ञोंके बारेमें सर्वत्र उनकी अनोखी प्रतिभाको लेकर तरह-तरहकी कहानियां प्रचलित हैं। कितने ही भारतीय बाल-नटोंके बारेमें कहा जाता है कि पांच-सात सालकी अवस्थासे ही उन्होंने सङ्गीतकी प्रतिभाका परिचय दिया है। कुछ विदेशियोंके विषयमें भी ऐसा ही कहा जाता है। मोजार्टने ३ सालकी अवस्थासे ही सारङ्गी बजाना शुरू किया था। वेलिनीने पहला गीत पहले-पहल ६ सालमें बनाया और चौपिनने अपनी पहली रचना ७ सालकी अवस्थामें प्रकाशित करायी। मेण्डेल्सन पहली बार १० सालकी अवस्थामें सार्वजनिक जलसेमें उतरा और १२ सालकी अवस्था पूरी करते-करते उसने ५० गीतोंकी रचना कर डाली थी। बीथोवेन ८ सालकी अवस्थामें कन्सर्टमें उतरता था, ११ सालकी अवस्थामें चर्वका सङ्गठनकर्ता था और १२ सालकी अवस्थामें आर्केस्ट्राका कण्डक्टर था।

नारी-सौन्दर्यके लिए क्या अवस्थाकी कोई सीमा है? कितने ही लोग कहा करते हैं कि अमुक अवस्थाके बाद नारीका सौन्दर्य कुछ भी नहीं रह जाता। ऐसे लोगोंको समझ लेना चाहिए कि मादम स्टेल्का नाम जिस समय फ्रान्स-भरमें मशहूर था, उस समय उनकी अवस्था ४५ वर्षकी थी। रीकामिये फ्रान्सीसी राजघरानेकी श्रद्धाकी मूर्ति ५० वर्षकी अवस्थामें बनी हुई थी, जान्सन और गैरिककी मित्र हन्ना मूरने जो इतनी ख्याति कमायी, वह ६० वर्षकी अवस्थामें; बालपोलने जब यह कहा था कि मार्किस इद दीफ्यां फ्रान्सकी सबसे दिलचस्प रमणी है, तब वह ८० वर्षकी थी—और अन्धी।

ताशोंका आविष्कार पहले-पहल भारतमें शतरंजसे हुआ और यह शतरंज भी यहींसे निकला। ऐसी ताशकी पत्तियां भी प्राच्य हैं, जो ८०० ईसवीकी बजायी जाती हैं। ये पत्तियां गोलाकृतिकी हैं और इनकी संख्या १२० है।

मेक्सिकोमें कानून है कि किसी भी गाड़ीमें ऐसा कोई भोंपू नहीं लगाया जा सकता, जिसकी आवाज कर्ण-कुट हो।

गाड़ियोंका लाइसेन्स देते समय भोंपुओंकी परीक्षा कर ली जाती है।

साल्ट लेक सिटीमें सार्वजनिक स्थानोंपर नृत्यके अथवा शुतुरमुर्गके बाललगे हुए हैटोंको पहनकर जानेकी मुमानियत है। न्यूयार्कके कानूनके अनुसार कब्रिस्तानके पास किसी चूहे अथवा पक्षीकी हत्या नहीं की जा सकती।

बोस्टन (मसाचुसेट्स, अमेरिका) में दस इञ्चसे ऊंचे कुत्ते कोई नहीं रख सकता।

टोलेडोमें किसी भी सड़कपर कोई कुत्तों, घोड़ोंको नहला या पानी नहीं पिला सकता।

फोर्टवर्थ, टेक्साज, अमेरिकामें सार्वजनिक स्थानों, सड़कों अथवा उनके किनारोंपर कोई सिगरेट अथवा उनके डिब्बे नहीं फेंक सकता। इस कानूनका उल्लङ्घन करनेवालोंको १०० डालरका अर्थदण्ड दिया जाता है।

सम्राज्ञी एलिजाबेथके सम्बन्धमें कितनी ही बातें कही जाती हैं, जिनसे उनकी व्युत्पन्न मतिका पता चलता है। उन्होंने एक बार सर वाल्टर रैलेसे कहा कि “आप क्या तम्बाकूके धुंफुंको तौल सकते हैं?”

सर वाल्टर जरा भी हतप्रतिभ न हुए। उन्होंने कहा, “तौल सकता हूँ, महारानीजी।”

इसके बाद पाइपमें तम्बाकू भरा गया। पाइपमें भरनेके पहले सर वाल्टरने तम्बाकूको वजन कराया और फिर महारानीने पाइपमें उसे पिया। पाइपसे जब राख निकाली गयी, तो सर वाल्टरने राखका वजन लिया और फिर उन्होंने नेजलनेके पहले तम्बाकूका जो वजन था, उससे राखके वजनको घटाकर कहा—“यही वजनका अन्तर धुंफुंका वजन है, साम्राज्ञी!”

प्रेम-सम्बन्धी मनोरञ्जक आंकड़े

प्रेम, विवाह और तलाक ऐसे प्रश्न हैं, जिनसे किसी समाजकी अवस्थाका पता चलता है, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि केवल इन्हींके आधारपर किसी समाजकी अवस्थापर निर्णय दे देना गलतीसे खाली नहीं है। पाश्चात्य सभ्यताको यौन-प्रधान मानकर हम उसकी निन्दा करते हैं और इसके प्रमाण-स्वरूप वहाँके यौन-स्वातन्त्र्य एवं विवाह-विच्छेदके आंकड़े पेश करते हैं। इस सम्बन्धमें एक मित्रित पत्रने कुछ

आंकड़े रखे हैं। वहाँकी सामाजिक परिस्थितिपर कोई फैसला न देनेकी इच्छासे भी ये आंकड़े मनोरञ्जक हैं, अतः उद्धरणीय हैं। कई वर्षोंके अनुभवों एवं तथ्योंके आधारपर जो औसत स्थिति है, उसीका ये अङ्क निदर्शन करते हैं।

सालमें विवाहोंकी औसत संख्या	३६०,३३९
तलाक सालकी औसत संख्या	६,०४९
ससाहमें सगाईकी घोषणा	८८
सगाई भङ्ग होनेकी घोषणा	१०७
विवाह भङ्ग होनेकी सूचना	३९

एक विवाहका औसत खर्च :

वधू	२९६ पौ० १४ शि०
वर	१७७ पौ० ६ शि०
एक तलाकका औसत खर्च	९२ पौ०

विवाहकी आम उम्र :

पुरुष	२४ साल
कुमारियाँ	२३ "
विधवायें	४० "
प्रेम-सम्बन्धी फिल्मोंकी औसत लम्बाई	९००० फी०
सालमें प्रकाशित प्रेम-गीत	३००
सालमें प्रकाशित रोमाण्टिक पुस्तकें	१९७०

प्रेम-सम्बन्धी रेकर्ड :

लम्बाई	६०० फीट
समय	३॥ मिनट
प्रारम्भिक वेग	२.४ मील प्रति घण्टा
समाप्तिकालका वेग	१ मील प्रति घण्टा
कोषमें प्रेम-पर्यायवाची शब्द	९
कोषमें धृणा-व्यञ्जक शब्द	१,१६४

सच उतरनेवाली कुछ महत्त्वपूर्ण भविष्यवाणियाँ

भविष्यवाणियोंकी सच्चाईमें आम तौरपर लोग विश्वास नहीं करते। पर ऐसी भी भविष्यवाणियाँ हैं, जो सच उतरी हैं। वे भविष्यवाणियाँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण रही हैं और कितनी ही तो सैकड़ों वर्ष पहले की गयी थीं। ईसाके शूरीपर लटकाये जानेके सम्बन्धमें ईसाके जन्मके ४०० साल पहले भविष्यवाणी कर दी गयी थी। हेनरिख हाइने १०० साल

पहले जर्मनीमें नाजी शासनकी स्थापनाकी भविष्यवाणी की थी और १९ साल पहले नेपोलियनके सम्बन्धमें भविष्यवाणी की गयी थी। इस प्रकारकी और भी कुछ भविष्यवाणियाँ हैं, जिन्हें घटनाओंने सच बताया है। यहां कुछ ऐसी ही भविष्यवाणियाँ दी जा रही हैं।

१०० साल पहले : नाजी शासन

हमारे स्वभावकी उग्रताका उपयोग करके हमारी जातिके लोगोंको युद्धके लिए तैयार किया जायगा, जिसका उद्देश्य कोई विजय अथवा किसीकी पराजय न होगा। 'युद्धके लिए युद्ध'—यही उद्देश्य होगा।

ईसाइयतने जर्मनोंकी युद्ध-लिप्साको बहुत कुछ शान्त किया है, पर उसका मूलोच्छेद नहीं हो सका है। एक दिन ईसाका क्रोध गिरेगा और जर्मनोंके पाषाण देवता १०० सालके बाद अपनी आँखोंकी धूल पोंछेंगे और गिरजाघरोंके स्तम्भोंपर हथौड़े बरसेंगे।

और उस समय—मेरे पड़ोसियों, उस समयके लिए सावधान रहो। मेरे फ्रान्सीसी दोस्तो, उस समयके लिए सावधान रहो।

—हेनरिख हाइने १८३४।

४०० साल पहले : ईसाकी शूली

एक ऐसा न्यायप्रिय, जीवनको ऊंचा उठानेवाला व्यक्ति आयेगा, जिसके उपदेशोंको लोग सुनकर पहले भड़केंगे, उसे यातनायें देंगे और अन्तमें क्रोधपर लटका देंगे।

—सुक्रात ४०० बी० सी०।

१४३० वर्ष पहले : क्रिस्तफर कोलम्बस

सदियोंके बाद समुद्रोंकी सीमाओंका पता चल जायगा और एक नयी दुनियाके दर्शन होंगे। आइसलैण्डके उस पारके देशोंका पता उस समय चलेगा।

—सेनेका ६९ ई०।

साल-भर पहले : फ्रन्सीसी राज्य क्रान्ति

"तुम सभी अपने भाग्यको साराहोगे कि तुम्हें उस महान् क्रान्तिके दर्शन होने जा रहे हैं, जिसकी प्रतीक्षा तुम इतनी उत्कण्ठासे करते रहे हो। और तुम, ला डचेस, तुम्हें फांसीके तब्लेपर झूलना होगा। वहाँ तुम्हारे हाथ-पांव बांधकर गाड़ीमें लादकर भेजा जायगा।"

“खैर, हमें पादरीके उपदेशोंसे तो वञ्चित नहीं रहना पड़ेगा ?”

“ओह ! उसकी व्यवस्था सिर्फ एक व्यक्तिके लिए करनी होगी ।”

“क्या मैं जान सकती हूँ कि वह कौन-सा व्यक्ति है ?”

“फ्रान्सका राजा । और उसके प्रति यह अन्तिम दया होगी ।”

—डचेस आव ग्रामोके साथ जेकम कजोटकी बातचीत
१७८८ ई० ।

अ.ठ घण्टे पहले : नेल्सनकी मृत्यु

“विश्वास है श्रीमान्, कि जब मैं वापस लौटूंगा, आपको भला-चढ़ा पाऊंगा ।”

“ईश्वर तुमपर कृपा रखे, ब्लैकउड, तब मैं तुमसे बोल भी न सकूंगा ।”

—ट्राफलगरमें सवेरे नेल्सन और ब्लैकउडकी बातचीत ।

१५ साल पहले : नेपोलियन

“नेपोलियन कहां है ? मेरा बेटा कहां है ? कहां है नेपोलियन, जिसकी तलवारसे बड़े-बड़े राजे-महाराजे कांपेंगे और जो पृथ्वीका चेहरा बदल डालेगा ?

—चार्ल्स बोनापार्ट, फरवरी १७८५ ।

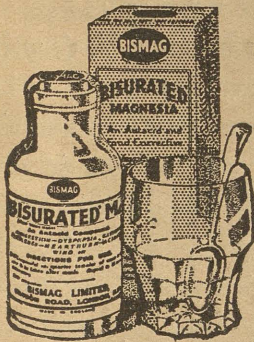
तीन सप्ताह पहले : जेकोस्लोवेकियापर आक्रमण

पिछले महीने जर्मन चान्सलरके भाषणसे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिकी जटिलतायें उलझती-सी नजर आयी हैं और इस प्रतिक्रिया तथा दूसरे लक्षणोंसे इस वर्ष ऐसी घटनाओंके लिए सम्भावनायें बनती जा रही हैं, जिनसे राजनीतिक उलझनें और भी जटिल हो जायें ।

अगर मैं सही हूँ, तो हमारी वैदेशिक नीतिका पुरस्कार और भी मानसिक शान्तिमें दिखाई पड़ेगा ।

—नेवाइल चेम्बरलेन, फरवरी १९३९ ।

जब पेट की गड़बड़ी हो तो



BISMAG

(Bisurated Magnesia)

(बाइसुरेटेड मैग्नेशिया)

* इस अंडाकार निशानको हर पैकेटके ऊपर देखिये ।

विसमैग “Bismag”

उसे शीघ्र ठीक कर देगा !

विसमैग (बाइसुरेटेड मैग्नेशिया) Bismag (Bisurated Magnesia) पेटकी बीमारियों की अच्छूक दवा है । इससे कष्ट कम होता है । पेटकी रक्षा करता है तथा उसे शक्तिशाली बनाता है । आज ही बाइसुरेटेड मैग्नेशिया (Bisurated Magnesia) पावडर या टिक्रिया का सेवन कीजिये । जिस तरह से इससे दर्द दूर होकर आराम मिलता है उससे आप चकित रह जायेंगे ।

पेट दर्दके लिये विसमैग “Bismag” रामबाण है ।



हमारी एक समस्या

यह प्रसन्नताकी बात है कि हमारे देशकी महिलाओंने शिक्षाके महत्त्वको भली भांति हृदयङ्गम कर लिया है। यही कारण है कि प्रति वर्ष स्कूलों और कालेजोंमें शिक्षा लाभ करनेवाली लड़कियोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। परन्तु शिक्षा-प्रचारके साथ ही हमारे सामने कई विकट समस्यायें भी आये-दिन उपस्थित होती रहती हैं। उनमें एक है बालिकाओंकी शिक्षा-पद्धति सम्बन्धी समस्या। हमारे देशमें बालक-बालिकाओंके लिए एक ही प्रकारकी शिक्षा-पद्धति निर्धारित की गयी है। आधुनिक पद्धति द्वारा बालक-बालिकाओंको जो शिक्षा दी जाती है, वह न तो बालकोंके लिए उपयोगी है और न बालिकाओंके ही लिए। कालेजोंकी बड़ी-बड़ी डिग्रियां प्राप्त करनेके बाद अधिकांश युवकोंका एकमात्र लक्ष्य नौकरी करना होता है। यदि भाग्यवश कोशिश-पैरवी करनेसे कोई नौकरी मिल गयी, तो वे अपनी शिक्षाको सार्थक और जीवनको धन्य समझते हैं, और अगर कहीं नौकरीका कोई सिलसिला न बैठा, तो उनका सारा जीवन देकार हो जाता है। और यदि कुछ रोजगार-धन्धा करनेका कोई उद्योग करते हैं, तो पग-पगपर उन्हें असफलताओंका शिकार होना पड़ता है। इसका एकमात्र कारण है हमारी शिक्षा-पद्धति, जो हमें केवल नौकरीके सिवा ज़िन्दगीमें और कोई काम करने योग्य नहीं बनाती।

जब उच्च शिक्षा-प्राप्त युवकोंका यह हाल है, तो उच्च उपाधिधारिणी युवतियां अपने जीवनमें किस प्रकार सफल हो सकती हैं, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

बी० ए०, एम० ए० पास करनेवाले पुरुषोंको तो नौकरी मिल भी जाती है; परन्तु हमारी सामाजिक व्यवस्था कुछ ऐसी है कि शिक्षित महिलाओंको सरकारी महकमों या गैर-सरकारी आफिसोंमें नौकरी मिल भी नहीं सकती। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि महिलाओंकी शिक्षाके लिए पुरुषोंसे भिन्न और कोई शिक्षा-पद्धति जारी की जाय, जिससे वे पुरुषोंकी भांति नौकरियोंके ही चक्रमें न पड़ी रहें, बल्कि पढ़-लिखकर योग्य गृहिणियां और मातायें बनें।

जो महिलायें असाधारण प्रतिभावान् हैं, वे ही पुरुषोंके साथ वर्तमान पद्धति द्वारा शिक्षा प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकती हैं। पर जिन्हें शिक्षा प्राप्त कर विवाहित जीवनमें प्रवेश करना है, जिन्हें गृहिणी बनकर अपने घर-गृहस्थीको संभालना है, उनके लिए वर्तमान शिक्षा बहुत कुछ व्यर्थ और अनुपयोगी है। जिन्हें मातायें बनना है, उन्हें लाजिक और बोटेनी पढ़नेसे क्या लाभ? इसके बदले यदि वे यह सीखें कि गृहस्थ-जीवनमें किस प्रकार थोड़े खर्चमें छन्दर रूपसे घरका काम-काज चलाया जा सकता है, घरके आमद-खर्चका किस तरह हिसाब रखा जाय, बाल-बच्चोंकी देख-भाल किस प्रकार की जाय और उन्हें स्वस्थ और नीरोग कैसे रखा जाय, घरमें कोई बीमार पड़ जाय, तो कैसे उसकी सेवा-शुश्रूषा की जाय, तो इससे उनका विशेष लाभ हो सकता है।

क्या शिक्षिता महिलाओंको भी पुरुषोंके समान ही समाज-सुधार अथवा धनोपार्जनके कामोंमें घरके बाहर ही अपने अधिकांश समयको बिताना ठीक है? उन्हें तो घर और बाहर दोनों ओरके कामोंको संभालना है। बाहर-भीतर

दोनों ओरके कर्तव्यका पालन करना कठिन होनेपर भी हमें इस उत्तरदायित्वको अपने कन्धेपर लेना है। ऐसा करनेसे ही गृहस्थ-जीवन सुखमय हो सकता है।

इसी विषयको लक्ष्यमें रखकर स्त्री-शिक्षाकी वर्तमान पद्धतिमें सुधार करनेकी नितान्त आवश्यकता है। आधुनिक शिक्षा-पद्धतिसे हमारा समय और स्वास्थ्य दोनों नष्ट हो रहे हैं, लाभ होना तो दूर रहा। इस सम्बन्धमें हमारा विशेष निवेदन अपनी शिक्षिता बहनोंसे है। इस आवश्यक विषयकी ओर उनके ही ध्यान देनेसे वर्तमान शिक्षा-पद्धतिमें आमूल परिवर्तन कर उसे स्त्रियोपयोगी बनाया जा सकता है। हमारे देशमें दो या तीन प्रतिशत महिलायें शिक्षिता हैं। बाकी ९७ प्रतिशत इस उन्नति और प्रगतिके युगमें भी अज्ञान और अशिक्षाके घोर अन्धकारमें पड़ी हैं। तीन प्रतिशत शिक्षिता महिलाओंका यह परम कर्तव्य है कि वे अपनी ९७ प्रतिशत अपढ़ बहनोंको ऊपर उठानेका उद्योग करें, ताकि वे भी योग्य मातायें बनकर देशके लिए साहसी और वीर नागरिक उत्पन्न कर सकें।

—सरोजिनी देवी, बी० ए०।

आदर्श मातायें

प्रकृतिके नियमानुसार सृष्टिके क्रमको जारी रखनेके लिए नारीको माता बनना पड़ता है। वास्तवमें माता बनकर ही नारी अपनेको गौरवान्वित समझती है और उसका जीवन धन्य होता है। पर माता बननेमें नारीको जितना गौरव है, उतना ही गुरुतर और पवित्र उसका दायित्व भी है। नारीके इसी दायित्वपर समाज और राष्ट्रका उत्थान और पतन निर्भर करता है। देश और समाजके जो नेता और नायक होते हैं, उनकी जीवन-यात्रा माताकी ही गोदसे आरम्भ होती है। अपने देशको पराधीनताके जालसे मुक्त करनेके लिए, समाजको कुसंस्कारों और कुरीतियोंके गहरे गर्तसे ऊपर उठानेके लिए, विश्वको आनन्द, प्रेम, मानवता, स्वास्थ्य, मङ्गल और जीवनकी वाणी सुनानेके लिए जिन महापुरुषों और महीयसी महिलाओंका समय-समयपर आविर्भाव होता है, जिनकी देनको समस्त संसार श्रद्धा और भक्तिसे नत-मस्तक हो ग्रहण करता है, उनकी मातायें होनेका गौरव भाग्यशालिनी नारियोंको ही प्राप्त होता है। वे अपने देश व समाजकी ही नहीं, वरन् संसारकी नारियोंके लिए आदर्श होती हैं। इसीलिए युग-युगसे नारीको योग्य और आदर्श

माता बनानेकी चेष्टा होती चली आ रही है और नारीकी भी निरन्तर यही लालसा रहती है। माताकी ही गोदमें बैठकर, उसके ही सामने अपनी बालक्रीड़ा कर पुत्र संसारके ज्ञानका सबसे पहला पाठ आरम्भ करता है। माताकी चारित्रिक विशिष्टता, प्रतिभा और उसके सद्गुण पुत्रके चरित्र, ज्ञान और प्रतिभाके विकासमें अप्रत्यक्ष रूपसे महत्त्वपूर्ण सहायता पहुंचाते हैं। संसारके जो-जो महापुरुष अपनी विद्वता, प्रतिभा, तेजस्विता और वीरताके लिए अमर हो गये हैं, उनके जीवनचरितकी आलोचना करनेसे ज्ञात होगा कि उनको महान् और श्रेष्ठ बनानेमें उनकी माताओंकी शिक्षा, शक्ति, ज्ञान, प्रतिभा और चरित्रका विशेष हाथ रहा है।

ऐसे महापुरुषोंकी मातायें समस्त संसारकी माताओंकी श्रद्धा और भक्तिकी अधिकारिणी हैं। इसलिए यदि इस देशके तथा विदेशोंके नारी-जागरणके आन्दोलनोंके लक्ष्यको देखा जाय, तो ज्ञात होगा कि इन सबका एकमात्र उद्देश्य है नारी-को आदर्श जननी बनाना। आदर्श मातायें ही योग्य नागरिक पैदा कर सकती हैं। इसलिए देशके नेताओं और समाजके कर्णधारोंका कर्तव्य है कि वे नारी-जागरणकी प्रगति-की ओर विशेष ध्यान दें। नेपोलियनने ठीक ही कहा था कि योग्य मातायें ही योग्य राष्ट्रोंकी सृष्टि कर सकती हैं।

वास्तवमें वही मनुष्य मनुष्य है, जिसका संसारमें जन्म लेना सब दृष्टिसे सार्थक हो। सच्चा नेता, सच्चा समाज-सुधारक वही है, जो समाजमें फैली हुई कुरीतियों और व्याधियोंको दूर कर ज्ञान, शिक्षा और सभ्यताका प्रकाश कोने-कोनेमें फैला दे। वही सन्तान सन्तान है, जो अपनी प्रतिभासे पतनकी ओर ले जानेवाली विचार-धाराकी गति और रूपको ही फलटकर संसारको अपने विचारोंके प्रवाहमें बहाकर उन्नति और अभ्युत्थानकी ओर ले जाये। ऐसे महापुरुषोंके आविर्भावके लिए नाना अत्याचारों और क्लेशोंसे पीड़ित पृथ्वी निरन्तर रोया करती है। जिन माताओंके गर्भसे युगप्रवर्तक महात्माओंका जन्म होता है, वास्तवमें उनका नारी जीवन धन्य है, उनका मातृत्व गौरवमय है।

हमें मालूम है, सभी नारियां मातायें होती हैं; पर सुमाता होनेका सौभाग्य बहुत कमको ही प्राप्त होता है। ज्ञानी, विद्वान्, प्रतिभावान्, वीर और साहसी पुत्रोंको प्रसव करनेवाली माताओंकी गणना सुमाताओंमें होती है।

ऐसी समातायें महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू आदि महापुरुषोंकी जन्मदात्री मातायें हैं।

पुत्रको गुणवान्, विद्वान् और महापुरुष बनानेके लिए माताका गुणवती और सुशिक्षिता होना आवश्यक है। परन्तु सुशिक्षासे तात्पर्य उस शिक्षासे नहीं है, जो आजकल स्कूलों और कालेजोंमें दी जाती है। माताकी सुशिक्षासे हमारा मतलब है उन सद्गुणों और सद्भावनाओंसे विभूषित होना, जिनसे वह अपनी सन्तानको संसार-क्षेत्रमें उतरनेके लिए 'मनुष्य'के रूपमें गढ़ सके। आधुनिक शिक्षाकी कसौटीपर कसकर देखनेसे तो शिवाजी, राणा प्रताप, दयानन्द, शङ्कराचार्य, तुलसीदास, कबीरदास, गुरु गोविन्दसिंह आदि महापुरुषोंकी मातायें असिक्षिता ही उतरेंगी।

माताकी चारित्रिक विशिष्टता और सद्गुण उसके पुत्रको महानताके उच्च शिखरपर चढ़ानेमें बहुत कुछ अंशमें सहायक हो सकते हैं। संसारके प्रायः सभी महापुरुष इसके उदाहरण हैं। आज देशके दुर्भाग्यवश नारियोंको योग्य शिक्षा नहीं दी जा रही है, जिसके परिणाम-स्वरूप समाज मृतप्राय हो रहा है। जिस देशकी माताओंने अपनी कोखसे ऐसी-ऐसी सन्तानोंको जन्म दिया था, जिनकी कीर्तिध्वजा दिगदिगन्तोंमें फहरा रही थी, आज वही देश सदियोंसे पराधीन बना हुआ है। यह विधिकी विडम्बना है। पर अब भारत मोहकी निद्रासे जाग उठा है, नारियोंमें भी द्रुतगतिसे जागरण हो रहा है और वह दिन हमें शीघ्र ही देखनेको मिलेगा, जब देशकी योग्य मातायें योग्य सन्तानें उत्पन्न कर देशको स्वाधीन करेंगी।

—शारदा देवी।

हमारी शिक्षापद्धति

इस समय हमारे देशमें महिलाओंकी समस्याओंको समझने और उनका उचित समाधान करनेकी ओर काफी दिलचस्पी दिखाई जा रही है। आप किसी भी प्रगतिशील मासिक या साप्ताहिक पत्रको उठाकर देखिये, आपको प्रायः हर अङ्कमें महिलाओंके सम्बन्धमें एक या दो लेख मिलेंगे। किन्तु ही पत्रोंने तो नियमानुकूल महिलाओंके लिए स्वतन्त्र स्तम्भ नियत कर दिये हैं, जिनमें बराबर महिला-समस्याओंकी चर्चा हुआ करती है। पर साथ ही कुछ ऐसे अनुदार व्यक्ति भी हैं, जो महिलाओंको पूर्वकी भांति आज भी रुढ़ियों और कूटसंस्कारोंके जालमें फंसाये रखना चाहते हैं। वे उन्हें किसी

प्रकारकी स्वतन्त्रता देनेको तैयार नहीं। एक श्रेणीके कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो बीचके मार्गसे चलना चाहते हैं। वे स्त्रियोंको स्वतन्त्रता देनेके पक्षमें तो जरूर हैं, पर वे नहीं चाहते कि स्त्रियां बिलकुल स्वतन्त्र कर दी जायं। मेरे विचारमें भी उनका कथन बहुत कुछ अंशोंमें ठीक है। स्वतन्त्रता बुरी चीज नहीं है; पर स्वतन्त्रतासे वही स्त्री समुचित लाभ उठा सकती है, जो उसका ठीक-ठीक उपयोग कर सके और जिसमें इतनी शक्ति हो कि दूसरे उसकी स्वतन्त्रता हड़प जानेका साहस न दिखावें। यह तो मानना ही पड़ेगा कि प्रकृतिने स्त्री और पुरुषको एक-सा नहीं बनाया। दोनोंके शारीरिक गठनमें काफी अन्तर है। मेरे ख्यालमें दूसरे भेदके कारण स्त्रियोंका कई विषयोंमें पुरुषोंके आश्रित रहना श्रेयस्कर है। यदि वे पुरुषोंके संरक्षणमें नहीं रहेंगी, तो समाजमें उनके दिन प्रति-दिनके जीवनमें शिष्टता और सभ्यतापूर्वक रहना दुष्कर प्रतीत होगा। स्त्रियोंको किसी न किसी रूपमें पिता अथवा पतिके आश्रयमें अवश्य रहना पड़ेगा। आजकल पाश्चात्य देशोंकी स्त्रियां पूर्ण स्वतन्त्रतासे अपना जीवन व्यतीत करनेके लिए किसीके अधीन रहना पसन्द नहीं करतीं। यहां तक कि वे आजन्म अविवाहित ही रहना चाहती हैं। उनका कहना है कि विवाह कर लेनेसे तो किसी व्यक्तिके अधीन रहना पड़ता है। ईश्वर न करे, यह रोग हमारे देशकी महिलाओंमें फैले। स्त्री हो या पुरुष, किसीका भी अविवाहित जीवन बिताना अस्वाभाविक है। प्रकृतिने दोनोंको ऐसा बनाया ही है कि वे किसी भी हालतमें अविवाहित नहीं रह सकते। जब तक मनुष्य जातिको संसारमें रहना है, जब तक उसे अपनेको पशुकी अपेक्षा सभ्य और उन्नत कहना है, तब तक स्त्री-पुरुषके विवाह-सम्बन्धका अस्तित्व नहीं मिट सकता और न गार्हस्थ्य जीवनकी जड़ ही उखड़ सकती है। पर आजकल गार्हस्थ्य जीवनको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा जा रहा है। क्योंकि पाश्चात्य देशोंमें गृह-सम्बन्धी कार्योंको करना स्त्रियां अपनी शानके खिलाफ समझती हैं। वे रसोई बनाने और बच्चेको खिलानेमें अपना समय बर्बाद करनेकी अपेक्षा सिनेमा-थियेटर या क्लबमें अपने समयका सदुपयोग करना अच्छा समझती हैं। यह वहांकी दूषित आधुनिक शिक्षा-प्रणालीका दोष है। भला अविवाहित रहकर इधर-उधर तितलियोंकी तरह घूमने-फिरनेवाली स्त्री अपने देश या समाजका क्या उपकार कर

सकती है। वास्तवमें वही स्त्री अपने राष्ट्र, समाज और परिवारकी सच्ची सेवा कर सकती है, जो हृष्टपुष्ट और मानसिक शक्तियोंसे युक्त एक बालक राष्ट्रको भेट कर सकती है। और बचपनसे ही उसे ऐसी शिक्षा देनी है कि उसकी नस-नसमें अपने धर्म और देशके प्रति दृढ़ प्रेमकी सरिता प्रवाहित होने लगती है और वह आगे चलकर अपने देश और धर्मपर मर मिटनेको तैयार रहता है। रोम और यूनानके प्राचीन गौरवको प्रदान करनेका श्रेय ऐसी ही माताओंको मिला था। ऐसी ही स्त्रियां राष्ट्रकी निधि और चिरस्थायी सम्पत्ति होती हैं।

ऊपर जिस गृहस्थ-जीवन सम्बन्धी उत्तरदायित्वका जिक्र किया गया है, उसे पूर्ण एवं उचित रूपसे निभानेके लिए यह आवश्यक है कि स्त्रियां शिक्षित हों। पर उन्हें इस प्रकारकी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे उन्हें अपने देश और जातिके प्राचीन गौरव और वैभवका ज्ञान हो और साथ ही वर्तमान समाज-नीति और राजनीतिकी जानकारी हो और गृह-विज्ञानमें भी वे पूर्णरूपसे दक्ष हों। केवल पुस्तकगत शिक्षा प्राप्त करनेसे कोई लाभ नहीं, शिक्षा तो व्यावहारिक होनी चाहिए। इस शिक्षाका मुख्य उद्देश्य होना चाहिए गार्हस्थ्य जीवनके प्रति प्रेम उत्पन्न करना, जिससे स्त्री उसे अपनी सांसारिक सुख-समृद्धिका साधन और राष्ट्रका आधार समझे। और गृहको बालकोंके मनोरञ्जन, उनकी शिक्षा और परिवारके प्रेम तथा सहानुभूतिका केन्द्र बनाये।

इसके अतिरिक्त स्त्री-स्वातन्त्र्यका और क्या अर्थ हो सकता है। स्वतन्त्रताके नामपर तो वास्तवमें आजकल उच्छृङ्खलताका प्रचार करनेकी चेष्टा की जा रही है। इसीके नामपर आजकल सहशिक्षाके लिए भी बड़े जोरोंसे आवाज उठायी जा रही है। इसके पक्षमें कई दलीलें भी पेश की जाती हैं। पर यदि ध्यानसे विचार किया जाय, तो उनमें कोई भी व्यावहारिक नहीं जंचती। मेरी समझमें प्रारम्भिक कक्षाओंको छोड़कर सहशिक्षा और किसी भी दशामें आर्थिक और नैतिक दृष्टिसे उपयुक्त प्रतीत नहीं होती। पाश्चात्य सभ्यताका अन्धानुकरण हमारे लिए कदापि श्रेयस्कर नहीं हो सकता। वास्तवमें हमारी चिरस्थायी और प्रगतिशील उन्नति तो तभी हो सकती है, जबकि भारतीय सभ्यता और संस्कृतिके आधारपर देश-कालका ध्यान रखते हुए सामाजिक व्यवस्थाका पुनर्निर्माण हो। —मनोरमा गुप्त, एम.ए.

चीनकी ये वीराङ्गनायें

अपने देशकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए महिलायें किस प्रकार अपना कर्तव्य पालन कर सकती हैं, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण चीन-जापानके संप्राममें चीनकी वीराङ्गनायें दे रही हैं। चीनमें रजिस्टर्ड महिला डाक्टरों, नर्सों और औषधि प्रस्तुतकर्त्यांकी कुल संख्या ४४९३ है। इनमें प्रायः आधी युद्धक्षेत्रमें घायल सैनिकोंकी सेवा-शुश्रूषामें लगी हुई हैं। वस्तुतः इससे ज्यादा संख्यामें महिलायें युद्धके चिकित्सा-विभागमें काम कर रही हैं, क्योंकि बहुत नाम रजिस्टर्ड नहीं हैं।

इस समय युद्धक्षेत्रके तीन चिकित्सा-विभागोंमें कमसे कम २००० महिलायें अपनी जानोंको हथेलीपर लिये काम कर रही हैं। वे हर तरहके खतरे उठाकर घायल और मरणासन्न सैनिकोंकी सेवा-शुश्रूषामें संलग्न हैं। इन २००० महिलाओंमें सबसे ज्यादा संख्या नर्सोंकी है। कुल मिलाकर १३८४ नर्स हैं। इनके अतिरिक्त १९९ डाक्टर, १६५ ड्रेसर, ७३ औषधि बनानेवाली हैं। करीब दो सौ स्त्रियां नेशनल हेल्थ एडमिनिस्ट्रेशनके अस्पतालों तथा उसके अन्तर्गत अन्य संस्थाओंमें काम कर रही हैं।

पहले यह समझा जाता था कि केवल पुरुष ही ऐसे कठिन कार्य करनेमें समर्थ हो सकते हैं, पर इन चीनी महिलाओंने अपने साहस और लगनसे यह सिद्ध कर दिया कि समय आनेपर स्त्रियां भी कठोरसे कठोर काम कर सकती हैं। करीब ६९ स्त्रियां ऐसी हैं, जो गोलियों और बमोंकी जरा भी परवा न कर युद्धक्षेत्रसे घायलोंको उठा-उठाकर ले आती हैं। इनमें तीन डाक्टर, तीन औषधि-प्रस्तुत करनेवाली और शेष ९८ नर्स हैं।

चाइनीज रेड क्रॉसके मेडिकल रिलीफ कमीशनमें काम करनेवाली महिला डाक्टरोंकी संख्या आर्मी मेडिकल सर्विसमें काम करनेवाली महिला डाक्टरोंसे कहीं ज्यादा है। कमीशनमें कुल मिलाकर १६६७ व्यक्ति काम कर रहे हैं, जिनमें ४९७ स्त्रियां हैं। इनमें १९ डाक्टर, ४ औषधि प्रस्तुतकर्ता, १६९ ड्रेसर, २६८ नर्स हैं। एक ट्रांसपोर्टेशन डिपार्टमेंटमें है, और चार सेक्रेटेरियल काम करती हैं। केवल सात ही स्त्रियां कमीशनके हेड क्वार्टरमें हैं और शेष ४९० युद्धक्षेत्रके विभिन्न यूनिटोंमें काम करती हैं। वे बराबर इधरसे उधर चकर लगाती रहती हैं और जहां उनकी सेवाओंकी जरूरत

होती है, झट पहुंच जाती हैं। कुछ स्त्रियां गुरिला युद्धक्षेत्रों में वायलोंकी सेवा कर रही हैं।

नेशनल हेल्थ एडमिनिस्ट्रेशनमें ३९३ स्त्रियां काम करती हैं, जिनमें २०० अस्पतालों तथा एडमिनिस्ट्रेशनके अन्यस्थायी विभागोंमें काम करती हैं। १९३ रोग निवारक कोरमें हैं, जो बराबर युद्धक्षेत्रोंमें गश्त लगाया करती हैं। चङ्किकिङ्गमें और उसके आसपास मेडिकल कमीशनमें ५८ महिला डाक्टर, नर्स आदि काम करती हैं। शहरपर हवाई हमला बन्द होते ही ये महिला डाक्टर और नर्स पीड़ित क्षेत्रोंमें काम करनेके लिए निकल पड़ती हैं।

इस प्रकार चीनकी ये वीराङ्गनायें संसारके अन्य देशोंकी महिलाओंके सामने अपने साहस, वीरता और सेवाव्रतसे ज्वलन्त आदर्श उपस्थित कर दिखा रही हैं कि देशके सङ्कटापन्न होनेपर स्त्रियां पुरुषोंके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर देशकी रक्षाके लिए किस तरह काम कर सकती हैं।

भारतीय महिलाओंका कर्तव्य

इस समय यूरोपीय युद्धके कारण जो विकट अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है, उसके प्रति भारतीय महिलाओंका क्या कर्तव्य है, इस सम्बन्धमें लखनऊमें होनेवाले अवध महिला सम्मेलनकी सभानेत्री-पदसे भाषण देते हुए माननीया श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डितने कहा कि माताके रूपमें हमारा कर्तव्य बिल्कुल स्पष्ट है। हमारे बच्चोंको अपने देशके लिए जीना चाहिए। हमें उस दिनके लिए जीवित रहना चाहिए, जबकि सारे अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े सभ्य तरीकोंसे तय हो जाया करेंगे और कोई भी पुरुष किसी दूसरे पुरुषपर हाथ न उठावेगा।

आगरा प्रान्तीय महिला-सम्मेलनमें भी आपने इसी सिलसिलेमें भाषण करते हुए कहा कि भारतवर्ष चिरकालसे विश्वमें शान्तिकी वाणी सुनाता आ रहा है। सभ्यताके क्षेत्रमें यही इसका विशेष दान है। इस समय संसारमें एक अत्यन्त विश्वङ्कुल अवस्था उपस्थित हुई है। ऐसे समयमें भारतवर्ष चुपचाप बैठा नहीं रह सकता। भारत माताकी पुत्रियोंको सम्मिलित होकर मानव-जीवन-संहारी परराज्य-लोलुपता एवं वर्बरताके विरुद्ध खड़ा होना चाहिए।

कुछ महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव

उक्त सम्मेलनमें कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। एक प्रस्तावमें कहा गया है कि भारतीय जनसाधारणकी, विशेष-

कर महिलाओंको वर्तमान संसारको नूतन रूप देनेके आदर्शको सामने रखकर काम करना चाहिए। उस नये संसारमें युद्धकी स्पृहा नहीं रहने पावेगी और न मनुष्य घातक अस्त्र-शस्त्रोंके खिलौनेसे खेलेंगे।

युक्त प्रदेशमें जो इस समय साम्प्रदायिकताका विष फैल रहा है, उसके सम्बन्धमें दुःख प्रकट कर सभी सम्प्रदायों और जातियोंकी महिलाओंसे साम्प्रदायिकताका घोर विरोध करनेका अनुरोध किया गया। एक दूसरे प्रस्तावमें वर्तमान विवाह-कानूनमें संशोधन कर बहुविवाहकी प्रथाका अन्त करनेके लिए अपील की गयी।

एक और प्रस्तावमें सम्मेलनने सरकारसे यह प्रार्थना की है कि ग्राम-सुधार-योजनाके अन्तर्गत कोई ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे ग्रामोंमें रहनेवाली महिलाओंका भी रोजगार करनेकी सुविधा मिले। और ग्राम-सुधार-सम्बन्धी हितकर कार्योंकी ओर महिलाओंको आकर्षित करनेके उद्देश्यसे ग्रामोंमें प्रचार-कार्यके लिए महिला आर्गनाइजर्सकी भी नियुक्ति की जानी चाहिए।

महिलायें और राष्ट्रीय उत्थान

राष्ट्रीय उत्थान-कार्यमें महिलायें किस प्रकार भाग ले सकती हैं, इस सम्बन्धमें तिनवलीकी महिला-सभामें सभानेत्री देगम अमीरुद्दीनने कहा है कि महिलाओंको पुरुषोंकी अपेक्षा ज्यादा फुरसत रहती है। वे अपने इस समयको व्यर्थकी गप-शपमें बिताती हैं। यदि वे अपने फुरसतके समयको किसी उपयोगी काममें लगावें, तो उनका और साथ ही देशका भी उपकार हो। देशमें घोर निरक्षरता फैली हुई है। महिलायें देशके इस कलङ्कको मिटानेके लिए बहुत कुछ कर सकती हैं। वे रोगियों और अपाहिजोंकी सेवा कर, अपने समयका सदुपयोग कर सकती हैं। यदि महिलायें कुटीर-शिल्पमें दिलचस्पी दिखलायें, तो देशमें अनेक उद्योग-धन्धोंकी उन्नति हो और विदेशोंको जानेवाला धन देशमें ही रह जाय। इससे लोगोंकी गरीबी दूर होगी और उनके जीवन-निर्वाहका मापदण्ड ऊंचा होगा। इस देशमें बड़े पैमानेमें चलाये जानेवाले उद्योग-धन्धोंके साथ कुटीर-शिल्पके लिए भी पर्याप्त क्षेत्र है।



समाज सुधारक ध्यान दें !

पिछले दिनों अग्रवाल सभा बरेलीका वार्षिकोत्सव 'विश्वमित्र'-सञ्चालक बाबू मूलचन्द्रजी अग्रवाल बी० ए० की अध्यक्षतामें हुआ। अध्यक्ष-पदसे भाषण करते हुए आपने नारी जातिके उत्थान, सामाजिक कुरीतियोंके बहिष्कार तथा फैशनों एवं बाह्याडम्बरोंके रूपमें समाजमें फैले हुए कुछ नवीन रोगोंका अत्यन्त ओजस्वी एवं मार्मिक शब्दोंमें उल्लेख करते हुए ऐसे विचारणीय प्रश्नोंपर प्रकाश डाला है, जिनपर समाजका ध्यान आकर्षित करनेकी आवश्यकता है। आपने नारी जातिके प्रति होनेवाली उपेक्षाका उल्लेख करते हुए कहा :—

“पुत्रकी जगह कन्याके पैदा होनेपर हमें यह कहनेका कोई हक नहीं कि गजब हो गया। यह तो लड़की है—लड़का नहीं। सभी आशाओंपर पानी फिरा। आपने सन्तान पैदा की—बेचारी लड़कीका क्या दोष। उसने क्या अपराध किया, जो उसके जन्म लेनेपर आपके यहां बन्दूकें नहीं छूटतीं। बाजे नहीं बजते, दान निछावर सभी बन्द हैं। और लड़का होते ही दनादन बन्दूकके फायर, अशर्फियोंकी वर्षा और नगाड़ोंपर चोट। बस, हमारे पतनका आरम्भ यहांसे ही होता है। संसारमें ऐसी मनोवृत्ति और किसी सभ्य देशमें न मिलेगी। समाजमें फैली हुई यह दुर्भावना ही हमारे सभी सुधार-कार्योंके मार्गमें बाधक है और लाख उत्सव मनाने, जुलूस निकालने और व्याख्यान फटकारनेपर भी हम समाज-सुधार-के क्षेत्रमें एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते—हिन्दू सभाके मन्त्री, कांग्रेस कमेटीके सभापति, सभा-सम्मेलनोंके कर्णधार

सभी पुराने कीचड़में फंसे हुए हैं और मातृ-जातिका अनादर करते हुए देश और विदेशमें शोकरें खा रहे हैं।

जन्मकालके बाद मातृ-जातिके अपमानका दूसरा अध्याय। यह अपमान किसके द्वारा—उन्हीं जोशीले युवकों द्वारा, जो गला फाड़कर चिल्लाते हैं कि हम देश और समाजके लिए कुर्बान होनेको तैयार हैं। बालिकाओंके विवाहोंपर टेक्स—हम तो मोटर जरूर लेंगे, विलायतमें पढ़नेके लिए यदि खर्च मिलेगा, तो शादी करनेको तैयार हो सकते हैं—विवाहमें कितने हजारका गहना चढ़ेगा—लड़की पढ़ी-लिखी, स्वस्थ, सुन्दर; परन्तु अदा करनेके लिए टेक्स नहीं—इसलिए सुयोग्य वरका अभाव। सुन्दरीको वरका अभाव—कहिये संसारमें क्या कहीं ऐसी कोई मिसाल है? विवाह लड़कीसे नहीं, मोटर और जेवरसे! कैसा सुन्दर सम्बन्ध है! समाज-सुधार और देशहितकी कितनी सुन्दर भावना है! इन भावोंको कायम रखकर भी हम सुधारकी चर्चा करते रहते हैं, यह हमारी निर्लज्जताकी पराकाष्ठा है और इसका जो बुरा फल होना चाहिए, वह तो हम लोग भोग ही रहे हैं। मातृजातिके प्रति किये हुए अन्यायोंके कारण क्या कभी हम क्षन्तव्य माने जा सकेंगे? इन कम-जोरियोंको अपने अन्दर रखकर क्या कभी हम कोई सुधार कर सकेंगे? वर यदि पुंसत्वहीन हो, तब भी बेचारी बालिकाका पुनर्विवाह सम्भव नहीं; परन्तु असंख्य उदाहरण एक पतिकी दो स्त्रियोंके हैं और समाज चुपचाप यह हृदय-विदारक नाटक देखता रहता है। क्या इसपर भी हम ईश्वरीय न्याय पानेके अधिकारी रह जाते हैं?

मातृजातिके अमानके ये दो अध्याय तो बहुत ही साधारण हैं, जब कि हम तीसरे अध्यायकी तुलना उनसे करनेके लिए तैयार होते हैं। यह तीसरा अध्याय तो हमें रसातल भेज रहा है। आंखें रखते हुए भी हम अन्धे बन रहे हैं और 'हृदय' नामकी चीज तो हमारे पास मालूम ही नहीं होती—दिल होता, तो जोरकी धड़कन होती—परन्तु जब दिल ही नहीं, तो धड़कन कहाँसे हो। इस तीसरे अध्यायको यदि हम आज और अभी खत्म करनेके लिए कटिबद्ध नहीं हो सकते, तो हम कभी कुछ नहीं कर सकते और ये समा-सम्मेलन सभी बेकार हैं। आप समझ ही गये होंगे कि यह तीसरा अध्याय कौन-सा है—कहिये—मैं आपके मुखसे ही सुनना ज्यादा पसन्द करूँगा। मेरी जवानमें ताकत नहीं कि उसकी चर्चा भी कर सकूँ। जवान बुरी तरह लड़खड़ाती है, रोंगटे खड़े होते हैं, जब कि उन प्यारी नन्हीं-नन्हीं बाल-विधवाओंकी व्यथाकी ओर आपका और भारतीय हिन्दू-समाजका ध्यान आकर्षित करता हूँ। धर्म-शास्त्रोंके पन्नोंमें भी तूफान उठ खड़ा होता है, जब कि धर्मका नाम लेकर लोग इन लाड़ली बेटियोंके साथ घोर अन्याय करते हैं। झांसीमें १०-११ वर्षीय बालिकाका विवाह रात्रिको होता है, सवेरे वरको लू लग जाती है और वह उसी दिन चल बसता है। बारात वापस चली जाती है और वह बालिका विधवा घोषित हो जाती है !

हृदयपर हाथ रखकर कहिये कि क्या वह वास्तवमें विधवा है ? जिसका विवाह इस जन्ममें सम्भव नहीं—वैवाहिक सुखके लिए उस बेचारीको नया मानुष तन धारण करना होगा—आजका हिन्दू-समाज उसे वह सुख नहीं दे सकता, जिसका उसे नैसर्गिक अधिकार है। पवित्र सती-धर्मके आदर्शकी तुहाई देनेवाला यह हिन्दू-समाज क्या ऐसी अबोध बालिकाओंके लिए पिशाचका काम करनेके लिए ही जीवित है ? यह ठोस पत्थरका हृदय रखनेवाला समाज क्या कभी बदलेगा नहीं और यदि न्यायके नामपर आवश्यक परिवर्तन नहीं कर सकता, तो इसका अस्तित्व ही लुप्त हो जाना क्या वाञ्छनीय नहीं ! आखिर अस्तित्व रखकर ही वह क्या करेगा, यदि उसमें न्यायानुकूल परिवर्तन और संशोधन नहीं हो सकते। कौन परिवार, कौन घर सुखी

है ? किसके यहां नजदीकी या दूरके सम्बन्धमें ऐसी बाल-विधवायें नहीं, जिन्होंने पति-मुख-दर्शन नामक वस्तु ही न जानी और जिनके पीछे व्यभिचारी प्लेगके कीड़े हाथ धोकर पड़े हुए हैं। हमारी वे बेटियाँ हमसे बिछुड़ती हैं और हम लम्बी नाकधारी धर्मरक्षक बने हुए हैं ! गजब है—बड़ा भारी अन्धेरे है—भगवन्, कब सुबुद्धि आयेगी !”

इसके पश्चात् नारी जातिको पर्दे तथा घूंघटमें रखनेके विरुद्ध अपनी ओजस्वी और व्यङ्गपूर्ण वाणीमें आपने कहाः—

“वे बेचारी आपकी इच्छादासी होनेके कारण बायस्कोप और थियेटरमें तो जा सकती हैं, परन्तु सजातीय बन्धुओंके सामने मुंह भी नहीं खोल सकतीं—बड़े-बड़े वकील, बैरिस्टर, डिप्टी, मजिस्ट्रेट और डाक्टर भी उनके मुंहपर डेढ़ हाथका कपड़ा डलवाकर उन्हें एक विचित्र जन्तु बना देते हैं।

स्कूल-कालेजमें पढ़ी हुई बालिकायें भी डिप्टी साहबकी अर्द्धाङ्गिनी बनकर गायोंके समान चहारदीवारीमें बन्द रहती हैं और रेल-तांगेपर बैठनेपर वह 'घूंघट' निकालती हैं, जो हमारे देशका सबसे बड़ा आविष्कार माना जा सकता है, जिसका हमने सोल पेटेंट राइट ले रखा है और जिसकी कापीका किसीको अधिकार नहीं। हम सबको इस 'घूंघट'की जय सबसे पहले बोलनी चाहिए। इस 'घूंघट'ने ही तो हमारी देवियोंको इतना सुरक्षित रखा है और यदि इन घूंघटधारी सेनाओंको हिटलर और मुसोलिनी देख लें, तो हिन्दुस्तानकी ओर आंख भी न उठा सकें। यह इतनी जबर्दस्त पलटन है, जो हम बहादुरोंने इस बीसवीं सदीमें इतनी काफी तादादमें एकत्र कर रखी है। वकील साहब टोप पहनकर स्टेशन पहुंच जाते हैं और देवीजी घूंघट धारण किये हुए जब तक ट्रेन तक पहुंचती हैं, ट्रेन छूट जाती है। वकील साहब ताकते रह जाते हैं, परन्तु घूंघटको दोष न देकर देवीजीको फटकारते हैं कि किस कमबख्तसे पाला पड़ा। x x x

“आधा बदन आगे बढ़ नहीं सकता और घूंघट आगे बदनको तेजीसे आगे कदम रखने नहीं देगा। इसलिए इस साधारण रोगको तो आसानीसे दूर किया जा सकता है—अपनी बहन-बेटियों और स्त्रियोंपर आसानीसे विश्वास किया जा सकता है कि घूंघट हटाकर यदि वे चलेगी, तो तुरन्त ही व्यभिचारिणी न बनेंगी और यदि यह दलील है कि गुण्डे-बदमाश उनकी सुन्दरता देखकर उन्हें तुरन्त भगा ले जायेंगे,

तो घूँघट न रखनेपर यह लाभ तो होगा कि वे भगानेवालेको पहचान तो सकेंगी।”

आभूषणोंका रोग

हिन्दू-समाजकी अनेक अच्छाइयोंके भीतर आज कुछ ऐसी बुराइयां घुस गयी हैं, जो समाजमें तरह-तरहकी अशान्तियां भर रही हैं और सामाजिक जीवन कठिन होता जा रहा है। इसलिये ऐसी बुराइयोंका मूलोच्छेद करनेकी आवश्यकता है। लेकिन कुछ बुराइयां इस दृष्टिकोण से हैं, जिनका निराकरण असम्भव-सा हो रहा है, यद्यपि उनके दुष्परिणामोंको सभी लोग जानते हैं। इन्हीं बुराइयोंमें आभूषणोंके प्रति हमारे समाजमें फैली हुई गलत धारणायें हैं। सभी समाजोंमें आभूषणोंका रिवाज है, पर हमारे यहां तो यह रोग नित्य बढ़ता-सा नजर आता है। नयी रोशनीके पड़े-लिखे लोगोंसे आशा की जाती थी कि वे इसके विरुद्ध आवाज उठावेंगे, और उन्होंने आवाज उठायी भी; पर किस रूपमें? प्राचीन कालीन आभूषणोंके विरुद्ध वे अवश्य हैं; पर नये-नये फैशनोसे वे भी अपनेको अलग न कर सके। कुछ ऐसे अवसर अवश्य हैं, जहां आभूषणोंका उपयोग किया जा सकता है। प्राचीन कालमें सम्पत्तिको आभूषणोंके रूपमें सुरक्षित रखने और विपत्तिके समय उसका उपयोग करनेकी प्रवृत्तिके कारण इसे लोग अपनाते रहे हैं, पर आज तो उसका रूढ़ि ही विकृत हो गया है। आज तो, जैसा कि हिन्दीकी कवयित्री श्रीमती महादेवीजी वर्मा एम० ए० ने कहा है, “आज आभूषण नारी जातिको दासताकी शृङ्खलामें बांधनेके लिए लोहेकी जड़ियोंसे भी अधिक मजबूत साबित हो रहे हैं। नारी जातिको जिन अनेक बातोंमें पुरुष जातिका परावलम्बी बनाया है, उनमें नारीकी आभूषण-लिप्सा भी है। अतः यदि नारी स्वाधीनता चाहती है और अगर वह स्वावलम्बन और स्वाभिमान चाहती है, तो उसे इस प्रकारकी लिप्साओंसे ऊपर उठना होगा।”

महादेवीजीके ये शब्द बड़े ही मार्मिक हैं और इसमें सन्देह नहीं कि ये सत्य और सच्चावनासे प्रेरित हैं। लेकिन सच तो यह है कि नारी जातिके लिए ही नहीं, आभूषणोंने सारे समाजमें काफी कठिनाइयोंकी सृष्टि की है। इलाहाबाद हाईकोर्ट द्वारा अभी उस दिन एक मामलेका फैसला सुनाया गया है, जिसपर किसी प्रकारकी टीका-टिप्पणी किये बिना हम

उसकी रिपोर्ट, वहांके एक पत्रमें जिस रूपमें प्रकाशित हुई थी, उसी रूपमें उद्धृत कर रहे हैं। रिपोर्ट यों है :-

प्रयाग हाईकोर्टके माननीय जस्टिस रत्नपालसिंह और जस्टिस हण्टरने हत्याके एक मामलेका फैसला सुनाया है। अभियुक्त केवलसिंहको ताजीरात हिन्दूकी धारा १०९ और ३०२ के अनुसार तथा उसकी स्त्री लौंगसिरीको धारा ३०२ के अनुसार आगराके सेशन जजने आजन्म कालेपानीकी सजा दी थी।

उन्हें ६ महीनेकी अतिरिक्त सजा प्रमाण छिपाने तथा दो वर्षकी सजा मृतककी सम्पत्तिको बेजा तरीकेपर काममें लानेके अपराधमें हुई। दोनों सजायें एक साथ ही चलेंगी।

मामला इस प्रकार था—मुसम्मात दुलारी, जिसकी अवस्था बारह वर्षकी थी, अभियुक्तकी स्त्री लौंगसिरीके निमन्त्रणपर उसके घर गयी। मुसम्मात लौंगसिरीने उसे अपने गहने दिखानेको कहा। मुसम्मात दुलारी जब सर झुकाकर एक गहना दिखा रही थी, तब अभियुक्तकी स्त्रीने एक गंडासा उठाया और दुलारीपर प्रहार करना शुरू किया; यहां तक कि वह मर गयी। मुसम्मात दुलारीकी लाश तथा उसके गहने अभियुक्तके घरमें बरामद हुए। लाश अनाज रखनेवाले एक मिट्टीके बर्तनमें छिपाकर रखी गयी थी।

शहादतोंपर विचार करनेके बाद माननीय जज इस निर्णयपर पहुंचे कि मुसम्मात लौंगसिरीके खिलाफ अभियोग सिद्ध हो गया है। माननीय जजोंने सेशन जजके इस निर्णयसे इनकार किया कि अभियुक्तकेवलसिंह भी हत्यामें शरीक था। उन्होंने कहा कि केवलसिंहके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं है। शहादतमें यह भी था कि हत्याके समय वह घरमें नहीं था।

इसलिए माननीय जजोंने दोनों अभियुक्तोंको प्रमाण छिपाने तथा मृतककी सम्पत्तिको गैरकानूनी तौरपर काममें लानेके अपराधोंसे बरी कर दिया। केवलसिंहको उन्होंने हत्याके अभियोगसे भी बरी कर दिया, परन्तु मुसम्मात लौंगसिरीको हत्याके लिए दी गयी सजाको बहाल रखा।

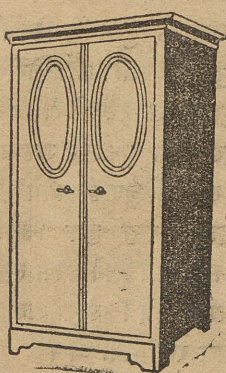
इस तरहकी घटनायें अक्सर सुननेमें आती हैं, और ये इस बातपर प्रकाश डालती हैं कि हमारा कितना सामाजिक अधःपतन हो गया है।

लेकिन इस पतनके गर्तसे निकलनेका उपाय हम क्या कर रहे हैं?

जी० राय एण्ड कं०

भारत भरमें मशहूर

आग और चोरों से रक्षा करनेवाली अच्छी-अच्छी

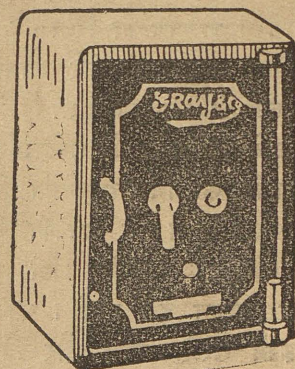


तिजोरियां, सन्दूक ताला

और कैबिनेट के निर्माता

ज्वेलर और जनरल

आर्डर सप्लायर्स



कलकत्ता, कानपुर, चटगांव और ढाकामें हिन्दू-मुस्लिम दंगेके समय लाख चेष्टायें करनेपर भी गुण्डे हमारी बनायी हुई आलमारियोंको नहीं खोल सके, क्योंकि हमारी तिजोरियोंमें अर्मर स्टील प्लेट देकर कल-पुर्जे सुरक्षित बनाये जाते हैं—यही हमारी सर्वोत्तम परीक्षा है।

पत्र आनेपर सचित्र सूचीपत्र मुफ्त भेजा जाता है।

आफिस—७०।१ क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता।

टेलीफोन नम्बर—१८३२ कलकत्ता।

सामाजिक रोगोंका इलाज

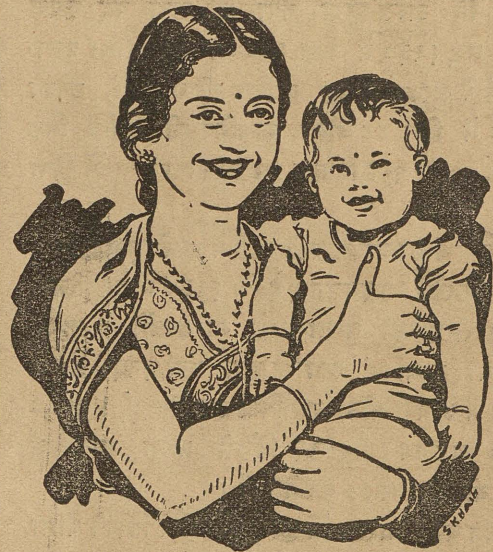
वर्तमान सामाजिक अवस्थापर विचार करते हुए एक समाज-सुधारकने कुछ मार्मिक बातें कही हैं। उन्होंने कहा है :—

किसी भी देशकी सामाजिक अवस्थापर इस बातकी बहुत अधिक जिम्मेदारी है कि वह कैसे नागरिक उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियां पैदा करती है। यदि सामाजिक परिस्थितियां नागरिक जीवनको स्वस्थ रखने योग्य न हुईं और यदि उनमें मनुष्यके स्वाभाविक गुणोंका विकास होनेके लिए अवसरोंका अभाव हुआ, तो निश्चित है कि नागरिक जीवनके लिए जिस चरित्र और आत्मबलकी आवश्यकता है, उसका अभाव बना रहेगा और इसका परिणाम राजनीतिक जीवनके लिए कभी कल्याणप्रद नहीं हो सकता। आजकल चरित्रको हमारे देशमें केवल यौन-सम्बन्ध तक ही सीमित रखा जाता है, जबकि चरित्रके अन्तर्गत कितनी ही बातें आती हैं, जिनका होना चरित्रवान् व्यक्तिमें अत्यन्त आवश्यक है। जिन पाश्चात्य देशोंमें यौन-आचरणकी स्वाधीनताके कारण हम उनके नागरिकोंको विलासी समझ लेते हैं, संसारके बड़े-बड़े आविष्कारोंके लिए उन्होंने कितना महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, इसका इतिहास साक्षी है। शरीरको नश्वर और आत्मा-को अमर माननेवाले भारतीयोंको प्राणका कितना मोह है, यह स्पष्ट करनेवाली सैकड़ों घटनायें हैं। समुद्रोंकी लहरोंपर शासन करनेवाले और हिमालयकी चोटी नापनेके प्रयत्नमें जीवन बलिदान करनेवाले उन देशोंके वे युवक ही हैं, जिन्हें हम विलासी और भौतिकतामें फंसे रहनेवाला समझते हैं।

हमने प्राचीन रुढ़ियों—प्राचीन कालकी केवल सड़ी-गली रुढ़ियोंको ही अपनानेमें अपनी प्राचीन-प्रियता प्रमाणित की है, दुर्भाग्यवश हमने उन पूर्वजोंके अनेक महान् आदर्शोंकी ओर ध्यान देनेका कष्ट ही नहीं उठाया है। धर्मके कुछ बाह्याडम्बरों और समाजकी कुछ कुछप्रसृत कुरीतियोंको तो हमने आज भी गलेसे लगा रखा है, पर पूर्वजोंकी उस वीरता, उनके चरित्र और उनके आदर्श कार्यों ने हमें कब उनका अनुकरण करनेको प्रोत्साहित किया। हर एक समाज और हर एक युगमें जो बातें चलती-रहती हैं, उनमें अच्छे-बुरे दोनों ही आदर्श हो सकते और होते हैं, पर जीवित और जागृत जाति-के यह लक्षण हैं कि वह अच्छे आदर्शोंको ग्रहण और बुरे

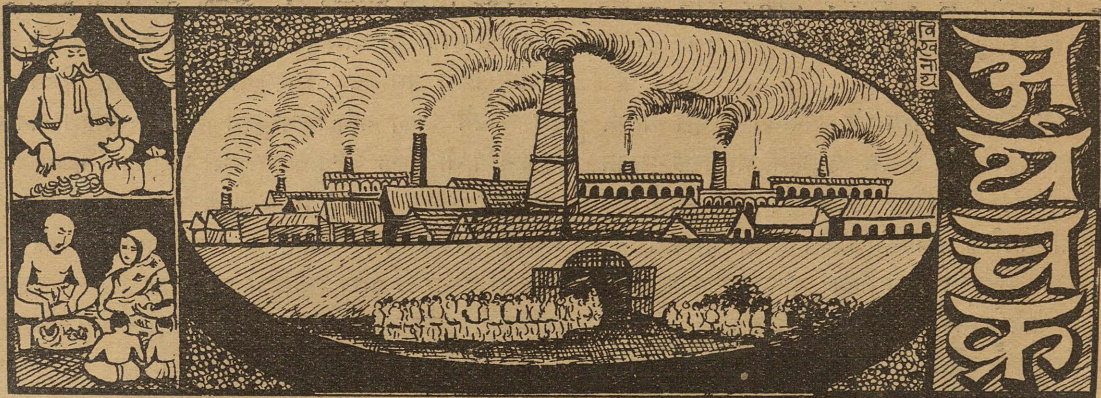
आदर्शोंकी उपेक्षा करती है। प्राचीनताके नामपर जो युगकी आवश्यकताओंके प्रतिकूल पड़े, उसकी उपेक्षा-सी होती है। और यही होना भी चाहिए। पर दुर्भाग्य तो यह है कि इस विषयमें हिन्दू-समाजने जागरूकतासे काम नहीं लिया है। इस विषयमें उसकी बड़ी अन्धधुन्ध नीति रही है। काफी शिक्षितोंमें भी अनेक अन्धविश्वास घर कर गये हैं। अन्यथा इस देशमें धर्मके आधारपर अस्पृश्यताका एक भी शिक्षित समर्थक कैसे मिलता? कितनी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि एक ओर तो संसारकी गोरी जातियां संसारकी समस्त रङ्गीन जातियोंसे घृणा करें और इधर रङ्गीन जातियोंमेंसे कितनी ही आपसमें ही हृद दर्जेकी घृणा करती हैं।

यह सामाजिक स्थिति समाजकी प्रगतिशीलताके मार्गमें ही भीषण बाधा नहीं है, बल्कि मानवताके विकासमें भी इससे बड़ी बाधा उपस्थित होती है। इसलिए आवश्यकता है कि हम समाजके इन दूषित अङ्गोंका इलाज कर डालें, अन्यथा हमारी प्रगति किसी दशामें भी नहीं हो सकती।



ता
क
त
के
लिए

बच्चोंको
डोंगरे का बालामृत
देना चाहिए।



भारतीय जीवन-बीमा-व्यवसाय

भारतीय बीमा-व्यवसायकी अवस्थाके सम्बन्धमें भारत-सरकारकी ओरसे गत १९३८ सालकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। नये बीमा-कानूनके अनुसार नियुक्त सुपरिण्टेण्डेंट आव इन्स्योरेन्स मि० टाम्स द्वारा तैयार की गयी यह पहली रिपोर्ट है। सन् १९३७ में जिन १०८ भारतीय बीमा कम्पनियोंकी रिपोर्टें सरकारके यहां दाखिल की गयी थीं, उनका तथा १९३८ में जिन ८८ बीमा कम्पनियोंकी रिपोर्टें मिल सकी हैं, उन सबका पूरा विवरण इस सरकारी रिपोर्टमें दिया गया है।

पूर्व वर्षोंके बीमा-व्यवसायको दृष्टिमें रखते हुए तुलनात्मक विचार करनेसे मालूम होता है कि १९३७ में नये बीमा-कानूनके जारी होनेकी सम्भावनासे भारतवर्षमें केवल दो ही नयी बीमा कम्पनियां स्थापित हुईं, जहां १९३५ में २० और १९३६ में ४ नयी बीमा कम्पनियां स्थापित हुईं। १९३७ में कुल २०० भारतीय और २६ विदेशी बीमा कम्पनियां भारतवर्षमें बीमा-व्यवसाय करती रहीं।

आलोच्य वर्षमें भारतवर्षमें कुल देशी और विदेशी बीमा कम्पनियों द्वारा ४८॥ करोड़ रुपयेकी नयी पालिसी जारी हुई। इसमेंसे भारतीय कम्पनियोंकी मार्फत ३९ करोड़की और बाकी विदेशी कम्पनियोंकी मार्फत जारी हुई। १९३६ में भारतीय बीमा कम्पनियोंने कुल ३६ करोड़ रुपयेकी पालिसियां जारी की थीं। इस हिसाबसे १९३७ में भारतीय बीमा कम्पनियोंमें कामके परिमाणमें उल्लेखनीय वृद्धि हुई। किन्तु

१९३५ की तुलनामें सन् १९३६ में भारतीय बीमा कम्पनियोंके नये काममें ४॥ करोड़ रुपयेकी वृद्धि हुई थी। इस दृष्टिसे १९३७ में भारतीय बीमा कम्पनियों द्वारा अपेक्षाकृत कम ही काम हुआ। नये बीमा-कानून जारी होनेकी सम्भावनासे उक्त वर्ष भारतीय बीमा कम्पनियोंने नया काम बढ़ानेकी ओर विशेष चेष्टा नहीं की। जो हो, १९३६ में भारतवर्षस्थित विदेशी बीमा कम्पनियोंकी मार्फत १०॥ करोड़ रुपयेकी नयी पालिसियां जारी की गयीं। पर १९३७ में वे कुल ९३ करोड़ रुपयेकी ही पालिसियां जारी कर सकीं। अर्थात् एक वर्षके अन्दर भारतस्थित विदेशी बीमा कम्पनियोंके कामके परिमाणमें १ करोड़से ज्यादा रुपयेकी कमी हुई। वहीं इसी अवधिमें भारतीय बीमा कम्पनियोंके नये कामके परिमाणमें ३ करोड़ रुपयेकी वृद्धि हुई। यह कम मार्फकी बात नहीं है। चालू बीमाकी दृष्टिसे भी इस वर्ष विदेशी कम्पनियोंकी तुलनामें भारतीय कम्पनियोंकी उल्लेखनीय उन्नति हुई है। १९३६ के अन्तमें भारतीय बीमा कम्पनियोंमें चालू बीमाका परिमाण १६८ करोड़ रुपये और विदेशी कम्पनियोंमें ९३ करोड़ रुपये था। १९३७ में भी विदेशी बीमा कम्पनियोंमें चालू बीमाका परिमाण ९३ करोड़ रुपये ही रहा है। और भारतीय बीमा कम्पनियोंमें चालू बीमाका परिमाण बढ़कर १६८ करोड़ रुपये हो गया। इस वर्ष और एक दृष्टिसे भी भारतीय बीमा कम्पनियोंकी उन्नति हुई है। बहुत-सी भारतीय बीमा कम्पनियां ब्रिटिश पूर्व अफ्रीका, सीलोन, मलाया, सिङ्गापुर आदिमें भी बीमाका कारबार

करती हैं। गत १९३६ में भारतीय बीमा कम्पनियोंने इन सब देशोंमें १॥॥ करोड़ रुपयेकी नयी पालिसियां जारी की थीं और इस वर्षके अन्तमें भारतीय बीमा कम्पनियोंमें उप-र्युक्त देशोंके चालू बीमोंका परिमाण था ७ करोड़ रुपये। १९३७ में भारतीय बीमा कम्पनियोंके नये कामका परिमाण था २॥॥ करोड़ रुपये और चालू बीमा १२॥ करोड़ रुपयेका था। नीचे गत पांच वर्षोंके भारतीय बीमा कम्पनियोंके देश और विदेशोंमें चालू और नये कामके आंकड़े दिये जाते हैं। पर इस हिसाबमें १०० भारतीय बीमा कम्पनियोंमें केवल १८० कम्पनियोंके ही आंकड़े दिये जाते हैं।

वर्ष	नया बीमा (रुपया करोड़ोंमें)	चालू बीमा (रुपया करोड़ोंमें)	आय (रुपया करोड़ोंमें)
१९३३	२४.८३	११९	८.१५
१९३४	२८.९२	१३७	८.३४
१९३५	३२.८१	१५२	९.३३
१९३६	३७.८०	१७५	११.३५
१९३७	४१.७४	१९७	१२.०२

भारतीय जीवन-बीमा कम्पनियोंके १९३७ के आय-व्ययके व्योरेकी आलोचना करनेसे बहुत-सी उल्लेखनीय बातें मालूम होती हैं। १९३६ में भारतीय बीमा कम्पनियोंकी आयमें ७४.४ प्रतिशत प्रीमियमसे, १५.२ प्रतिशत कारवारमें लगे रुपयेके सूद, मुनाफा और मकान-भाड़ा आदिसे, १०.२ प्रतिशत दूसरी-दूसरी मदोंसे आया था। १९३७ में प्रीमियमसे होनेवाली आय बढ़कर ८१.७ प्रतिशत हो गयी और विविध मदोंसे होनेवाली आय घटकर १.८ प्रतिशत हो गयी। इससे यह प्रकट होता है कि इस वर्षमें रद्द होनेवाली पालिसियोंमें काफी कमी हुई है। और कारवारमें लगे हुए रुपयेसे होनेवाली आय १५.२ से १५.९ प्रतिशत हो गयी। रिपोर्टमें बीमा कम्पनियोंके अमानतके रुपयोंसे मिलनेवाले सूदकी जो दर लिखी गयी है, उससे मालूम होता है कि जहां १९३६ में सूदकी औसत-दर प्रति ४.६९ प्रति सैकड़े थी, वहां १९३७ में वह ४.७६ प्रति सैकड़े हो गयी। १९३५ में यह दर ५.४२ प्रति सैकड़े थी। देशमें सर्वत्र सूदकी दर कम होनेसे यह दर भी क्रमशः कम होकर १९३६ में ४.६९ हो गयी; किन्तु छः वर्षके बाद १९३७ में फिर इस दरमें वृद्धि हुई। यह विशेष रूपसे उल्लेखनीय बात है।

१९३७ में बीमा कम्पनियोंके विभिन्न मदोंमें होनेवाले खर्चोंकी दरको देखनेसे मालूम होता है कि १९३६ में जहां मृत्युके दावोंको चुकानेके लिए बीमा कम्पनियोंको अपनी आयका १३.६ प्रतिशत व्यय करना पड़ा था, वहां १९३७ में १३.२ प्रतिशत खर्च करना पड़ा। इससे प्रकट होता है कि बीमा कम्पनियां, बीमा करानेवाले व्यक्तियोंके निर्वाचनमें काफी सावधानीसे काम ले रही हैं। या यह भी हो सकता है कि जीवन बीमा करानेवाले भारतीयोंकी मृत्यु-संख्या क्रमशः कम हो रही है। पर १९३६ में कम्पनियोंने अपने आफिसके कार्य-सञ्चालनके लिए जहां अपनी आयका २४.१ प्रतिशत खर्च किया था, वहां उन्हें १९३७ में इस मदमें २६.३ प्रतिशत खर्च करना पड़ा। और सम्भवतः इसी कारणसे १९३६ में जहां बीमा कम्पनियां अपनी आयका ४२.९ प्रतिशत जीवन बीमा कोषमें जमा करनेमें समर्थ हुईं, वहां १९३७ में वे अपनी आयके ४०.४ प्रतिशतसे अधिक जमा नहीं कर सकीं। भारतीय बीमा व्यवसायके इसी अङ्गकी ओर विशेष लक्ष्य करनेकी आवश्यकता है।

१९३७ के अन्तमें भारतीय बीमा कम्पनियोंके मौजूदा जीवन बीमा कोषका परिमाण था ४५ करोड़ ९ लाख रुपये और इस रकमको मिलाकर कुल सम्पत्तिका परिमाण था ५५ करोड़ ५३ लाख रुपये।

आलोच्य वर्षकी रिपोर्टमें भारतीय बीमा कम्पनियोंमें १०३ कम्पनियोंकी अन्तिम वेल्युएशन रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। उससे भारतीय जीवन-बीमा-व्यवसायकी उन्नतिका परिचय मिलता है। इस रिपोर्टसे यह भी प्रमाणित होता है कि भारतीय बीमा-व्यवसाय सुदृढ़ भित्तिपर प्रतिष्ठित है।

भारतमें नक्शोंको छपाई

इसी महीने सर्वे आर्च इण्डियाके फोटो-लिथो आफिसकी जयन्ती मनायी जायगी। यह आफिस, सर्वे आफ इण्डियाका नक्शे बनानेका प्रधान कार्यालय है। इसमें हुनर जाननेवाले कर्मचारियोंकी संख्या ३०० है। हाल ही में यहां सिर्फ एक महीनेमें २४११९ नक्शे तैयार किये गये थे, जिनका मूल्य १८०००) रुपये था, और विभिन्न नक्शों, चित्रों आदिकी १५६०२१ प्रतियां निकाली गयी थीं, जिनका मूल्य लगभग १००००) रुपये था। फोटो-लीथो आफिसमें प्रति वर्ष नक्शों

आदिकी ३०००००० से भी अधिक प्रतियां छापी जाती हैं, जिनका मूल्य ३०००००) रुपयेसे भी अधिक होता है।

यह आफिस कलकत्तेमें है, जिसकी स्थापना १८८९ के सितम्बर महीनेमें हुई थी। इसकी एक शाखा देहरादूनमें है, जिसका नाम फोटोजिको आफिस है। किन्तु नक्शे छापनेका सारा काम कलकत्तेमें ही होता है।

भारतमें खादीका उत्पादन

सन् १९३८ में भारतके किस-किस प्रान्तमें कितने मूल्य-की खादी उत्पन्न हुई, उसका व्योरा इस प्रकार है :—

प्रान्त	परिमाण (वर्गजोंमें)	मूल्य (रुपयोंमें)
आन्ध्र	१०,१७,९००	४६०५५१
आसाम	५०२१	१४७७
बिहार	१७२४५३५	६१३०५३
बङ्गाल	६८०१५९	२४६३९४
मध्यप्रदेश	११४७५०२	५७५८५९
गुजरात	३८१२२	२३६३१
कर्नाटक	४१५९८६	२०९४०५
काश्मीर	१३०९८६	२३१०६९
केरल	२६२४११	१११९०४
पञ्जाब	८३६३१९	३११५४६
राजस्थान	६११९०८	२०५९१८
सिन्ध	१०७६३	१२१०२
तामिलनाडु	३३०४०७३	१६५७४७२
युक्तप्रान्त	२२४९०१३	७९६९९९
उड़ीसा	१२४७९६	४४३३७
कुल जोड़	१२५५९५९४	५४९९४८३

घीका उत्पादन और व्यवसाय

इस समय भारतवर्षमें प्रति वर्ष १०० करोड़ रुपयेका घी उत्पन्न होता है। इस देशमें दूध और दूधसे बननेवाली अन्यान्य चीजोंकी बिक्रीसे जितना रुपया मिलता है, उक्त रकम उसका तृतीयांश है। हमारे देशमें प्रति वर्ष ७० करोड़ मन दूध उत्पन्न होता है। इसमें ३६ करोड़ मन दूध घी तैयार करनेके काममें आता है और उससे २ करोड़

३० लाख मन घी तैयार होता है। इस देशमें दही जमाकर और उसे मथकर मक्खन निकाला जाता है। फिर मक्खनसे घी तैयार होता है। इस प्रणालीसे घी तैयार करनेमें दूधका बहुत कुछ अंश नष्ट हो जाता है। और घी भी अधिकतर बढ़िया नहीं होता। ऐसी अवस्थामें एक ओर घी तैयार करते समय दूधको बर्बाद होनेसे बचाने और घीकी कालिटीको और भी बढ़िया बनानेके उद्देश्यसे बङ्गलोरकी इम्पीरियल डेयरी इन्स्टीट्यूटने दूधमें साइट्रिक एसिडकी कुछ बूंदें डालकर मक्खन बनाने और उससे घी तैयार करनेकी एक सरल प्रणालीका आविष्कार किया है। इसके सिवा इन्स्टीट्यूटने बिना मक्खन बनाये केवल दूधसे ही सीधे घी तैयार करनेका भी एक तरीका निकाला है। इससे यह आशा की जाती है कि इन तरीकोंका देशमें प्रचलन हो जानेसे घी-व्यवसाय विशेष लाभजनक होगा, इसमें सन्देह नहीं।

भारतके बाजारोंमें कुनैन

यह बात अच्छी तरह मान ली गयी है कि भारतके मले-रिया पीड़ित व्यक्तियोंके लिए कुनैनसे बढ़कर दूसरी महत्त्वपूर्ण औषधि नहीं है। इसलिए यदि कुनैन अच्छी किस्मकी न हो या उसमें मिलावट कर दी जाय, तो यह बात सर्व-साधारणके हितमें बहुत ही हानिकारक सिद्ध होगी। पिछले दो सालके अन्दर कलकत्तेकी बायोकेमिकल स्टैण्डर्डइजेशन लेबोरेटरीने बाजारमें बिकनेवाली बहुत-सी दवाओंकी जांच की है। इसी सिलसिलेमें कुनैनके १२५ नमूनोंकी भी परीक्षा हुई है और यह प्रमाणित हुआ है कि भारतमें आजसे ३० वर्ष पहले अच्छी कुनैन न मिलनेकी जो शिकायत थी, वह अब तक नहीं मिट सकी और बाजारोंमें अब भी पहलेकी ही तरह बहुत ही घटिया किस्मकी कुनैन बिकती है। उक्त लेबोरेटरीने जिन नमूनोंकी जांच की है, वे ब्रिटिश भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंसे मंगाये गये थे। इन नमूनोंमेंसे केवल २६.४ प्रतिशत ही ठीक निकले और उनके डिब्बोंके लेबलोंपर जो दावे किये गये थे, वे ठीक उतरे, किन्तु बाकी सभी निकम्मे साबित हुए।

परिणामतः लेबोरेटरीने भारतके बाजारोंमें बिकनेवाली दवाओंपर सरकारी नियन्त्रण रखनेकी आवश्यकता बत-लायी है।

जापानका कृत्रिम रेशम

सन् १९२८ में जापानने संसारके विभिन्न देशोंमें ८३ लाख २८ हजार ९३९ येन (एक येन ७९ रुपयेका होता है) का १ करोड़ ३० लाख वर्गगज कृत्रिम रेशम भेजा था। १९३३ में ७ करोड़ ७३ लाख ६९ हजार ६९९ येनके मूल्यका २६ करोड़ वर्गगज कृत्रिम रेशम जापानसे बाहर भेजा गया। १९३५ में १२ करोड़ ८३ लाख ६० हजार येनका ४२ करोड़ ४१ लाख ९२ हजार ९९६ वर्गगज, १९३७ में १९ करोड़ ४८ लाख ६७ हजार ३८४ येनका ४२ करोड़ ९१ लाख २८ हजार वर्गगज भेजा गया।

१९२८ में जापानसे बाहर भेजे जानेवाले कृत्रिम रेशमके तिहाई भागका खरीदार भारतवर्ष था। १९३३ से भारत-

वर्ष जापानी कृत्रिम रेशमका प्रधान खरीदार हो गया है। १९२८ में जापानसे भारतवर्षमें १३ लाख १८ हजार ९४२ येनका १८ लाख ४९ हजार वर्गगज कृत्रिम रेशम आया था, १९३३ में हमारे देशने १ करोड़ ७६ लाख ९३ हजार येनका ६ करोड़ २० लाख वर्गगज कृत्रिम रेशम जापानसे खरीदा था और १९३७ में ३ करोड़ २४ लाख ९६ हजार येनका कृत्रिम रेशम आया था। इधर हालमें ही हमारे देशमें भी कृत्रिम रेशमके कारखाने खुले हैं और आशा की जाती है कि भविष्यमें और भी खुलेंगे। यदि देशमें इसी प्रकार कृत्रिम रेशम तैयार होने लगेगा और देशवासी उसे अपनाने लोंगे, तो शीघ्र ही इस मदमें भारतसे जापान जानेवाले लाखों रुपये देशमें रह जायें और हजारों आइमियोंकी रोजी चले।

पेशाब के भयङ्कर दर्दों के लिये
एक नया और आश्चर्यजनक ईजाद ! याने—

सुजाक (गनोरिया) की हुक्मी दवा

डा० जसानीका
जगत्-विख्यात



नक्कालोंसे सावधान !

खरीदने से पहले दवाका नाम 'गोनोकिलर' और मुर्गा छाप सीलबन्द पैकेट देख लीजिये।

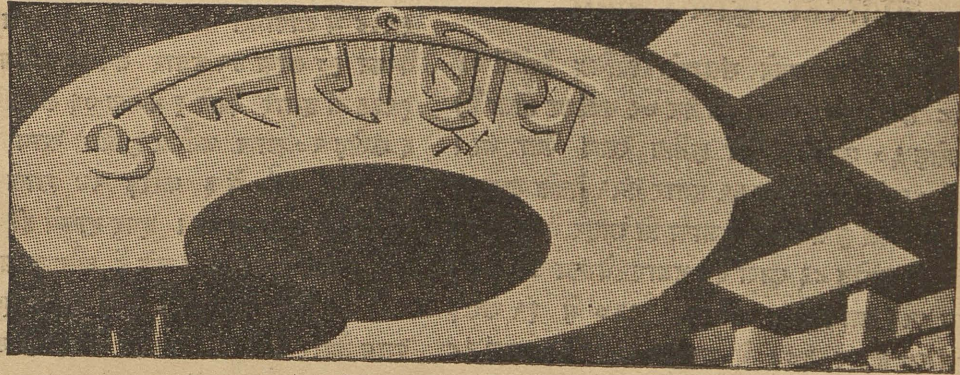
‘गोनोकिलर’ (रजिस्टर्ड)



चाहे जैसा पुराना या नया प्रमेह या सुजाक, पेशाबमें मवाद आना, जलन होना, पेशाब रुक-रुककर या बूंद-बूंद आना, मूत्राशयके अन्दर घाव या सूजन होना, स्वप्नदोष और धातु-क्षीणता औरतों तथा मर्दोंको इस किस्मकी तमाम भयंकर बीमारियोंको “गोनोकिलर” जड़से नष्ट कर देता है।

मूल्य ५० गोलीकी शीशी ३) रुपये। डाक खर्च अलग।

एकमात्र बनानेवाला—डा० डी० एन० जसानी, (वि.) बिठूरभाई पटेल रोड, बम्बई नं० ४



युद्ध और अमेरिकाके भूतपूर्व प्रेसिडेण्ट

अमेरिकाके भूतपूर्व प्रेसिडेण्ट हर्बर्ट हूवरने 'अमेरिकन मैगजीन'में एक लेख लिखकर अपने देशवासियोंको सावधान किया है कि यूरोपकी राजनीतिसे वे अपनेको अलग रखें, और स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि अमेरिकाको युद्धमें भाग नहीं लेना चाहिए। इसके कारणोंका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है कि इस प्रकारके युद्धमें भाग लेनेका अर्थ होगा अमेरिकाके लाखों युवकोंका बलिदान करना, फिर २५ सालोंके लिए राष्ट्रको दरिद्रावस्थामें डालना और सम्भवतः एक शताब्दीके लिए बौद्धिक और आध्यात्मिक स्वाधीनताको दबा देना।

ऐसा भी सम्भव है कि हमें युद्धमें पञ्च बननेकी आवश्यकता हो। लेकिन अगर हम इसमें कूद पड़ेंगे, तो हमारे लिए पञ्च बनना असम्भव हो जायगा। पिछले युद्धके बाद राष्ट्रोंने हमारा ऋण न चुकानेके लिए सङ्गठन करना शुरू कर दिया था। उस समय उन्होंने पैसा चुकानेसे इनकार किया, लेकिन इसके बाद ही लाखों दूसरे-दूसरे कामोंमें धन लगानेके लिए वे तैयार हो गये। मेरे इन घटनाओंका स्मरण दिलानेका मतलब यह है कि हमें फिर ऐसा न करनेके लिए सावधान रहना चाहिए।

तीन भारी खतरे हैं, जो हमें युद्धकी ओर घसीट सकते हैं:—

(१) विदेशी प्रचार, जो हमें उत्तेजना भरकर हमारी मनोवृत्तिको युद्धकी तरफ झुका सके।

(२) हमारे ही अफसरोंके उपदेश और प्रचार, जिनका ऐसे प्रचारमें विश्वास हो गया है।

(३) हमारी सरकार युद्धमें भाग लेनेकी बातको इनकार करती हुई भी ऐसे विवादोंको बढ़ा सकती है, जिनका अन्त युद्धमें भाग लेनेके निर्णयमें हो जाय।

कहा जाता है कि अगर हम युद्धमें भाग नहीं लेते, तो धरातलपरसे गणतन्त्रका नामोनिशान मिट जायगा और यदि डिक्टेटर्सको उठने दिया गया, तो गणतन्त्रात्मक राष्ट्रोंके विनाशके बाद अमेरिका ही उनका शिकार होगा। हमारा ख्याल है कि गणतन्त्रात्मक राष्ट्र इतने प्रबल और सुरक्षित हैं कि डिक्टेटर उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते और यदि इस दिशामें वे कुछ कर भी सकें, तो भी उनकी स्वयं ऐसी स्थिति हो जायगी कि हमारे देशके लिए पचीस साल तक वे कुछ भी कर नहीं सकते।

यह भी कहा जाता है कि हम युद्धमें भाग भले ही न लें, पर शाब्दिक सहायुभूतिके अतिरिक्त और भी कुछ प्रणालियां हैं, जिनसे हम गणतन्त्रकी सहायता कर सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि युद्ध और शाब्दिक सहायुभूतिके बीचका रास्ता अवश्य है, पर एक बार जब हम इस रास्तेको अपनायेंगे, तब इस बातकी गारण्टी क्या है कि हमारा विरोधी भी केवल उसी सीमा तक, उतनी ही दूरी तक और उसी रास्तेपर चलेगा? और उसका कुछ भी अधिक करना हमें युद्धमें डाल सकता है। उस समय हमारे जीवन-मरणकी समस्या उपस्थित हो जायगी।

इस परिस्थितिका एक दूसरा पहलू भी है। तानाशाहोंने अपने अधीनस्थ देशोंमें अपनी असहिष्णुता, अपने अत्याचारों और अपनी स्वेच्छाचारितासे जनताको इतना कुचल डाला

है कि वह स्वयं विद्रोह करेगी और तानाशाहोंका अपने देशोंमें ही पतन होगा।

और हम अगर युद्धमें भाग लेंगे, तो बिना तानाशाही प्रणाली अपनाये हमें सफलता नहीं मिल सकती। इस प्रकार गणतन्त्रकी रक्षामें हम अमेरिकन नागरिकोंकी स्वाधीनता और अपनी ही गणतन्त्र प्रणालीको खो देंगे। ऐसी दशामें अपनेको खाकर हम विश्व-शान्तिकी स्थापना नहीं कर सकते। इसलिये हमें अपने देशमें स्वार्थानताकी ज्योति जगाये रखना है। हमें इसी प्रकारकी नीति अपनानी है, जिससे हमें अमेरिकन युवकोंको यूरोपीय युद्धमें न भेजना पड़े।

रूस क्या आदर्शसे गिर गया ?

पिछले कुछ दिनोंसे अन्तर्राष्ट्रीय मसलोंमें रूसकी गति-विधिको लेकर तरह-तरहकी टीका-टिप्पणियाँ की जा रही हैं। रूसपर अनियोग लाया जाता है कि उसने नाजीवाद-जैसे प्रतिपत्ति सिद्धान्तके विकसित होनेके लिए दक्षिण-पूर्व यूरोपमें अवसर दिये हैं, तथा कितने ही स्थलोंपर स्वयं कब्जा जमाकर वह अपनी अन्तर्राष्ट्रीयतासे च्युत हो गया है और उसकी भी अवसरका उपयोग करने तथा रूसके राष्ट्रीय विकासकी उन्नति करनेकी नीति हो गयी है। इस सम्बन्धमें 'नोवा या रसिया' नामक पेरिसके पाक्षिक रूसी पत्रमें अलेक्जेंडर कोरेन्सर्कने एक लेख लिखा है, जिसमें उसने इस समयकी रूसी विचार-धारापर प्रकाश डाला है। उसने लिखा है :—

इस समय अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिजपर रूसका एक महान् राष्ट्रके रूपमें उदय हुआ है। हम चाहे इस बातको पसन्द करें या न करें, इस तथ्यसे हम इनकार नहीं कर सकते कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंपर रूसकी आवाजका आज बहुत महत्त्वपूर्ण मूल्य हो गया है।

लेकिन इस शक्ति-समूहके साथ-साथ क्या रूस अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिके आदर्शसे गिर गया है। क्या उसने भी लूट-खसोटकी अन्तर्राष्ट्रीय नीति अपनायी है ?

न, रूस ऐसी कोई बात नहीं करने जा रहा है, बल्कि धीरे-धीरे वह विश्व-क्रान्तिकी नीति अप्रसर करता जा रहा है। उसके प्रतिपत्ति होनेकी आशङ्का ही व्यर्थ है। क्योंकि पिछले काफी दिनोंसे पश्चिमके प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्रोंने इस

बातको लगातार महसूस किया है कि फैसिस्ट शक्तियोंका प्रभावशाली विरोध करनेके लिए रूसकी सहायता आवश्यक है। रूमानिया और पोलैण्डकी रक्षाका आश्वासन देनेके बाद उन प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्रोंका यह विश्वास रहा है कि इस आश्वासनकी पूर्तिके लिए यह आवश्यक है कि रूसकी सहायता इसके लिए ली जाय। उनका विश्वास रहा है कि यूक्रेन, काला सागर और काकसससे होकर जर्मनी रूसमें प्रवेश करना चाहता है, इसलिए रूस स्वभावतः उसे रोकनेके लिए संयुक्त मोर्चेमें सम्मिलित हो सकता है।

लेकिन स्टैलिनका दृष्टिकोण और ही कुछ है। उसका ख्याल है कि जर्मनी मध्य यूरोप और बालकन देशोंपर प्रभाव जमानेके लिए काफी दिनोंसे लालायित है, अतः पोलैण्डको लेकर वह ऐसा उलझ जायगा कि यूक्रेनके लिए पहुँचना उसके लिए आसान नहीं होगा। जर्मनीसे उसे किसी तात्कालिक खतरेकी आशङ्का नहीं। इसीलिए ब्रिटेन और फ्रान्स जब इस शान्तिके मोर्चेके लिए व्यग्र हो रहे थे, तब रूस अपनी सहायताके लिए मनमाना मूल्य मांगने लगा। इसके लिए हम यह कहनेसे बाज नहीं आ सकते कि स्टैलिनने अपनी अनोखी कूटनीतिज्ञताका परिचय दिया है।

लन्दन, पेरिस और मास्कोमें जो समझौतेकी चर्चा चली, उसमें स्टैलिनको शुरूसे ही प्रधान महत्त्व मिल गया। रूससे समझौता करनेके लिए जोर डाला जाने लगा और मास्कोसे निराशाजनक समाचारोंके आते ही दोनों देशोंमें हाथ-तोला-सा मचने लगा।

रूसके वैदेशिक सचिव मो० मोलोटोवने कहा है :—
“आक्रमणोंका विरोध करनेके लिए जिस किसी संयुक्त मोर्चेका प्रयत्न किया जायगा, उसमें रूसको प्रमुख स्थान देना ही होगा। यूरोपके भाग्यका निर्णय बहुत कुछ स्टैलिनके हाथमें है और यूरोपपर रूस जिस रूपमें प्रभाव डाल सकेगा, वह इस बातका निर्णायक है कि रूसने वस्तुतः अपने अन्तर्राष्ट्रीय आदर्शका परित्याग कर दिया है अथवा नहीं।”

रूसका विश्वास है कि दूसरा साम्राज्यवादी युद्ध अन्तमें वर्गयुद्धका रूप धारण कर लेगा और इसका परिणाम कम्युनिज्मके लिए बड़ा हितकर होगा। इसके साथ ही सोवियटकी आन्तरिक अवस्था भी इस प्रकारकी परिस्थितियोंके लिए कारण उत्पन्न करती जा रही है। रूसी किसानोंमें एक नया

जागरण आया है और उनकी संस्थाओं द्वारा होनेवाले प्रयत्नों में कोई भी देख सकता है कि उन्होंने अधिकारियों पर इस बातके लिए सदा दबाव डाला है कि वे प्रजातन्त्रात्मक भावनाओंको जागृत रखें और यूरोपीय प्रश्नों पर बोलते समय वे गणतन्त्रकी भावनाओंको प्रकाशित करनेवाली शब्दावलीका प्रयोग करें।

स्टैलिन वर्षोंसे अपने भाषणोंमें इस बातको स्पष्ट करता आ रहा है कि पूंजीवादी प्रणाली नष्ट होती जा रही है और पूंजीवादी प्रणाली द्वारा सञ्चालित गणतन्त्र भी पतनकी ओर घसिते जा रहे हैं। फैसिज्म इसके पतनकी ओर दूसरा कदम है।

जब तथाकथित गणतन्त्रोंका फैसिज्मकी ओर झुकाव होता है, तब इससे जनताको अन्तिम रूपसे कम्यूनिज्मकी ओर झुकनेकी प्रवृत्ति होती है और इसके साथ ही कच्चे माल तथा बाजारोंके लिए जो सङ्घर्ष होता है, उसमें इन प्रवृत्तियोंका रूप और स्पष्ट हो जाता है, जिसकी परिणति विश्व-युद्धमें तथा परिणाम विश्वकी नयी व्यवस्थाके रूपमें दिखाई पड़ता है।

केमलिनमें दो साल पहले कहा गया था कि “पूँजीवादी दुनिया अलक्ष्य गतिसे साम्राज्यवादी युद्धकी ओर घसितती जा रही है। और १९३८ में इस युद्धका प्रारम्भ भी हो गया है। और तभीसे रूस लेनिनके शब्दोंमें ‘विश्व-क्रान्ति’के दूसरे अवसरकी ताकमें बैठा है। सामूहिक सुरक्षाके सिद्धान्तके माननेवाले लिटविनाफकी जगह मोलोटोवकी नियुक्ति भी इसी दिशामें एक प्रयत्न है। स्टैलिन इस प्रकारकी कूटनीतिक लड़ाईमें विश्वास करता है। स्पेनको सन्देश देते हुए उसने कहा था, “पूँजीवादके सङ्घर्षमें स्वयं मिट जानेके पहले तक वह गोलाबारूकसे दूर ही रहेगा।”

जार्ज बर्नार्ड शाने रूस-जर्मन सम्बन्धपर कहा था कि हिटलर स्टैलिनकी मुठ्ठीमें आ गया है और अगर रूसने बाधा न डाली होती, तो कौन कह सकता है कि पोलैण्डके पतनके बाद हिटलर किस रूपमें किस तरफ बढ़ता। इन घटनाओं और मनोवृत्तियोंकी रोशनीमें ही रूसी विचार-धाराका अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर करना आवश्यक है।

ब्रिटेन-फ्रान्स-तुर्की-सन्धि

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिके उलझ जाने तथा मध्य और दक्षिण-पूर्व यूरोपमें अनेक जटिल सम्भावनाओंके उत्पन्न हो जाने-

के कारण टर्कीके साथ रूस तथा ब्रिटेन और फ्रान्स समझौतेकी फिक्रमें थे, और कई राजधानियोंमें इस प्रश्नको लेकर कूटनीतिके युद्ध चल रहे थे, अन्तमें ब्रिटेन और फ्रान्सकी विजय हुई है। ब्रिटेन, फ्रान्स और तुर्कीके बीच जो सन्धि हुई है, वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिके लिए उसका बहुत बड़ा महत्त्व है। यूरोपमें जो दूसरा महायुद्ध छिड़ गया है, जिसके और भी व्यापक एवं जटिल हो जानेकी आशङ्का की जाती है, उसमें तुर्कीके साथ ब्रिटेन और फ्रान्सकी सन्धि मित्र-राष्ट्रोंके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। सन्धिकी जो शर्तें विगत १९ अक्टूबरको प्रकाशित हुई थीं, वे ये हैं :—

१—तुर्कीपर आक्रमण होनेकी अवस्थामें ब्रिटेन और फ्रान्स उसकी सहायता करेंगे।

२—आक्रमणको लेकर भूमध्य-सागरमें यदि तुर्कीपर ब्रिटेन और फ्रान्सको युद्धमें शामिल होना पड़ा, तो पारस्परिक सहायता की जायेगी।

३—रूमानिया और यूनानको रक्षा-सम्बन्धी जो आश्वासन ब्रिटेन और फ्रान्सने दिया है, यदि उसके कारण मित्र-राष्ट्रोंको युद्धमें शामिल होना पड़ा, तो तुर्की उसकी सहायता करेगा।

४—यदि किसी यूरोपियन राष्ट्र द्वारा ब्रिटेन और फ्रान्सको ऐसे युद्धमें शामिल होना पड़े, जिसपर सन्धिकी १ और २ शर्तें लागू न होती हों, तो तीनों राष्ट्र परामर्श करेंगे और कमसे कम तुर्की दोनों राष्ट्रोंके प्रति सहभावपूर्ण तटस्थता रखेगा।

५—यदि किसी ऐसे देशपर आक्रमण हो, जिसकी सहायता करनेका वचन तीनोंमेंसे किसीने दिया हो, तो परिस्थितिपर परामर्श किया जायेगा।

६—यह सन्धि किसी भी राष्ट्रके विरुद्ध नहीं की गयी है।

७—सन्धिकी शर्तें इस प्रकार हैं कि चाहे अलग फ्रान्सका प्रश्न हो अथवा ब्रिटेनका, तुर्कीपर वे लागू हैं।

८—सन्धिकी शर्तोंके अनुसार यदि तीनों युद्धमें हों, तो वे अलग-अलग सलह नहीं करेंगे।

९—सन्धि १९ वर्षोंके लिए है और यदि इस अवधिके समाप्त होते ही रद्द न कर दी गयी, तो आगामी पांच वर्षोंके लिए और लागू रहेगी।

इसमें यह भी व्यवस्था है कि तुर्की किसी ऐसे कार्यमें हाथ नहीं बंटायेगा, जिससे उसे सोवियट रूसके खिलाफ अस्त्र उठाना पड़े।

जेक आत्मा अभी भी स्वाधीन है

जेकोस्लोवेकियापर यद्यपि नात्सियोंने अधिकार कर लिया है, पर उनकी आत्मापर उनका अधिकार नहीं हो सका है, यह प्रमाणित करनेवाली अनेक घटनाओंके समाचार समय-समयपर मिलते रहते हैं। जेक सेनाकी विद्रोही भावनाओंको देखकर जर्मन गुप्तचर संस्था गेस्टापोके गुप्तचरोंने उन्हें तड़कना छोड़ दिया है और उन्हें मनुष्य बनाये रखनेके लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं, पर उन्होंने नात्सियोंके प्रभुत्वको अपने ऊपर माननेसे इनकार कर दिया है। अभी हालमें जेकोस्लोवेकियाके नागरिकोंमें गुप्त रूपसे एक पर्चा वितरित किया गया था, जिसका कुछ अंश यहां दिया जाता है। पर्चेका उद्देश्य स्वतः स्पष्ट है :—

“तुम्हारी सच्ची सरकार तुम्हारे प्रति शुभकामनायें प्रकट करती है और विश्वास करती है कि एकतामें तुम्हारा दृढ़ विश्वास है। तुम आत्मसमर्पण न करना और सदैव स्वतंत्रताकी ताकमें सङ्गठित बने रहो। जिस सेनाने अधिकार जमा रखा है, उसके लिए अत्यावश्यक हुए बिना कुछ भी न करो।

अपने देश, झण्डे, सिद्धान्त और सरकारी चिह्नोंके प्रति सम्मान रखो।

भद्रतापूर्वक विदेशियोंको बिना खिताबोंके केवल नामसे सम्बोधित करो— उदाहरणार्थ हर हिटलर आदि।

तुम्हें प्रदर्शनोंमें सम्मिलित ही होना पड़े, तो इस प्रकार भाग लो, जिससे उसके प्रति तुम्हारा आन्तरिक स्नेह न प्रकट हो।

चुपचाप जन-गणना कर डालो और यह गणना जर्मनोंकी गणनाके पहले हो जाय।

जर्मन फौजके आते-जाते अथवा उसके प्रदर्शनोंके समय उसमें कोई दिलचस्पी न दिखाओ। उनके प्रति केवल उतनी ही सभ्यता दिखाओ, जितनी भद्रताके कारण किसीके लिए भी आवश्यक है।

नात्सियों द्वारा जो कुछ भी प्रदर्शन और घृणित अत्याचार हों, उनके चित्र चुपके-चुपके लेते रहो। अपने देश-द्रोहियों तथा नात्सियोंके प्रदर्शनोंके प्रति दिलचस्पी रखनेवालोंके चित्र अत्यन्त आवश्यक हैं।

स्वास्थ्य, अर्थशास्त्र और सांस्कृतिक विषयोंपर व्याख्यान देनेके बहाने एकत्र होकर देशभक्तिको उभाड़नेवाले व्याख्यानोंका प्रबन्ध करो। थियेट्रों, सिनेमा-घरों और सामाजिक उत्सवोंपर भी निजी बातचीतके दौरानमें एकता और देशभक्ति सम्बन्धी बातें करनेसे न चूको।

विदेशी अखबारोंको देखते रहो। और विदेशी समाचारोंको रेडियोपर भी धुनते रहनेका प्रयत्न करो।

ऐसे विदेशियोंको उनके नाम और पते-ठिकानेके साथ नोट कर लो, जिन्होंने विश्वासघात किया है।

रक्षात्मक और आक्रमणात्मक युद्धके लिए जिन कलाओंकी आवश्यकता है, उन्हें सीखते और उनका अभ्यास करते रहो। त्यागके लिए आवश्यक है कि तुम अपने स्वास्थ्य, चातुरी, और सतर्कताको कायम रखो। सैनिक व्यायाम-तो घोर आवश्यक है। लुटेरोंसे सावधान रहो।

सभी सड़कोंके लिए प्रतिनिधियोंको ठीक रखो, जो एक ही जगह काम करनेके लिए किसी समय भी तैयार रहें।

नात्सीवाद और कम्युनिज्म एक ही हैं?

कम्युनिज्मके विरुद्ध पैक बनानेवाले हिटलरके स्टैलिनसे समझौता करनेके बाद ‘न्यूज रिव्यू’ में हेनरी चेम्बरलेनने लिखा है कि वास्तवमें नात्सीवाद और कम्युनिज्म एक ही हैं। उसने लिखा है :—

जोसेफ स्टैलिन, एडल्फ हिटलर और बेनितो मुसोलिनीमें इतनी अधिक समानता है, जितनी और किसीमें नहीं है। अमेरिका तथा दूसरे देशोंके कम्युनिस्ट मास्कोके इशारेपर फैसिज्मके विरुद्ध मोर्चा बनानेके पक्षपाती हैं और उधर फैसिस्ट कम्युनिज्मके ; पर वे दोनों ही गणतन्त्रात्मक आदर्शों एवं स्वाधीन विचार-धाराके विरुद्ध एक समान ही हैं।

जर्मनीके राष्ट्रीय साम्यवादियों तथा रूसके कम्युनिस्टोंकी पार्टियां दूसरी पार्टियोंको देखना भी नहीं चाहती और दोनों ही जैसे शासन करनेके लिए ही उक्त देशोंमें स्थापित हुई हैं।

जर्मनीमें हिटलरके क्रूर कृत्योंकी कहानियां सैकड़ों हैं, तो स्टैलिनके हाथ भी रक्तस्त्रोत हैं।

जर्मनीमें पूंजीवादको आश्रय मिला है, तो रूसमें भी व्यक्तिगत सम्पत्तिके रूपमें न सही तो सरकार द्वारा दिये जानेवाले पुरस्कारों तथा नौकरियोंके असमान वेतनोंमें यह भाव परिलक्षित होता है।



सम्मेलनके अध्यक्ष वाजपेयीजीका भाषण

काशीमें होनेवाले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अठाइसवें अधिवेशनके अध्यक्ष पण्डित अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयीने भाषाकी शैली आदिके सम्बन्धमें निम्न विचार प्रकट किये :-

हिन्दी भाषाकी अनेक शैलियां हैं। कोई संस्कृतविशिष्ट, कोई संस्कृत, हिन्दी और फारसी विशिष्ट और कोई तद्भव शब्दोंसे भरी हुई है। यह अन्तर शिक्षा और लिखने-बोलनेके निवास-स्थानके कारण होता है। जो संस्कृत या बंगला पढ़े होते हैं, उनकी हिन्दीमें तत्सम शब्दोंकी संख्या बहुत अधिक होती है, जैसे स्वर्गीय पण्डित गोविन्दनारायणजीकी भाषामें थी। जो संस्कृतके साथ उर्दू, फारसी पढ़े होते हैं, उनकी भाषामें संस्कृतके शब्दोंके साथ अरबी, फारसी शब्द ऐसे जमे होते हैं, जैसे लोहेके खम्भोंपर सीमेण्ट देकर कड़करीठ बनायी जाती है। ऐसी भाषा स्वर्गीय पण्डित पद्मसिंह शर्मा लिखते थे। तीसरी शैलीमें वह भाषा रखी जानी चाहिए, जिसमें तद्भव शब्दोंकी विपुलता हो और प्रचलित संस्कृत, फारसी, अरबी शब्दोंका भी पुट दिया गया हो। ऐसी भाषा स्वर्गीय लाला धनपतराय उर्फ मुंशी प्रेमचन्द लिखते थे। तीनों छलेखक अपनी-अपनी शैलीके आचार्य कहे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त भी शैलियां हैं। एक गोलोकवासी पण्डित किशोरीलाल गोस्वामीकी उर्दू शैली है। दूसरी गोलोकवासी बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी है, जिसमें सभी भाषाओंके सहज शब्दोंका समावेश होता है। तीसरी शैली कश्कतेमें हिन्दी पत्रोंके प्रचारक "उचित्तवक्ता"-सम्पादक स्वर्गीय

पण्डित दुर्गाप्रसादजी मिश्रकी है, जो "साबित" जैसे अरबी शब्दको संस्कृत रूप देकर 'साव्यस्त' लिखा करते थे।

हिन्दीके व्याकरणके विषयमें दो तरहकी शिकायतें सुनी जाती हैं। एक तो हिन्दी भाषी तथोक्त विद्वानोंकी ओरसे की जाती है और वह यह है कि व्याकरण इसको इतने नियमोंसे जकड़े देते हैं कि यह संस्कृत बनी जा रही है और दूसरी यह है कि हिन्दीका व्याकरण विशेषकर उसका लिङ्ग-प्रकरण बड़ा कठिन है, क्योंकि क्रिया-पदों तकमें घुस गया है। पहले प्रकारके सज्जनोंसे मेरा यह कहना है कि आपने व्याकरणकी सत्ताका विचार किये बिना ही यह आपत्ति उठायी है। व्याकरण तो भाषा नहीं बनाता, उसका काम यह बताना है कि भाषामें जो अमुक बात है, उसका कारण अमुक है। भाषा बनानेका काम तो लोगोंका है और व्याकरणका काम केवल इतना ही है कि उसके लिए वह काम निर्देश कर दे।

दूसरी तरहकी शिकायत जो लोग करते हैं, उनमें कुछ तो वे हिन्दीभाषी हैं, जिन्होंने अच्छे भाषावेत्ताओंकी सङ्गति नहीं की है अथवा जिन्हें व्याकरणके नियम याद नहीं रहते। और कुछ अहिन्दी-भाषी हैं, जिन्हें गोरख-धन्या जान पड़ता है। जिन भाषाओंमें दो ही लिङ्ग होते हैं, उन सबमें लिङ्ग-निर्णयका काम कुछ कष्टसाध्य होता ही है।

अहिन्दी-भाषियोंको लिङ्ग-निर्णयके सम्बन्धमें इतना ही जान लेना बस है कि संस्कृतमें जो पुलिङ्ग वा नपुंसक-लिङ्ग होते हैं, वे हिन्दीमें बहुधा पुलिङ्ग होते हैं और स्त्रीलिङ्ग प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यदि कोई अहिन्दी लेखक इस

नियमको याद रखेगा और वह हिन्दी नियमके विरुद्ध लिखेगा भी, तो दोषी न समझा जायगा। मेरी समझसे अहिन्दी भाषियोंके लिए इससे अधिक सुभीता हम नहीं दे सकते।

जिन लोगोंको 'ने' के प्रयोगपर आपत्ति है, उनका तर्क है कि पहले यह प्रयोग नहीं था, अब होने लगा है, इसलिए इसे हटा देना चाहिए। यह सच है कि 'ने' चिह्नका प्रयोग पहले बहुत कम होता था, परन्तु 'ने' न रहनेपर भी कर्मणि प्रयोग रासोसे लेकर तुलसीकृत रामायण तकमें पाया जाता है। हमारी हिन्दी शौरसेनी प्राकृतकी इस विशेषताको छोड़ नहीं सकती। भाषा सीखनेमें किसी प्रकारकी और उलझन हो, जिसका हमारी भाषाके मूल सिद्धान्तसे कोई सम्बन्ध न हो, उसे छलत्तानेके लिए हम सदा सन्नद्ध हैं। हां, मूल सिद्धान्तमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। अशुद्ध बोलने-वालोंको हम अधिकसे अधिक यही दण्ड देते हैं कि उनपर हंस लेते हैं। जो इससे बचना चाहेंगे, वे अवश्य ही शुद्ध भाषा बोलेंगे।

नाटकको विद्वानोंने दृश्य काव्य कहा है, परन्तु हिन्दीके नाटकोंमें ऐसे नहीं के बराबर या नहीं हैं, जो रङ्गमञ्चपर खेले जा सकें। सन् १९११ में दूसरे सम्मेलनके अवसरपर प्रयागमें जो नाटक देखनेका सौभाग्य हुआ था, उनसे जान पड़ता था कि हिन्दीमें नाट्यकलाकी उन्नति होगी। परन्तु खेदसे कहना पड़ता है कि निर्वाणोन्मुख दीपककी भांति वह झलक भी मिट गयी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके समय नाटक लिखे ही नहीं जाते थे, खेले भी जाते थे, परन्तु खेले जाने योग्य नाटकोंकी कमी उस समय भी थी।

रेडियो ब्राडकास्टिङ्गका काम लोगोंको संसारके समाचार देना है, क्योंकि प्रजाके धनसे उसकी व्यवस्था होती है। परन्तु देखा जाता है कि वह उत्तरकी देशी भाषाओंमें उर्दूको ही प्रशस्तता देता है, हिन्दीमें उसके प्रोगाम नहीं के बराबर रहते हैं। इसके अतिरिक्त उनकी उर्दू भी सहज नहीं होती, जिससे वे हिन्दी भाषियोंकी समझमें नहीं आते। आश्चर्य तो तब होता है जब वह उत्तर, पश्चिम आदि दिशाओंके नामोंको शुमाल, मगरिब जैसे अरबी नामोंसे याद करता है। आशा है, ब्राडकास्टिङ्गके व्यवस्थापक उस बहुजन समाजके हितका ध्यान रखेंगे, जो उनका खर्च चलाता है। ब्राडकास्टिङ्गकी भाषा सकलबोधगम्य होनेसे ही उसका उद्देश्य सिद्ध हो सकता है, यह बात भूलनी न चाहिए।

भारतके बाहर जो २५॥ लाख भारतवासी बसे हुए हैं, उनमें हिन्दीवालोंकी संख्या प्रतिशत ८९ से कम न होगी। हमने इन्हें भुला-सा रखा है और इसका फल यह हुआ कि हमारी इनके साथ जो दूरता है, वह और भी अधिक हो गयी है। जो भारतवासी कुली बनकर यहाँसे गये थे, उनमें तारा हिन्दी व ग्राम भाषायेँ बोलनेवालोंकी संख्या ही अधिक थी। परन्तु उनके जो पुत्र-पौत्रादि पैदा हुए, वे हिन्दी बोलना भूल ही न गये, बल्कि हिन्दी बोलनेमें उन्हें असमान बोध होने लगा और वे हिन्दीको 'कुशी लंग्वेज' (कुशी भाषा) कहने लगे! यों तो अन्य उगनिवेशांमें भी ऐसे हिन्दीवाले अधिक संख्यामें हैं, तथापि डच गायना, ब्रिटिश गायना, इनिडाड आदिके हिन्दी-भाषी लोगोंके उत्तराधिकारियोंकी संख्या बहुत अधिक है। इन्हें इनके पूर्वजोंकी भाषा और संस्कृतिकी शिक्षाकी अत्यन्त आवश्यकता है, अन्यथा कुछ दिनों बाद हम अपने इन बन्धुओंको बिल्कुल खो देंगे।

सम्मेलन का भाषी कार्यक्रम

आपने सम्मेलनकी उन्नतिके लिए एक दशवर्षीय योजना भी बतलायी, जो इस प्रकार है :—

१—हिन्दी-भाषी नामी विद्वानोंसे, जो अपने विषयके विशेषज्ञ हों, प्रार्थना की जाय कि वे आगे सम्मेलनसे कमसे कम ३ मास पहले एक ग्रन्थ सम्मेलनको भेंट करें। ऐसे मौलिक ग्रन्थोंकी संख्या १० से कम न हो। ये ग्रन्थ, सम्मेलन प्रकाशित करे और यदि सम्भव हो, तो सम्मेलनकी परीक्षाओंमें पाठ्य पुस्तक नियत किये जायं।

२—मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक उन्हीं ग्रन्थोंपर दिया जाय, जो सम्मेलनकी तिथिसे १५ महीनेके अन्दर प्रकाशित हुए हों।

३—योग्य विद्वानोंसे विविध विषयोंके कमसे कम दस ग्रन्थोंका भाषान्तर कराया जाय।

४—एक इंग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी तैयार करायी जाय, जिसमें वर्तमान अंगरेजीमें प्रयुक्त होनेवाले शब्द भी आ जायं। इसमें बंगला, मराठी, गुजराती, नैपाली, पञ्जाबी, उर्दू आदि भाषाओंकी डिक्शनरियोंसे भी सहायता ली जाय। ऐसी डिक्शनरीकी आवश्यकतापर मतभेद नहीं हो सकता।

५—हिन्दीके इतिहासका शोध कराया जाय। अभी तक जो इतिहास निकले हैं, वे अधूरे हैं। गद्यके इतिहासमें

Fort William College Journal से अच्छी सहायता मिल सकती है।

६—हिन्दीके प्राचीन ग्रन्थ पढ़ानेकी योग्यता रखनेवालोंका पता लगाया जाय और उनकी सहायतासे उनके सभाध्य संस्करण प्रकाशित किये जायें।

७—हिन्दीकी प्राचीन कविता—डिङ्गल और पिङ्गल, दोनोंके ज्ञाता खोज-खोजकर शिक्षा-कार्यमें नियुक्त किये जायें।

८—हिन्दी पठन-पाठनकी जो व्यवस्था शिक्षालयोंमें है, उसकी जानकारी प्राप्त की जाय और यदि कहीं त्रुटियाँ हों, तो उन्हें दूर करनेका प्रयत्न किया जाय। कलकत्तेके स्कूल-कालेजोंमें हिन्दी शिक्षाकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता, जिसके फलस्वरूप बी० ए० के बहुत कम परीक्षार्थी शुद्ध भाषा लिख पाते हैं। इस अवस्थाको सुधारनेकी अत्यन्त आवश्यकता है।

९—हिन्दीके ग्रन्थोंकी सूची बनायी जाय, जिसमें (अ) पुस्तकका नाम, (आ) लेखकका नाम, (इ) विषय, (ई) रचना-काल, (उ) मुद्रित या हस्तलिखित, (क) कहाँसे मिली, (ए) प्रतियाँ मिल सकती हैं, तो मिलनेका ठिकाना और (ऐ) दाम लिखे हों। लागत-मात्रपर यह सूची दे दी जाय।

१०—एक विद्वत् परिषद् बनायी जाय, जो समय-समय-पर हिन्दी भाषा, वर्णन (Spelling या हिज्जे) आदिके सम्बन्धमें विचार किया करे और जिसका निर्णय अन्तिम हो तथा जिसका आधार बोटोंकी अपेक्षा तर्क हो।

ग्रन्थ-लेखकोंको प्रणामी (Honorarium), अनुवादकोंको पारिश्रमिक, डिक्शनरीका काम करनेवालोंको वेतन, शोधकोंको वृत्ति, सूची बनानेवालोंको वेतन तथा ग्रन्थ-प्रकाशनके व्यय आदि कामोंके लिए बहुत बड़ी रकमकी आवश्यकता है। यह कहाँसे आवेगी, यह प्रश्न हमारे सामने है। हिन्दीका प्रत्यक्ष सम्बन्ध चार प्रदेशोंसे है। पञ्जाब, युक्त-प्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेशकी सरकारोंसे प्रार्थना की जाय कि ये सम्मेलनके कार्यमें सहायता करें। इसी प्रकार हिन्दी-भाषी राज्योंके नरेशोंसे प्रार्थना की जाय कि वे इस महान् कार्यमें पुण्यके भागी बनें। ग्वालियर और इन्दौर राज्य साहित्यिकोंको प्रोत्साहन देनेके लिए कुछ रकम हर साल दिया करते हैं। इससे भूयसी दक्षिणा-सी बाँटी जाती है,

इसलिए कोई ठोस काम नहीं होता। सभी हिन्दी राज्योंसे हमें यह कहना होगा कि हम साहित्यकी सृष्टि ही नहीं करते, शिक्षाके प्रचार और विस्तारमें लगे हुए हैं। इसलिए नरेशों, प्रदेशों, सेठ-साहूकारों, सबका कर्तव्य है कि धन देकर हमारे कार्यको अग्रसर करें। कुछ ही समय बाद सम्मेलन अपना कार्यक्रम चलानेके लिए अपने पैरोंपर खड़ा हो सकेगा। सम्मेलन राजनीतिक संस्था नहीं है, इसलिए हिन्दी और हिन्दी साहित्यकी उन्नति चाहनेवालोंको ही नहीं, शिक्षा-प्रेमियोंको भी इसकी सहायता करनी चाहिए।

स्वागताध्यक्ष मालवीयजीका भाषण

अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके २८ वें वार्षिक अधिवेशनके स्वागताध्यक्ष पं० मदनमोहन मालवीयने भाषण देते हुए कहा—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनको स्थापित करनेका श्रेय काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाको है। इसका पहला अधिवेशन १० अक्टूबर १९१० को हुआ था। हिन्दी साहित्य-के कार्योंमें प्रधान कार्य हिन्दीकी परीक्षा लेना तथा समस्त भारतमें हिन्दीके प्रचारके लिए प्रचारक भेजना है। सम्मेलन द्वारा कितने ही प्राचीन ग्रन्थोंका संग्रह किया गया है। इस समय देशके विभिन्न भागोंमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके पांच सौसे ऊपर परीक्षा-केन्द्र हैं। कुछ लोग ऐसे हैं, जो हिन्दुस्तानी पसन्द करते हैं। हिन्दी कहिये या हिन्दुस्तानी कहिए, लेकिन भाषाका स्वाभाविक विकास होने देना चाहिए। यह ठीक नहीं है कि हिन्दीमें जबर्दस्ती कठिन अरबी और फारसीके शब्द भरकर उसे हिन्दुस्तानी कहा जाय। हमें उर्दूसे बैर नहीं है। हम उर्दूकी उन्नति चाहते हैं, लेकिन हमें हिन्दीसे प्रेम है, हमारी हिन्दीमें मिठास है, यह बहुत प्राचीन भाषा है, भारतीय भाषाओंमें यह सबसे अधिक प्राचीन है, यह संस्कृतसे निकली है, जो संसारकी सब भाषाओंसे प्राचीन है और जिसमें ऋग्वेद चार हजार बरस पुराना ग्रन्थ है। स्वयं उर्दू भी हिन्दीसे ही निकली है। हमें अन्य भाषाओंके शब्द आवश्यकताके अनुसार हिन्दीमें लेने चाहिए, लेकिन यह कार्य स्वाभाविक ढङ्गसे होना चाहिए, हमें अरबी और फारसीके कठिन शब्द जबर्दस्ती हिन्दीमें नहीं लेना चाहिए।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और काशी नागरी प्रचारिणी सभाके सदस्य पूरी शक्तिके साथ

हिन्दी भाषा और नागरी लिपिका प्रचार करनेकी चेष्टा करेंगे। साथ ही हिन्दी भाषाके विरुद्ध जो तर्क उपस्थित किये जाते हैं, उन्हें भी दूर करनेकी चेष्टा करेंगे।

‘मधूलिका’के कविको पुरस्कार

हिन्दीके युवक कवियोंमें श्री रामेश्वर शुक्ल ‘अञ्जल’ने अपनी मर्मस्पर्शी कविताओं एवं सुन्दर कहानियोंसे अपना स्थान बना लिया है। ‘विश्वमित्र’में प्रकाशित उनकी सुन्दर रचनाओंके कारण विश्वमित्रके पाठक और भी नजदीकसे अञ्जलजीकी प्रतिभासे परिचित हैं। उन्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अञ्जलजीको उनकी मधुर कृति ‘मधूलिका’पर इस वर्ष २५०) रुपयेका ‘चक्रधर’ पारितोषिक प्राप्त हुआ है। ‘मधूलिका’ इस युवक कविकी कविताओंका सम्भवतः पहला संग्रह है, अतः इस प्रयासको इस प्रकार पुरस्कृत होते देख हमें और भी प्रसन्नता होती है। अञ्जलजीकी प्रतिभाके विकासका मण्डल काफी विस्तृत एवं उनकी उन्नतिकी सम्भावनायें काफी अधिक एवं प्रबल हैं, इसलिये हमें विश्वास है कि हिन्दीको उनसे और भी सुन्दर कृतियां मिलेंगी। हम कविको इस अवसरपर बधाई देते हैं।

सम्मेलनमें स्वीकृत प्रस्ताव

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके २८ वें अधिवेशनमें जो प्रस्ताव स्वीकृत किये गये, उनके द्वारा तांबे और चांदीके सिक्कोंपर नागरीको स्थान न देनेके कारण भारत-सरकारके प्रति असन्तोष प्रकट किया गया और फिर सरकारसे प्रार्थना की गयी कि वह सिक्कोंपर नागरीको स्थान दे। तीसरे प्रस्ताव द्वारा हिन्दी-भाषी प्रान्तोंकी सरकारों तथा अर्द्ध सरकारी संस्थाओंसे अनुरोध किया गया कि वे अपने दफ्तरों और कचहरियोंमें सबके समझने लायक भाषाका प्रयोग जारी करें। संयुक्तप्रान्तके बच्चोंको नागरी और फारसी दोनों लिपियोंका सीखना लाजमी करनेकी नरेन्द्रदेव कमेटीकी सिफारिशोंका विरोध चौथे प्रस्तावद्वारा किया गया। पांचवें प्रस्तावमें बिहारमें प्रकाशित रीडरों और ‘होनहार’ तथा ‘रोशनी’ नामक मासिक पत्रिकाओंकी भाषापर असन्तोष प्रकट किया गया और बिहार सरकारसे अनुरोध किया गया वह इस नीतिको त्याग दे। छठे प्रस्तावमें गत ५० वर्षोंमें हिन्दी-साहित्यकी जो उन्नति हुई है, उसपर सन्तोष प्रकट कर साहित्यिकोंसे उसी तरह साहित्य-सेवा करनेका अनुरोध किया गया।

स्थायी समितिसे अनुरोध किया गया कि हिन्दीपर होनेवाले आक्रमणोंका प्रतिकार किया जाय। सातवें प्रस्ताव द्वारा दिल्ली तथा अन्य विश्व-विद्यालयोंमें हिन्दी भाषाको स्थान देनेका अनुरोध किया गया। आठवें प्रस्तावमें बनारस राज्यकी शासन-समितिसे प्रार्थना की गयी कि राज्यकी सारी कार्रवाई हिन्दी भाषा और नागरी लिपि द्वारा की जाय। नवें प्रस्तावमें राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमें सम्मेलनकी नीति निर्धारित करनेके लिए सर्वश्री राजेन्द्रप्रसाद, पुरुषोत्तमदास टण्डन, बाबूराव पराङ्कर, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, रामचन्द्र शुक्ल, श्रीनारायण चतुर्वेदी और बाबूराम सकसेना, इन सात विद्वानोंकी एक कमेटी बनायी गयी। सन्त तुलसीदास फिल्म बनानेवाली रणजीत कम्पनीकी निन्दा तथा रेडियोंकी भाषाके सम्बन्धमें दसवां प्रस्ताव पास हुआ।

विभागीय परिषदें

सम्मेलनके साथ ही और भी कई विभागीय परिषदें हुईं। सुदर्शनजीके सभापतित्वमें कहानी-सम्मेलन हुआ। स्वागताध्यक्ष थीं श्रीमती शिवरानी देवी प्रेमचन्द। हिन्दीके कहानी-साहित्य और शैलीपर सभापतिका उपयोगी और प्रभावशाली भाषण हुआ। राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबूके सभापतित्वमें राष्ट्रभाषा परिषद् हुई। स्वागताध्यक्ष थे श्री लक्ष्मण नारायण गर्द। परिषद्में हिन्दी-हिन्दुस्तानीके झगड़ेपर काफी विचार प्रकट किये गये। अध्यक्षने अपने भाषणमें कहा कि हिन्दीको अगर हमें सिर्फ प्रान्तीय भाषा ही रखकर राष्ट्रभाषा बनाना है, तो हमें उदार होना पड़ेगा। नहीं तो हिन्दी-उर्दूके झगड़ेमें आज हमारी जो राष्ट्रभाषा है, वह भी नष्ट हो जायगी। इस वर्ष पुस्तक-व्यवसायियोंने भी श्री रामलोचनशरणके सभापतित्वमें पुस्तक-व्यवसायी सम्मेलन किया, जिसके स्वागताध्यक्ष थे श्री नन्दकिशोर भार्गव। साहित्य-परिषद्के सभापति थे निरालाजी और स्वागताध्यक्ष थे श्री रामचन्द्र शुक्ल।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहानके सभानेत्रित्वमें महिला-सम्मेलन हुआ। स्वागताध्यक्ष थीं श्रीमती कृपादेवी। सभानेत्रीने अपने भाषणमें कहा कि यह समानताका युग है। जीवनके प्रत्येक क्षेत्र—शिक्षा, समाज, राजनीति आदिमें स्त्रियां केवल आपसमें ही नहीं; किन्तु पुरुषोंके साथ भी समानताका दावा कर रही हैं। अभी तक स्त्रियोंमें शिक्षाका अभाव था।

इसलिए पुरुषोंको ही स्त्रियोंकी मनोभावनाओं, उनके हृदयके उद्वेगों, उनके प्रेम और विरह, उनकी आकांक्षाओं और अभयकी वाणी देनी पड़ी है। इसमें सन्देह नहीं कि यह कार्य उन्होंने आशातीत सफलतासे किया है। किन्तु अब स्त्रियाँ इस योग्य हो चली हैं कि वे अपने हृदयके गीतोंको अपने ही शब्दोंमें गा सकें। अब हमें अपनी मनोभावनाओंकी अभिव्यक्तिके लिए पुरुषोंकी लेखनीकी आवश्यकता नहीं रह गयी है।

सम्मेलनमें बिहारकी रीडरोंकी भाषाके विरुद्ध प्रस्ताव पास किया गया।

श्री माखनलाल चतुर्वेदीके सभापतित्वमें पत्रकार-सम्मेलन हुआ। श्री श्रीप्रकाश स्वागताध्यक्ष थे। समाज-शास्त्र परिषद् श्री नरेन्द्रदेवकी अध्यक्षतामें हुई। स्वागताध्यक्ष थे डा० परमात्माशरण। डा० गोरख प्रसादके सभापतित्वमें विज्ञान परिषद् और डा० भगवानदासके सभापतित्वमें दर्शन परिषद् हुई। दोनों परिषदोंके स्वागताध्यक्ष क्रमशः डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा और प्रोफेसर भीखनलाल आत्रेय थे। दर्शन परिषद्में एक प्रस्ताव पास किया गया, जिसके अनुसार साहित्य-सम्मेलनसे प्रार्थना की गयी कि वह दर्शन विषयक ऐसे ग्रन्थों-पर मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक दिया करे, जिनमें व्यावहारिक समस्याओंपर दार्शनिक दृष्टिसे विचार किया गया हो।

× × ×
अग्नि पूजक तथा अन्य कहानियाँ। अनुवादक और संग्रहकर्ता—श्री केशवदेव शर्मा। प्रकाशक भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद। सजिल्द मूल्य १)।

पुस्तिकाकी भूमिकामें अनुवादकने अपने दो शब्दोंमें लिखा है—आजसे कई वर्ष पूर्व मुझे अंगरेज कवियोंके कुछ सुन्दर प्रबन्ध-काव्योंको हिन्दी पाठकोंकी भेंट करनेकी इच्छा हुई थी। इसका कारण केवल यही था कि मुझे प्रबन्ध काव्यके प्रति एक विशेष आकर्षण है। इसलिए हिन्दीके जिन पाठकोंको अनुवादक महोदयकी भांति अंग्रेजी प्रबन्धकी ओर विशेष आकर्षण हो, उन्हें इस कहानी-संग्रहसे अवश्य मनोरञ्जन होगा। अनुवादकने कहानियोंको उनके असली रूपमें लिखा है, पर अनुवाद करनेमें पूरी स्वतन्त्रतासे काम

लिया है। अनुवाद सुन्दर हुआ है, भाषा भी सरल और वर्णनशैली सरस हुई है। इसमें टेनिसन-कृत 'इनौक आर्डन, शेक्सपीयर-कृत ओथेलो, सर वाल्टर स्कॉट-कृत 'लेडी आवाड लेक' टाम्स मूर-कृत फायर वरशिपर्स, वायरन-कृत पेरिसीना और टेनिसन-कृत 'डोरा' कहानियोंका संग्रह है। पुस्तककी छपाई सुन्दर है।

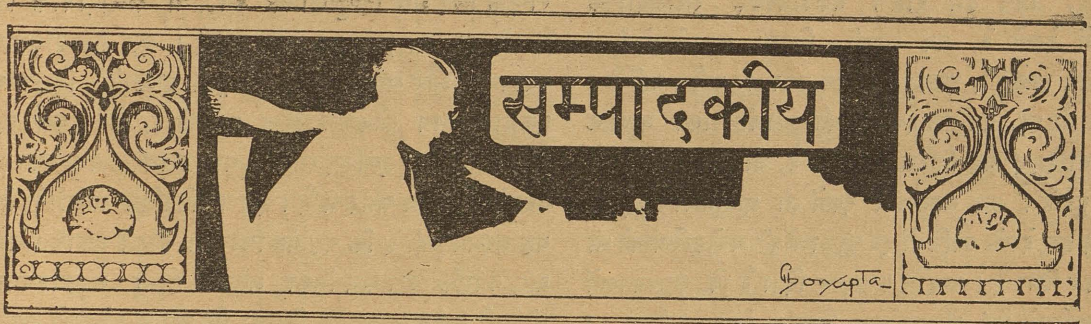
रानी भवानी। लेखक—श्री परिपूर्णानन्द वर्मा; प्रकाशक—पटना पब्लिशर्स, पटना। साइज—डबल क्राउन सोलह पेजी; मूल्य सजिल्द १=), सादी ॥=)।

यह एक छोटा-सा ऐतिहासिक नाटक है। आजसे कई वर्ष पहले जब बङ्गालपर मुर्शिदाबादके नवाबका शासन था, उनके मातहत नाटौर नामक एक छोटी-सी रियासत थी। वहाँके राजा बड़े खिलासी और फजूलखर्ची थे। उनकी पतिपरायणा पत्नी रानी भवानीने पतिको कुमार्गपरसे हटाकर सन्मार्गपर लानेकी बड़ी चेष्टा की, पर उसकी बात नहीं सुनी गयी, उल्टे उसपर बुरी तरह डांट-फटकार पड़ती। रमाकान्तके आचरणसे ऊबकर उनके चाचा दयारामने नवाबसे शिकायत कर उन्हें दण्ड दिलवानेका निश्चय किया। दयारामकी नवाबके दरबारमें बड़ी प्रतिष्ठा थी। रमाकान्त गद्दीसे उतार दिये गये और उनकी जाह्न उनके छोटे भाई देवीदासको राज मिला।

अब राज्यच्युत रमाकान्त और रानी भवानी दोनों अपने भाग्यको कोसते हुए इधर-उधर ठोकें खाते फिरते। उधर देवीदास गद्दीपर बैठते ही अपने भाईके समान ही अत्याचार करने लगा। वह दयारामकी भी कुछ परवा नहीं करता। रमाकान्त और रानी भवानीकी दुर्दशा देखकर दयारामको बड़ा दुःख हुआ और फिर प्रयत्न करके उन्हें राजगद्दीपर बैठाया।

इसी कथानकके आधारपर यह नाटक लिखा गया है। सरल, सुबोध भाषा, लिखने और पात्रोंके चरित्र-चित्रण करनेमें स्वाभाविकता लानेकी चेष्टा की गयी है। छपाई, सफाई अच्छी है।





ब्रिटेनके उद्देश्य और भारत

युद्ध और शान्तिकालीन ब्रिटेनके उद्देश्यके सम्बन्धमें कांग्रेस कार्य-समितिके उससे स्पष्टीकरणकी जो मांग की थी, भारतके वायसराय लार्ड लिनलिथगो तथा ब्रिटिश सरकारकी ओरसे सर सैमुएल होरने अपने वक्तव्योंमें उसपर काफी स्पष्ट शब्दोंमें प्रकाश डाला है। दोनों ही वक्तव्योंमें इस बातको दुहराया गया है कि भारतका अन्तिम ध्येय औप-निवेशिक स्वराज्य है और धीरे-धीरे उस लक्ष्यकी पूर्तिके लिए ब्रिटेन अग्रसर होगा। युद्धकालमें इस सम्बन्धमें किसी वैधानिक परिवर्तन सम्बन्धी प्रयत्नके लिए ब्रिटेन तैयार नहीं है। और युद्धके बाद परिस्थितियोंके अनुसार जो वैधानिक परिवर्तन वाञ्छनीय होंगे, वे किये जा सकेंगे।

उक्त घोषणाओंमें इस बातका भी उल्लेख है कि १९१९ की वैधानिक छुधारोंकी घोषणाकी भूमिकामें उल्लिखित लक्ष्य भारतका लक्ष्य है। पर भारतमें अल्पसंख्यकोंकी समस्याको लेकर जो स्थिति है, उसमें भारतकी राजनीतिक महत्त्वा-कांक्षाओंकी पूर्ति नहीं हो सकती।

उक्त दोनों वक्तव्योंकी भाषामें चाहे जो भेद हो, पर भाव दोनों ही का एक, और स्पष्ट है कि भारतको फिलहाल कुछ मिलने नहीं जा रहा है। ये वक्तव्य चाहे जितने भी दुर्भाग्यपूर्ण और निराशाजनक हों, इनकी स्पष्टता देशके लिए हितकर ही है—ऐसा हमारा ख्याल है। पिछले कुछ वर्षोंसे, जबसे नवीन विधानके अन्तर्गत तथाकथित प्रान्तीय स्वाधीनता कार्यान्वित हुई है, भारतीय राजनीति सम्बन्धी ब्रिटेनकी नीतिको लेकर इस देशमें काफी भ्रान्त धारणायें जमती जा रही थीं। यह धारणा इस देशकी महत्त्वा-

कांक्षाओंकी पूर्तिकी दिशामें हमारी शक्तियोंको निर्बल बना देनेवाली ही थीं। क्योंकि ब्रिटिश नीतिपर भरोसा करनेकी हमारी मनोवृत्ति बनती जा रही थी। देशमें उक्त वक्तव्योंकी प्रतिक्रिया जिस निराशामें दिखाई पड़ी है, उसके लिए हमारी उक्त भ्रान्त धारणायें काफी अंशोंमें जिम्मेदार हैं। इसीलिए हमारी भ्रान्त धारणाओंका निराकरण करनेवाले उक्त वक्तव्योंकी स्पष्टताकी हमने सराहना की है। देशके लिए यह आवश्यक था कि वह जाने कि वह आज कहाँ है और देशने जाना है कि १९१७ और १९३९ के भीतर दुनियाके नक्शेकी जब इतनी लकीरें बदल गयी हैं और दुनियाने एक नया चेहरा पाया है, तब भी यह अभाग्य देश आज १९३९ में भी वस्तुतः वहीं हैं, जहां १९१७ में था—इन बीस-बाईस वर्षोंमें होनेवाली घटनायें भारतीय स्थितिको स्पर्श नहीं कर सकी हैं। दुनिया जब आगे बढ़ रही है और भविष्यके स्वप्न उसके समक्ष हैं और तब ब्रिटेनके राजनीतिज्ञ इसको अबसे २० साल पहले १९१९ की अतीतकालीन घोषणाओंकी ओर हमें घसीट रहे हैं और सम्भवतः १९४९, १९५९ और १९६९ में भी वे इसी १९१९ की घोषणाकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे।

और नहीं तो यह साम्प्रदायिक मतभेद तथा अल्प-संख्यकोंकी समस्या क्या इतनी सरल है, जो आसानीसे छुलझाई जा सके? सर सैमुएलने—सम्भवतः साम्प्रदायिक निर्णयके आधारपर—जिस विष-वृक्षका फल तथाकथित प्रान्तीय स्वाधीनताको मिल रहा है—यह घोषणा करनेका साहस किया है कि ब्रिटेनने उक्त मतभेदों एवं समस्याओंके छुलझानेका प्रयत्न किया है। पर ब्रिटेनके पौने दो सौ वर्षके शासनकालमें

समस्याओंको सुलझानेकी जब यह प्रगति और यह परिणाम रहा है, जिसे हम रामजे मैकडोनल्डके साम्प्रदायिक निर्णयमें देखते हैं, तब अगली कितनी शताब्दियोंमें ये समस्यायें सुलझेंगी, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है ! पर जो भी हो, तब तक इस देशको स्वाधीनताका नाम न लेना चाहिए ! यह ब्रिटिश मनोवृत्ति है, जो उक्त वक्तव्योंमें स्पष्ट हुई है। इस सम्बन्धमें देशमें जो प्रतिक्रियायें हुई हैं, उन्होंने इस देशके व्यक्तियों एवं संस्थाओंकी मनोवृत्तियोंको भी स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि सङ्घटकालमें किन व्यक्तियों एवं संस्थाओंपर कितना विश्वास किया जा सकता है।

कांग्रेसका निर्णय

वर्तमान परिस्थितिपर कांग्रेस कार्य-समितिके विगत २२ अक्टूबरको जो प्रस्ताव स्वीकृत और प्रकाशित किया है, वह यों है :—

“कार्यसमितिकी रायमें उसने युद्धके उद्देश्यके सम्बन्धमें और खास करके उसने भारतमें प्रयोग करनेके सम्बन्धमें ब्रिटेनसे स्पष्ट घोषणा करनेका जो अनुरोध किया था, उसके जवाबमें वायसरायका दिया हुआ वक्तव्य बिल्कुल असन्तोषजनक है और वह समझती है कि वह वक्तव्य उन सब लोगोंमें नाराजी पैदा करनेवाला है, जो हिन्दुस्तानकी स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिए उत्सुक और दृढ़प्रतिज्ञ हैं। वह अनुरोध न सिर्फ हिन्दुस्तानके लोगोंकी ओरसे, बल्कि संसार-भरके करोड़ों आदिमियोंकी खातिर भी था, जो कि लड़ाई और हिंसासे तथा उस साम्राज्यवादी ढङ्गसे ऊब गये हैं, जो कि राष्ट्रोंके लोगोंको चूसता है और अन्तमें लड़ाईका कारण बनता है और वे सभी लोग शान्ति और स्वाधीनताकी नयी व्यवस्थाके लिए व्यग्र हैं। वायसरायके वक्तव्यमें पुरानी साम्राज्यवादी नीति दुहरायी गयी है। वक्तव्यमें अनेक दलोंके मतभेदोंका जिक्र सिर्फ इस मतलबसे किया गया है कि समितिके हिन्दुस्तानके सम्बन्धमें ब्रिटेनकी नेकनीयतीकी परीक्षाके लिए युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यकी जिस घोषणाके लिए कहा था, उसमें ग्रेट ब्रिटेनका इरादा चतुराईके साथ छिपाया जाय। विरोधी दलों और गिरोहोंके रखके रहते हुए भी कांग्रेस सदासे अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंके लिए काफीसे काफी गारण्टीकी समर्थक है। कांग्रेसका दावा सिर्फ कांग्रेस

या किसी खास गिरोह या सम्प्रदायके लिए नहीं, बल्कि राष्ट्रके लिए और हिन्दुस्तानके उन सभी सम्प्रदायोंके लिए है, जो उस राष्ट्रको बनानेमें लगे हैं। इस स्वाधीनताकी स्थापना और समष्टि रूपसे राष्ट्रकी इच्छाके निरूपणका एकमात्र उपाय लोकतन्त्रात्मक प्रणाली है, जो सबको पूरा अवसर देती है। इसलिए समिति वायसरायके वक्तव्यको हर तरहसे शोचनीय समझती है। इस परिस्थितिमें समितिके लिए यह सम्भव नहीं है कि वह ग्रेट ब्रिटेनका किसी प्रकार समर्थन करे, क्योंकि उस समर्थनका मतलब होगा साम्राज्यवादी नीतिको स्वीकार करना, जिसका कि कांग्रेस हमेशासे खात्मा करना चाहती है।

“इस सम्बन्धमें पहले कदमके तौरपर समिति कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंसे कहती है कि वे इस्तीफा दे दें।”

कांग्रेसने कितनी ही बार स्पष्ट शब्दोंमें किसी भी साम्राज्यवादी युद्धमें सम्मिलित न होनेका निश्चय प्रकाशित किया है और इसीलिए उसने इस युद्धमें ब्रिटेनके युद्ध एवं शान्तिकालीन उद्देश्यों तथा उन्हें भारतमें कार्यान्वित करनेके सम्बन्धमें स्पष्टीकरणकी मांग की थी। इसी सिद्धान्तके अनुसार उसने उक्त दोनों वक्तव्योंमें निहित ब्रिटिश नीतिपर अपना यह प्रस्ताव पास किया है। कांग्रेसके सामने यदि यह प्रश्न हो कि जो ब्रिटेन पोलैण्ड—जिससे उसका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध न हो—के गणतन्त्रके लिए महायुद्धकी घोषणा करे, पर अपने अधीनस्थ देशोंको सीमित गणतन्त्र भी देनेसे इनकार करे, तो कांग्रेसके रखका, यदि उसके कहने और करनेके सिद्धान्तमें अन्तर न हो, झुकाव कैसा होगा, यह जान लेना स्वाभाविक है और इसीलिए उसके इस प्रस्तावको हम स्वाभाविक एवं युक्ति-सङ्गत ही कहेंगे। कांग्रेसने कभी बाजारू मनोवृत्तिसे सौदा करनेकी नीति नहीं अपनायी, उसकी उद्देश्य-पूर्तिके साधन गांधीजीके नेतृत्वमें सत्य और अहिंसा ही रहे हैं। ऐसी दशामें वर्तमान सङ्घटपूर्ण परिस्थितियोंके उत्पन्न करने एवं भविष्यकी आशङ्कापूर्ण सम्भावनाओंकी जिम्मेदारी उसपर नहीं डाली जा सकती। स्वार्थोंके मूल्यपर कांग्रेस सिद्धान्तोंका सौदा नहीं करती, इसकी सत्यता ब्रिटेनपर जितनी जल्दी प्रकट हो जाय, ब्रिटेन और भारतके सद्भावपूर्ण सम्बन्धके लिए उतना ही अच्छा है। लेकिन दुःख तो यह है कि भारतीय महत्वाकांक्षाओंको लेकर

ब्रिटेनके स्वार्थपर राजनीतिज्ञता समय और घटनाओंसे कुछ भी नहीं सीखना चाहती।

कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंके इस्तीफे

युद्ध-सम्बन्धी ब्रिटिश नीतिसे असहमत होकर कांग्रेसने असहयोगकी जो नीति अपनायी है और जो काफी सम्भावनाओंसे भरी मालूम होती है, उसकी ओर पहला कदम उसने अपने मन्त्रिमण्डलोंके इस्तीफेसे उठाया है। व्यवस्थापिका परिषदोंके भीतरसे विधानको नष्ट करनेका कार्यक्रम बनाकर बहुमत प्राप्त प्रान्तोंमें कांग्रेस पार्टीने विधानके विरुद्ध प्रस्ताव पास किये थे और यदि मन्त्रित्व ग्रहण कर उसने ऐसे प्रस्ताव पास किये थे, तो उसे त्याग कर उसने उसको छिन्न-भिन्न करनेवाली परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। कांग्रेसके आदेशानुसार भारतके ११ प्रान्तोंमेंसे आठ प्रान्तोंके मन्त्रिमण्डल, जहां उनका बहुमत है, इस्तीफे दे रहे हैं। इस्तीफेके पहले युद्ध-सम्बन्धी जो प्रस्ताव उनके द्वारा पास हो रहे हैं, भारतके वैधानिक विकासके इतिहासमें उनका उल्लेखनीय महत्व रहेगा। प्रान्त-विशेषकी परिस्थितियोंके अनुसार प्रस्तावोंमें थोड़े-बहुत हेर-फेरके साथ सभी कांग्रेस शासित प्रान्तोंकी व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा ऐसे प्रस्ताव पास हो रहे हैं, जैसा कि संयुक्तप्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाने गत ३० अक्टूबरको पास किया है, जो यों है :—

“इस एसेम्बलीको इस बातपर दुःख है कि ब्रिटिश सरकारने हिन्दुस्तानको बिना उसके लोगोंकी मर्जीके, ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनीकी लड़ाईमें शामिल कर दिया है और भारतीय लोकमतकी कुछ भी परवाह न करके प्रान्तीय सरकारोंके अधिकार और काम घटानेवाले कानून पास कर लिये हैं तथा व्यवस्था कर दी है। यह एसेम्बली सरकारसे सिफारिश करती है कि वह भारत-सरकारको और उसकी मार्फत ब्रिटिश सरकारको यह जता दे कि वर्तमान युद्धके घोषित उद्देश्यकी सार्थकताके निमित्त यह अत्यन्त आवश्यक है कि हिन्दुस्तानियोंका सहयोग प्राप्त करनेके वास्ते लोकतन्त्रके सिद्धान्त हिन्दुस्तानमें लागू किये जायं, उसकी नीति उसके लोगों द्वारा सञ्चालित हो और हिन्दुस्तान स्वतन्त्र राष्ट्र माना जाय, उसे अपना विधान आप बनानेका हक हो और तत्काल जहां तक सम्भव हो, हिन्दुस्तानके वर्तमान शासनमें उन सिद्धान्तोंपर उचित रूपसे अमल किया जाय—

उसमें ऐसा भी इन्तजाम हो जिससे कि इस प्रान्तमें लड़ाई सम्बन्धी सारी व्यवस्था प्रान्तीय सरकारकी स्वीकृतिसे और उसके द्वारा की जाय।

“यह एसेम्बली इस बातपर खेद प्रकट करती है कि ब्रिटिश सरकारने हिन्दुस्तानके सम्बन्धमें वक्तव्य देनेके लिए वायस-रायको अधिकार देते समय हिन्दुस्तानकी हालतको ठीक तौरसे नहीं समझा और हिन्दुस्तानकी मांग ब्रिटिश सरकारके पूरा न करनेसे इस एसेम्बलीकी राय है कि यह सरकार ब्रिटिश नीतिका साथ नहीं दे सकती।”

कुछ मन्त्रिमण्डलोंने इस्तीफे दे दिये हैं और कुछ ऐसे प्रस्तावोंके पास होते ही अविलम्ब दे देंगे। इसके बादकी परिस्थिति सम्भावनाओंसे खाली नहीं है, और ऐसी सम्भावनायें काफी जटिल हो सकती हैं। फिलहाल एक बात स्पष्ट हो जाती है कि इन मन्त्रिमण्डलोंके बाद इन प्रान्तोंमें प्रान्तीय स्वाधीनता विषयक विधान व्यर्थ हो जायगा और स्थितिको सुलझा देनेवाले प्रभावशाली कारण उत्पन्न न हो गये, तो विधानको स्थगित कर गवर्नरोंको भारतीय शासन-विधान (१९३५) की धारा ९३ के अनुसार सलाहकारोंको लेकर स्वयं शासन करना पड़ेगा।

और तब, इस प्रकार विधानको भङ्ग करनेकी, कांग्रेसके निर्वाचन-घोषणापत्रकी एक दूसरी प्रतिज्ञा पूरी हो जायगी।

मन्त्रिमण्डलोंके इस्तीफेपर श्री राय

कांग्रेस ‘हार्ड कमाण्ड’को सदासे उसकी तथाकथित विधान-प्रियताके लिए कोसनेवाले श्री एम० एन० रायकी वायसरायके वक्तव्यकी प्रतिक्रिया, जैसी कि उनके देहरादूनसे प्रकाशित वक्तव्यमें दिखाई पड़ती है, आश्चर्यमें डालनेवाली है। कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंके इस्तीफा देने तथा कांग्रेस द्वारा किसी असहयोग आन्दोलनकी सम्भावनाका ही आपने विरोध नहीं किया है, बल्कि वायसरायकी घोषणामें गोलमेज परिषद आदि जिन वैधानिक उपायोंके अवलम्बनका सङ्केत है आपने उनका भी समर्थन किया है। कांग्रेसकी इस गतिविधिसे कोई सहमत हो या न हो, पर जब हम यह सोचते हैं कि यह वही श्री एम० एन० राय हैं जो राष्ट्रीय मांगोंके लिए न जाने क्या-क्या करनेको तैयार थे और अभी कुछ दिन पहले बङ्गालके राज-बन्धियोंके प्रश्नपर—जिसका बङ्गालमें कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल न होनेके कारण दूसरे कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंसे विधानतः

कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है—सारे कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंको इसीका देकर वैधानिक सङ्घटन उपस्थित न करनेके लिए कोस रहे थे, वही आज स्वयं अपनी बातोंका खण्डन करते दिखाई पड़ रहे हैं और उस समय जब कि कांग्रेसके समक्ष वर्षोंके अपनाये हुए सिद्धान्तका प्रश्न है। वास्तवमें आश्चर्य होता है और सहसा विश्वास नहीं होता कि यह उन्हीं श्री एम० एन० रायका वक्तव्य है।

मुस्लिम लीगकी मनोवृत्ति

बायसरायकी घोषणापर मुस्लिम लीगने अपना निर्णय देते हुए उसे सन्तोषजनक बताया है और इस बातपर प्रसन्नता प्रकट की है कि सरकारने कांग्रेसको भारतकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्थाके रूपमें स्वीकार करनेसे इनकार किया है। लीगके इस निर्णयसे देशको असन्तोष चाहे जितना भी हो—और लखनऊके लीगवालोंसे इसे विश्वासघातक बताकर इसका विरोध किया भी है—पर इसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। लीगमें जिन लोगोंका बोलवाला है और युद्ध-सम्बन्धी परिस्थितियोंमें सर सिकन्दर हयात खाँके हाथमें जो उसका वास्तविक नियन्त्रण आ गया है, उन सबको देखते उससे और किसी भी साहसपूर्ण निर्णयकी आशा ही बेकार है। लखनऊमें—प्रगतिशील मुसलमानोंकी आंखोंमें धूल झाँकनेके लिए उस वर्ष जब लीगने पूर्ण स्वाधीनता अपना लक्ष्य घोषित किया था, तब भी लीग तथा उसके नेताओंकी मनोवृत्ति जाननेवालोंको उसकी इस घोषणामें विश्वास नहीं हुआ था और तबसे जो कारण बनते गये हैं, उन्होंने लीगके सम्बन्धमें कुछ बहुत आशाजनक दृष्टिकोण बनानेके लिए प्रेरित नहीं किया है। लीगकी कार्यवाहियोंने बार-बार स्पष्ट किया है कि शक्ति-सञ्चय उसका जितना उद्देश्य नहीं रहा है, उतना कांग्रेस-शक्तिको क्षीण करना रहा है और उसके इस उद्देश्यमें जिनके स्वार्थ निहित हैं, उनका सहयोग उसे प्राप्त होना स्वाभाविक ही है।

लीगके उक्त प्रस्तावके अनुसार बायसरायकी घोषणामें प्रस्तावित परामर्श समितिके उद्देश्य, सीमा, सदस्यों आदिके विषयमें मि० जिन्नाको सन्तोष हो जानेकी दशामें ही लीगका सहयोग सरकारको मिलेगा। इसके लिए लीगने मि० जिन्नाको पूर्ण अधिकार दिये हैं, पर हमारा विश्वास है कि मि०

जिन्नाको सन्तोष देनेके मार्गमें कुछ भी ऐसी कठिनाइयाँ न होंगी कि लीगका सहयोग न प्राप्त हो सके।

टर्कीके साथ ब्रिटेन और फ्रान्सकी सन्धि

पिछले दिनों अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंमें जो उलट-फेर हुए हैं, उनमें टर्कीके साथ ब्रिटेन और फ्रान्सकी सन्धि [शर्तें इसी अङ्कमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तम्भमें देखें] अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है। ब्रिटेनकी यह केवल कूटनीतिक विजय ही नहीं, इससे युद्धके और भी व्यापक होनेकी दशामें भूमध्यसागरमें उसकी स्थिति और भी मजबूत बनानेवाले कारणोंपर भी उसका नियन्त्रण हो गया है। बालकन राष्ट्रीय इटली और जर्मनीके बढ़ते हुए प्रभाव तथा रोड्स और अलबानियापर इटलीके आधिपत्यसे टर्कीके लिए आवश्यक था कि वह भूमध्य सागरपर प्रभाव रखनेवाले किसी भी शक्तिशाली राष्ट्रसे सन्धि-सम्बन्ध रखे। उक्त सन्धिने टर्कीकी यह इच्छा-पूर्ति की है, पर ब्रिटेनको इससे भी कहीं अधिक लाभ है। वर्तमान युद्धमें इटलीकी तटस्थता भङ्ग होनेकी स्थितिमें भूमध्य सागरमें ब्रिटेनको उससे जिन आश-ङ्काओंकी सम्भावनायें थीं, उक्त सन्धिने बहुत अंशोंमें उनका निराकरण कर दिया है और यही कारण है कि सिन्योर गयादाने इसपर असन्तोष प्रकट करते हुए इसे “भूमध्य सागरमें इटलीको घेरने एवं बालकन प्रान्तोंमें उसके प्रभावको नियन्त्रित करनेवाली चाल” बताया है।

टर्कीकी सन्धिकी एक दूसरी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतिक्रिया यह हुई है कि ईराक, ईरान और अफगानिस्तान आदि राष्ट्रोंका एक गुट मित्र-राष्ट्रोंका समर्थक बन गया है। युद्ध तथा शान्तिके दिनोंके लिए मुस्लिम-जगतकी यह गुटबन्दी ब्रिटेनके साम्राज्यवादी हितोंके लिए बहुत मूल्यवान है। भारतीय मुस्लिम-जगत्पर भी इसकी प्रतिक्रिया ब्रिटेनके हितोंके अनुकूल ही हुई है।

‘राष्ट्रभाषा हिन्दी’पर स्व० केशवचन्द्र सेन

हिन्दी-हिन्दुस्तानीको भारतकी राष्ट्रभाषा बनाये जानेके विरुद्ध जो आवाजें उठायी जाती हैं, उनमें सबसे प्रधान बङ्गालकी आवाज है, इसलिए इस सम्बन्धमें यह एक दिलचस्प बात होगी कि आजसे प्रायः ६६ वर्ष पहले एक बङ्गाली और एक प्रमुख बङ्गालीने जिस समय भारतके लिए राष्ट्र-

भाषाकी आवश्यकता महसूस की, उस समय उसने हिन्दीको ही इसके लिए उपयुक्त समझा। यह मत था स्व० केशवचन्द्र सेनका, जिनके सम्बन्धमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं। केशव बाबूने यह विचार तात्कालीन पत्र 'सुलभ समाचार' में प्रकट किया था, जो बङ्गालका सम्भवतः पहला पत्र था। 'सुलभ समाचार' के कुछ लेखोंका सङ्कलन कर एक पुस्तक हाल ही में प्रकाशित हुई है, जिसमें उक्त लेख भी है, जिसका हमने उल्लेख किया है।

आजसे ६६ साल पहले जब हिन्दीका इतना प्रचार नहीं हो सका था, जब आजकी अपेक्षा उसमें इतनी प्रगतिशीलता भी न थी और जब अन्तर्प्रान्तीय सम्बन्ध इतना दृढ़ न था, तब यदि हिन्दी राष्ट्रभाषा हो सकती थी, तो आज क्यों नहीं हो सकती, इसका उत्तर विरोधियोंकी ओरसे अभी तक सन्तोषजनक रूपमें मिल नहीं सका है।

हिन्दुस्तान मजदूर सेवक सङ्घ

अहमदाबादमें सरदार वल्लभभाई पटेलकी अध्यक्षतामें श्री राजेन्द्रासाद, डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष, आचार्य कृपलानी एवं श्री शङ्करराव देवको लेकर जिस हिन्दुस्तान मजदूर सेवक सङ्घकी स्थापना हुई है, उसके उद्देश्योंके प्रति सभीकी सहानुभूति होगी। भारतमें जिस गतिसे औद्योगीकरण होता जा रहा है, वह यद्यपि काफी शिथिल है, पर भारत-सरकार द्वारा प्रकाशित औद्योगिक झगड़ों, हड़तालोंकी संख्याओंमें वृद्धि ही होती जा रही है और भिन्न-भिन्न औद्योगिक क्षेत्रोंकी समस्यायें कभी-कभी साधारणतः समाधानके लिए कठिन साबित हो चुकी हैं। इसके साथ दूसरे प्रश्न भी हैं, जो औद्योगिक क्षेत्रोंमें काम करनेवालोंसे सम्बद्ध हैं, अतः हिन्दुस्तान मजदूर सेवक सङ्घकी स्थापना आवश्यकताओंके अनुकूल ही हुई है।

सङ्घके सम्बन्धमें प्राप्त समाचारोंके आधारपर सङ्घके ये कार्य होंगे :—

(१) मजदूर सङ्घ कायम कराने और मालिकोंसे उन्हें मनवानेमें मदद करना, (२) मजदूरोंके सङ्गठन और सञ्चालनके कामके लिए कार्यकर्ताओंको सिखाना, (३) नीति और प्रबन्धके मामलेमें मजदूर सङ्घोंको राह दिखाना, (४) मजदूरोंकी उन्नति और भीतरी बल बढ़ानेके लिए कल-

कारखानेवाले केन्द्रोंमें भलाईके काम जारी कराना, (५) मजदूरोंकी दशा सुधारनेके लिए उपयोगी कानून बनवानेका यत्न करना, और (६) मजदूर आन्दोलनमें सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तोंको फैलाना और उनका लाभ और उपयोगिता समझाना।

गांधी सेवासङ्घके डेलिंगके अधिवेशनमें इस प्रकारका एक सङ्घ बनानेका निश्चय किया गया था, उसे ही इस रूपमें कार्यान्वित किया गया है। और सरदार पटेल-जैसे सङ्गठन एवं धुनके पक्के व्यक्तिके नेतृत्वमें सङ्घ काफी ठोस कार्य कर सकेगा।

गांधीजीके नेतृत्वकी शर्तें

युद्धकी प्रगतिके साथ-साथ देशकी राजनीतिक परिस्थितिमें कई परिवर्तन ऐसे हुए हैं, जिनमें काफी महत्त्वपूर्ण एवं जटिल सम्भावनायें उत्पन्न होनेकी आशङ्का की जाने लगी। ऐसी किसी भी स्थितिमें स्वभावतः गांधीजीकी ओर देश नेतृत्वके लिए देखता है। अतः उन्होंने 'हरिजन' में अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा है कि किन अवस्थाओंमें वे नेतृत्व करनेको तैयार होंगे। उन्होंने कहा है :—

“यद्यपि कार्य-समिति के प्रस्तावमें यह बात कही नहीं गयी है, फिर भी उसकी इच्छासे सत्याग्रहके नियमन और नियन्त्रणका कार्य मेरे ही ऊपर छोड़ दिया गया है। मेरे पास अपनी कोई ताकत नहीं है; न पहले कभी थी, जिससे मैं लोगोंको अपनी बात माननेके लिए बाध्य कर सकता। मेरा बल यही है कि कांग्रेसजनोंका बहुत बड़ा समूह स्वेच्छासे उन आदेशोंका पालन करता रहा है, जो कार्य-समिति द्वारा जारी किये जाते थे या जिनकी चर्चा मैं 'यङ्ग इण्डिया' या 'नवजीवन'में करता था और अब 'हरिजन' में करता हूँ। इसलिए जब मैं देखूंगा कि मेरे शब्दोंमें कोई शक्ति नहीं रह गयी है, तब कांग्रेसजन मुझे इस क्षेत्रसे चुपचाप हटते हुए पायेंगे। यदि सङ्घर्ष चलानेकी जिम्मेदारी मेरे ऊपर रही, तो मैं कठोरसे कठोर अनुशासनकी आशा करूंगा।

“जब तक कांग्रेसजन अनुशासनकी रक्षा करने और सत्य एवं अहिंसाके अनुसरणकी प्रवृत्ति आज तकसे अधिक मात्रामें नहीं दिखाते, तब तक व्यापक रूपसे सत्याग्रह शुरू करनेकी सम्भावना नहीं है। यदि अधिकारीवर्ग हमें बाध्य न कर दे, तो सम्भवतः इसकी आवश्यकता ही न पड़े।”

आवश्यकता ही न पड़े, गांधीजीकी यह आशा मनुष्यके गुणोंमें ही विश्वास करनेके आधारपर है और उनकी इस आशाको सभी कार्यान्वित देखना चाहेंगे, पर यदि ऐसा सम्भव न हो तो गांधीजीकी पूर्ण अनुशासनकी मांग ऐसी नहीं है, जिसे देश एक स्वरसे स्वीकार न कर सके।

अमेरिकाके तटस्थता-कानूनमें सुधार

अन्तर्राष्ट्रीय घटनायें जैसा रूप पिछले दिनों बदलती जा रही थीं, उनमें अमेरिकाके तटस्थता कानूनमें संशोधनका होना हमने पिछली बार अनिवार्य बताया था और उस दिन वस्तुतः संशोधन हो भी गया। भूतपूर्व सेक्रेटरी आव स्टेट मि० स्टिम्सनने स्पष्ट शब्दोंमें कहा था कि “ब्रिटेन और फ्रान्स हमारा ही युद्ध लड़ रहे हैं और यदि उन्हें पराजित होना पड़े, तो स्वयं हमारे ही ऊपर उसके लड़नेका भार आ जायगा।” प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टके सेक्रेटरीने भी सद्धानुभूति-सूचक बातें कही थीं। और अब उसमें संशोधन भी हो चुका है, जिसका परिणाम ब्रिटेन और फ्रान्सके लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस संशोधन द्वारा अमेरिकाने गणतन्त्रोंके प्रति कोरी सद्धानुभूति ही नहीं दिखायी है, उनकी विजयके साधन भी जुटानेके प्रयत्न किये हैं। काश, स्पेनके युद्धके समय भी अमेरिकाने यही रुख दिखाया होता !

सोवियट-विधानमें संशोधन

पेरिस २६ अक्टूबर। मास्कोकी सूचना है कि आगामी ७ नवम्बरको होनेवाले क्रान्तिके २२ वें अधिवेशनके अवसर-पर सोवियट सरकार आश्चर्यजनक परिवर्तनकी तैयारी कर रही है। अबसे व्यक्तिगत सम्पत्ति, फार्म, स्वदेशमें स्वतन्त्र व्यापार और व्यक्तिगत उद्योग-धन्धोंको रखनेका हर शख्स-

को अधिकार होगा। कोई भी व्यक्ति ५० से अधिक कार्य-कर्ताओंको नियुक्त नहीं कर सकेगा। —रुटर

१९३६ में सोवियट रूसके शासन-विधानमें जो परिवर्तन हुए थे, उनमें इस प्रकारके परिवर्तनोंके लिए भी कारण उत्पन्न होनेके अनुमान थे। ये संशोधन रूसकी वर्तमान व्यवस्थाको देखते हुए काफी महत्त्वपूर्ण हैं, पर विस्तृत आलोचना प्रामाणिक रिपोर्ट देख लेनेके बाद ही हम उपयुक्त समझते हैं।

गणतन्त्र भारतके लिए अनुपयुक्त है ?

मुस्लिम लीगके अध्यक्ष मि० मुहम्मद अली जिन्ना ने बहुत पहले कहा था कि गणतन्त्रात्मक सिद्धान्तोंके अनुसार भारतमें शासन-व्यवस्थाकी स्थापना नहीं की जा सकती और अब ‘मैजोस्टर गाजियन’को अभी उस दिन एक वक्तव्य देते हुए उन्होंने अपने उक्त मतको दुहराते हुए कहा है कि इस प्रकारके किसी गणतन्त्रका मतलब होता है “भारतमें हिन्दू राज्यकी स्थापना।” प्रान्तीय सुधारोंके कार्यान्वित होनेके बादसे उनका यह मत और भी पुष्ट हो गया है।

तो गणतन्त्रके स्थानपर मि० जिन्ना और कैसी शासन-प्रणाली चाहते हैं ? स्वेच्छामूलक और तानाशाही ! पर यह अधिकार किसे मिलें ? हिन्दुस्तानमें जब हिन्दुओंकी जनसंख्या इतनी विशाल हो, तब उसे अल्पसंख्यक कैसे बनाया जा सकेगा ? सम्भवतः मि० जिन्ना पाकिस्तानका स्वप्न—और अपने ही नेतृत्वमें—कार्यान्वित करनेके इच्छुक हैं, अन्यथा वे हिन्दू भारत और मुस्लिम भारतके रूपमें इसे न देखते। लेकिन लीगके सदस्यों द्वारा ये योजनायें कार्यान्वित हो सकेंगी, इसकी कल्पना भी व्यर्थ है।



This PDF you are browsing now is in a series of several scanned documents by the Centre for the Study of Developing Societies (CSDS), Delhi

CSDS gratefully acknowledges the enterprise of the following savants/institutions in making the digitization possible:

Historian, Writer and Editor Priyamvad of Kanpur for the Hindi periodicals (Bhavishya, Chand, Madhuri)

Mr. Fuwad Khwaja for the Urdu weekly newspaper Sadaqat, edited by his grandfather and father.

Historian Shahid Amin for facilitating the donation.

British Library's Endangered Archives Programme (EAP-1435) for funding the project that involved rescue, scan, sharing and metadata creation.

ICAS-MP and India Habitat Centre for facilitating exhibitions.

Digital Upload by eGangotri Digital Preservation Trust.

